बुन्देलखण्ड की चित्रशैली

एक समीक्षा

कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर (उ० प्र०) की
पी-एच० डी० [चित्रकला] की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक
डॉ० राम शंकर
आचार्य, चित्रकला विभाग
डी० ए० वी० कालेज
(कानपुर विश्वविद्यालय)
कानपुर

शोधकर्ता :
शाम चन्द्र
एम० ए० चित्रकला, इतिहास
प्रवक्ता
डिविज इण्टर कालेज, सिरियापुर,
इटावा

१९८४

बुन्देलखण्ड की चित्रशैली

एक समीक्षा

कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर (उ० प्र०) की
पी० एच० डी० [चित्रकला] की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक :
डॉ० रान कंवर
अध्यक्ष, चित्रकला विभाग
डी० ए० वी० कालेज
(कानपुर विश्वविद्यालय)
कानपुर

शोधकर्ता :
ज्ञान चन्द्र
एम० ए० चित्रकला, इतिहास
प्रवक्ता
वैदिक इण्टर कालेज, दिबियापुर,
इटावा

१९८४

डा० राम कँवर, अध्यक्ष-- चित्रकला विभाग, डी० ए० वी० कालेज, (कानपुर वि० विद्यालय), ११२/३२० ए, स्वरूप नगर कानपुर--२

प्रमाणित किया जाता है कि श्री ज्ञानचन्द्र के ~~शोध प्रबन्ध~~ "बुन्देलखण्ड की चित्रशैली - एक समीक्षा" नामक शोध प्रबन्ध विश्वविद्यालय में उपर्युक्त कार्यवाही हेतु भेजा गया है। यह पूर्णतया मौलिक एवं नयी दिशा से ओत - प्रोत, विषय के अनुकूल व बहुत उपयोगी है। इस विषय पर अन्य किसी ने कार्य नहीं किया है जो दृष्टिकोण इसमें प्रस्तुत हुआ है। वह नितान्त क्षेत्रीय शैली के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करने में सार्थक है। इसमें आ समस्त बातों का समावेश है जो शोध समिति ने बताये हैं।
(२४.१२.८१)

[illegible]

(डॉ० रामकंवर)

Dr. Ram Kanwar,
Research Supervisor,
Head of [illegible] & Ptg Deptt
D. A. V. College, Kanpur.

Dr RAM KANWAR (M A., Ph D., Dip. in ART)
(Head of the Drawing & Painting Deptt)
D A V College
(Kanpur University)
K A N P U R (U P)

Dated - 15/3/84

This is to Certify that Mr Gyan Chandra has prepared and written his Thesis entitled " BUNDEL KHAN KI CHITRASHELY-Ek SAMIKSHA " for the award of Ph .D. Degree of the KANPUR UNIVERSITY, KANPUR (U P) under my direct supervision and guidance.

He has put in the required atttendance . The Thesis is based on the candidates own original work.

Ram Kanwar

(Dr Ram Kanwar)
Supervisor

---: अनुक्रमणिका :---

अध्याय - प्रथम --- 1 - 31

बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्टभूमि :-

बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियां व उनके सांस्कृतिक विकासक्रम के साथ चित्रकला में योगदान ।

अध्याय - द्वितीय --- 32 - 65

बुन्देलखण्ड की चित्रकला :-

सांस्कृतिक विकासक्रम के साथ चित्रकला का स्वरूप (उद्भव, विकास व संरक्षक) व प्रमुख प्रतिष्ठान, सर्वेक्षण, विशेषतायें व महत्व ।

अध्याय - तृतीय --- 66 - 106

बुन्देलखण्ड चित्रशैली के भित्ति चित्र :-

भित्ति चित्रों के प्रमुख प्रतिष्ठान, प्रतिपाद विषय, प्रमुख कलाकार, सर्वेक्षण, शैलीगत विशेषतायें व महत्व ।

अध्याय - चतुर्थ --- 107 - 127

बुन्देलखण्ड के लघुचित्र एवं चित्रित ग्रन्थ :-

लघुचित्र, प्राप्य स्थान, सर्वेक्षण, प्रतिपाद विषय, प्रमुख कलाकार चित्रशैली व सामग्री, विशेषतायें, महत्व व अन्य पडोसी तत्कालीन शैलियों से विशेषतायें व भिन्नता ।

अध्याय - पंचम --- 128 - 151

बुन्देलखण्ड की कला के लोक कला पक्ष व अन्य चित्रित सामग्री :---

लोक कला पक्ष ,कला सामग्री व अन्य शिल्प प्रतिपाद्य , प्रमुख शैली में योगदान ,महत्व , विशेषतायें व अन्य कलात्मक सामग्री ।

अध्याय - षष्ठम --- 152 - 187

बुन्देलखण्ड चित्रशैली का तुलनात्मक स्वरुप :-

बुन्देलखण्ड कलम का अन्य कला शैलियों के परिपेक्ष में तुलनात्मक महत्व व योगदान ।

अध्याय - सप्तम --- 188 - 210

उपसंहार :-

बुन्देलखण्ड चित्रशैली की मान्यता , भारतीय इतिहास को देन और महत्व ।

---: चित्र सूची :---

1- मानचित्र बुन्देलखण्ड प्राकृतिक

2- मानचित्र बुन्देलखण्ड के प्रतिष्ठान

3- लक्ष्मी मंदिर (भवन चित्र ओरछा)

4- राम-रावण युद्ध , लक्ष्मी मंदिर ओरछा (भित्ति चित्र)

5- गोपियों के साथ बांसुरी बजाते कृष्ण - लक्ष्मी मंदिर ओरछा (भि०चि०

6- नौका विहार तथा चौगान खेलती स्त्रियां-राजमहल ओरछा (भि०चि०)

7- नारी कुंजर - " " " "

8- हाथी एवं ऊंट - " " " "

9- गोपियों के साथ कृष्ण व गणेश का चित्र - " " " "

10- शिकार का दृश्य - " " " "

11- हप्पू चिरैया - " " " "

12- राम दरवार - " " " "

13- शेर की छाल पर चतुर्भुजी शकर - " " " "

14- कृष्ण एवं नृत्य करती सखियों-जहांगीर महल ओरछा (भित्ति चित्र)

15- बांसुरी बजाते कृष्ण व गोपियों " " " " "

16- अलंकारिक बार्डरयुक्त आकृतिचित्रण " " " " "

17- अलंकारिक आलेखनों व पशु-पक्षी दरवार हाल ओरछा (भित्ति चित्र)

18- राजदरवार एवं सेवकाओं का चित्रण " " " " "

19- रायप्रवीण की हवेली का चित्र ओरछा

20- नायिका चित्रण रायप्रवीण की हवेली ओरछा (भिति चित्र)

21- दतिया महल (भवन चित्र) दतिया

22- वृक्ष के दोनों ओर हाथियों का कम्पोजीशन दतिया महल (भि०चि०)

23- रागमाला व नायक-नायिका " " "

24- मोरों एवं तलवार नृत्यचित्र " " "

25- अलंकारिक आलेखन " " "

26- शीशे एवं पत्थर इन-ले का अलंकरण " " "

27- मोरों पर आधारित अलंकारिक आलेखन भरतगढ दतिया (भित्ति चित्र
28- गोपियों ,ग्वालवालाओं के साथ कृष्ण राजा पारिक्षित मकरवा "
29- हाथियों-घोडों पर शाही यात्रा " " " "
30- राधा-कृष्ण एवं वाद्ययन्त्र बजाते देवगण " " " "
31- अलंकारिक आलेखन एवं मानवआकृतिचित्रण ,रानी महल झासी "
32- शेर पर सवार दुर्गा-चित्रशाला,किला तालवेहट (भित्ति चित्र)
33- पौराणिक एवं धार्मिक चित्र नसींग मंदिर तालवेहट "
34- " " " " "
35- मछलियों पर आधारित आलेखन भगवन्त क्लब टीकमगढ (भित्तिचित्र)
36- शिकार का दृश्य मकरवा टीकमगढ "
37- समथर का मंदिर(भवन चित्र) समथर
38- देवताओं के चित्र मंदिर समथर (भित्ति चित्र)
39- ऋषि - मुनियों के चित्र " "
40- घोडों पर सवार युद्ध यात्र " "
41- ब्रम्हा,ऋषि एवं गाय का चित्र दऊआजू का डेरा टहरौली (भि० चि०)
42- रासलीला राम मंदिर टहरौली "
43- हाथी-शेर युद्ध , कृष्ण लीला - तोडियों में चित्र राममंदिर टहरौली
44- रामायण पर आधारित चित्र राममंदिर टहरौली (भित्ति चित्र)
45- रामसेना एवं तोडियों में अन्य चित्र " " "
46- हप्पू चिरैया राममंदिर गुरसराय "
47- पालकी पर शोभा यात्रा " " "
48- घोडा,ऊंट पर सवारी व कृष्णरासलीला " "
49- रामायण पर आधारति चित्र " "
50- नाचते हुये मोर " "
51- रासलीला मंदिर अमरागढ "
52- राधा-कृष्ण व गोपियों का नृत्य " " "
53- राधा-कृष्ण व ग्वालबाल व गोपियां " " "
54- बालि-सुग्रीवयुद्ध " " "

55- गोवर्द्धन धारण मकरवा अमरागढ (भित्ति चित्र)

56- किला व मंदिर का भवनचित्र टोडी फतेहपुर

57- रामविवाह तिलक मंदिर टोडी फुतेहपुर (भित्ति चित्र)

58- जनकपुरी में राम व सीता " " "

59- शिव पूजा व धार्मिक चित्र " " "

60- राम बारात " " "

61- पौराणिक चित्र " " "

62- रामायण पर आधारित चित्र " " "

63- बारात,शोभायात्रा व स्त्रियों द्वारा स्वागत " " "

64- शिव विवाह शोभा यात्रा मंदिर विजना "

65- स्वागत शिव बारात " " "

66- स्त्रियों द्वारा शिवबारात दर्शन " " "

67- छत्रसाल की समाधि स्थल (मकरवा) भवनचित्र धुवेला

68- घोडों पर आधारित पैनल छत्रसाल की समाधि धुवेला (भित्तिचित्र)

69- घोडों एवं मोर पर आधारित चित्र " " "

70- रानी कमलापत सुरई (भवनचित्र) धुवेला

71- रानी कमलापत की सुरई की तिवारी में चित्रमाला धुवेला

72- हाथी-घोडों पर व पैदल युद्ध का दृश्य रानीकमलापतसुरई (भि0चि0

73- अलंकारिक आलेखन " " "

74- प्राणनाथ मंदिर (भवन चित्र) पन्ना

75- शेर पर सवार दुर्गा एवं सेविकायें लघुचित्र

76- रामविवाह यज्ञ "

77- पंचमुखी शिव व भक्तगण "

78- बांसुरी बजाते कृष्ण व गोपियां "

79- राधा-कृष्ण व सूरदास वीणा बजाते "

80- घोडे पर सवार राजा व सेवक "

81- राजा व दरबारी गण "

82- राम के चरणों में हनुमान "

83- राधा-कृष्ण व गोपियां रागमाला — लघुचित्र

84- चीरहरण — " "

85- भैसासुर मर्दन व शेर पर सवार दुर्गा — " "

86- चतुर्भुजी भगवान व आरती करते भक्तगण — " "

87- दुर्गा सप्तसती — चित्रित ग्रन्थ

88- दुर्गा सप्तसंती — " "

89- पौराणिक ग्रन्थावली — " "

90- पौराणिक ग्रन्थावली — " "

91- पौराणिक ग्रन्थावली — " "

92- बुन्देलखण्ड के अलंकरण

93- देव की अष्टयाम चित्रावली - 52 ओरछा

94- देव की अष्टयाम चित्रावली - 52 ओरछा

95- देव की अष्टयाम चित्रावली - 52 ओरछा

96- ~~देव की अष्टयाम चित्रावली - 52 ओरछा~~ बुंदेलखण्ड शैली का चित्र

97- व्यक्ति चित्र महाराजा दतिया

98- बुन्देलखण्ड व अन्य राजाओं का फोटो ग्रुप

99- राजस्थानी चित्रशैली के चित्र

100- राजस्थानी चित्रशैली के चित्र

101- पहाडी शैली के चित्र

102- पहाडी शैली के चित्र

103- मुगल शैली के चित्र

104- मुगलशैली के चित्र

105- मालवा शैली के चित्र

106- बुन्देलखण्ड शैली का लघुचित्र (मुख पृष्ट पर)

---: कृतज्ञता-ज्ञापन :---

सरिता जल की वह धारा है जो पहाडों से निकलकर अपना टेढा-मेढा रास्ता बनाती कभी ऊपर उठती , कभी नीचे गिरती परन्तु अपने लक्ष को साधे निरन्तर आगे बढती रहती है जब तक कि वह सागर के अथाह जल में विलीन नहीं हो जाती है । इसी भाँति यह कलाधारा निरन्तर आगे बढती रही जिसे ने तो कोई दैविक शक्ति और न ही मानुषी शक्ति रोक सकी क्यों कि पुरातन काल से ही मानस में कला के प्रति प्रेम , अनुराग व सौन्दर्य के प्रति अगाध अभिरुचि रही है । आज कला की इतनी विपुल थाती उपलब्ध है जिसकी खोज जिज्ञासु मानस की सहज प्रक्रिया है तथा जिससे अन्तर्तम की अमूर्त अनुभूतियों की उपलब्धि है ।

सृष्टि से तादात्म्य स्थापित कर कृतियाँ भी मूर्तिमान हो उठती हैं । कला मानव की सहचरी है जिसके माध्यम से मानव को सत्य की अनुभूति कराई जाती है । चित्रकार का त्रिकालव्यापी महत्व समानरुप से प्रेरणाप्रद , स्फूर्तिदायी एवं उपादेय है क्यों कि वह भूति की वेदी पर वर्तमान का सृजनकर सदैव भविष्य की ओर इंगित करता रहा है ।
मनुष्य ने जिस दिन से इस श्रष्टि में आँख खोली उसी क्षण से अतुल प्रकृति, रुप एवं सम्पदा का द्वार मनुष्य के लिये खुल गया और मानव ने ज्ञानार्जन कर मानसपटल को प्रखर किया ।

चित्रकला से एम० ए० करने के उपरान्त अन्तर्तम की अनुभूति से प्रेरित हो भारतवर्ष के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में छिपी हुई संस्कृति , साहित्य , कला एवं लोक जीवन के अपार भण्डार को देखकर अपने शोध के माध्यम से यहाँ के चित्रकला की मौलिकता को सबके समक्ष प्रस्तुत करने की भावना से इस शोध प्रबन्ध को साकार कर सका । बचपन में पढीं निम्नलिखितपंक्तियाँ "खूब लडी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी,
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी ।"
मानस पटल पर आते ही बुन्देलखण्ड की वीरोचित लीलाओं की अमर गाथायें याद दिलाती हैं ।

बाल्यकाल से कला के प्रति अनुराग व प्रकृति के प्रति प्रेम तथा विद्यार्थी जीवन के पर्यावरण से प्रभावित हो मैं इस वीरोचित प्रान्त को अपना लक्ष मान बैठा । यहाँ की कला , साहित्य एवं सादा-सरल व साम्य जनजीवन के साथ-साथ अपभ्रंश पर मीठी भाषा , लाल,हरे एवं काले पीले रंगों का परिधान मुझे सदैव आकर्षित करता रहा है ।

गाँव में बचपन तथा नगर में शिक्षा ग्रहण करने से मेरे लिये ग्राम्य और नगरीय जीवन में कोई विशेष भेद न था पर कभी-कभी बचपन में गाँव के चौपालों में चर्चित लोक कथाओं , परम्पराओं एवं मान्यताओं से प्रभावित हो उनके उपक्रमों से इतना सानिध्य मान बठा था कि प्रत्येक तीज-त्योहार एवं पर्व आदि के अवसरों पर कलात्मक लोक रचना मेरे अन्तस का अनान्य अंग बन बठा ।

बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्थानों पर घूम-घूमकर वहाँ के नागरिकों से जनसम्पर्क के माध्यम से उनकी भावनाओं को अपने में समाहित कर दिन-प्रति दिन उस सरस लोक जीवन के प्रति आकृष्ट होता चला गया । वहाँ के मंदिरों , देवालयों एवं दुर्ग तथा महलों की छटा इस क्षेत्र को एक अनोखी देन है । रामचरित मानस के नायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने सीता एवं लैक्ष्मण के साथ बन को जाते समय चरण कमलों से यहाँ की माटी को पवित्र करते हुये चित्रकूट को पावन तीर्थ स्वरुप प्रदान किया ।

भारत के मानचित्र पर उत्तर प्रदेश के पाँच प्रमुख नगर झाँसी,बाँदा हमीरपुर,ललितपुर एवं जालौन तथा मध्य प्रदेश के दतिया,टीकमगढ,छतरपुर एवं पन्ना से मिलकर बना यह खण्ड इलाहाबाद ,भोपाल,आगरा एवं ग्वालियर आदि प्रमुख नगरों से घिरा यह क्षेत्र उत्तर प्रदेश व मध्यप्रदेश अपने पडौसी राज्य राजस्थान,हरियाणा आदि से पूर्ण प्रभावित है इनका प्रभाव भी इस शोध प्रबन्ध का एक अंग बना है ।

झाँसी,दतिया,ओरछा,टीकमगढ,मदनपुर,बानपुर,समथर,गुरसराय, टहरौली,टोडीफतेहपुर,विजना,धुंवेला,पन्ना,तालवेहट आदि बुन्देलखण्ड के ऐसे प्रमुख ठिकाने हैं जिनमें विचरण करने से वहाँ के लोगों की वीरता ,

पौरुष एवं कलात्मक अभिरुचि अपना एक अलग इतिहास व संस्कृति प्रस्तुत करता है । यहाँ की माटी में ऐसे वीर ,साहसी,साहित्यकार,शिल्पी, मूर्तिकार और चित्रकार जन्मे हैं जिन्होंने अपनी लगन व साधना से इस क्षेत्र को अमरता प्रदान करने में अपने संकल्प को पूर्ण किया है ।

यहाँ की भौगोलिक पृष्ठभूमि ऐतिहासिकता का मार्ग प्रशस्त करती है । शोध प्रबन्ध के प्रथम अनुच्छेद में उसका विस्तार से विवेचन है इसके साथ-साथ यहाँ के प्रसिद्ध शासकों एवं उनके प्रसिद्ध प्र तिष्ठानों ,कृतियों आदि पर भी विस्तार से विवेचन किया गया है । बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक विकासक्रम में ऐतिहासिक और भौगोलिक परिस्थितियों का क्या योगदान रहा है इस अनुच्छेद में प्रस्तुत है ।

द्वितीय अनुच्छेद में बुन्देलखण्ड की चित्रकला का सांस्कृतिक विकास क्रम के साथ उसका स्वरुप , उद्भव व विकास ,संरक्षक,प्रमुख प्रतिष्ठान आदि पर सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त जानकारी के आधार पर लेखनी को गति प्रदान की गई है । चित्रकला के स्वरुप में किस प्रकार उत्तर प्रदेश,मध्यप्रदेश एवं राजस्थान मे कला का समावेश हुआ है वहाँ की कृतियों में उपरोक्त सभी प्रभावों को सामने रखकर उनका वर्णन किया गया है । इसे विस्तारस्वरुप प्रदानकर बुन्देलखण्ड की चित्रकला पर विहंगम दृष्टि डाली गई है ।

तृतीय अनुच्छेद में यहाँ के प्रमुख प्रतिष्ठानों में प्राप्त भित्तिचित्रों की प्रणाली प्रस्तुत विषय,कलाकारएवं शैलीगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है इसके साथ-साथ चतुर्थ अनुच्छेद में लघुचित्रों एवं सचित्र ग्रन्थों की जानकारी प्रस्तुत की गई है । यहाँ के संरक्षकों का कला के प्रति योगदान व रुचि का स्वरुप प्रस्तुत किया गया है । कलाकारों की कृतियों पर अन्य पडौसी रियसतों की कृतियों से कितना प्रभाव इन कृतियों में आया है उसकी तुलना करके स्पष्ट कर दिया गया है ।

पाँचवें अनुच्छेद में यहाँ के लोकपक्ष एवं अन्य चित्रित सामग्री के स्वरुप को बताया गया है जिससे वहाँ का शिल्प एवं लोक भावना जीवन को प्रभावित करती रही ।

छठे अनुच्छेद में बुन्देलखण्ड की चित्रशैली का तुलनात्मक स्वरुप प्रस्तुत करके उनकी बारीकी और विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है तथा इसी अनुच्छेद के अन्तर्गत यह भी स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार इस शैली का अस्तित्व बना व इतना महत्वपूर्ण हो गया कि जिससे उसका अस्तित्व उभरकर स्वतन्त्र रुप में सामने आया है । अन्तिम अनुच्छेद में भारतीय चित्रकला के इतिहास में इस शैली की परम्पराओं का योगदान और महत्व स्पष्ट कर दिया गया है जिससे यह बुन्देलखण्ड क्षेत्र की पुष्टि एवं सबल कला का उदाहरण प्रस्तुत कर देती है । इस तथ्य के सामने आ जाने से भारतीय चित्रकला के अपार भण्डार में कुछ अभिवृद्धि तो होगी ही साथ में अन्य सभी कला जिज्ञासुओं के लिये भी यहाँ की क्षेत्रीय धरोहर से भली-भाँति परिचित हो जायेंगे।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में सर्व प्रथम मैं उन सभी संग्रहालयों ,पुस्तकालयों एवं कलाबीथियों के निर्देशकों और व्यवस्थापकों के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करता हूँजिन्होने संग्रहालयों में संग्रहीत चित्र एवं पुस्तकालयों में ग्रन्थि व पत्रिकाओं आदि को दिखाकर मेरी सहायता की है । सभी कलाविदों ने जो भी शोध प्रबन्ध के सम्बन्ध में मेरे सम्पर्क में आये तथा उनके ज्ञान , अध्ययन और अनुभव से मेरे में एक स्फूर्ति,ज्योति,प्रेरणा और लगन से यह कार्य पूरा हो सका उन सभी केप्रति आभारी हूं , साथही आर्कियोलोजिकल सर्वे ओफ इण्डिया , देहली , आगरा एवं लखनऊ विभाग के सभी सदस्य जिन्होंने मेरा उत्साह बढाया ,धान्यवाद के पात्र हैं ।

मेरी सर्वेक्षण यात्राओं के दौरान मेरे साथ मार्ग निर्देशन करनेवाले डा० एस० डी० त्रिवेदी, निदेशक , राजकीय संग्रहालय झांसी व डा० रामऔतारअग्रवाल मेरठ कालेज मेरठ का मैं सदैव ऋणी रहूगा जिन्होने भीषण सर्दी के मौसम में मेरा साथ देकर मुझे इस कार्य को पूरा करने हेतु मार्गदर्शन व प्रोत्साहन दिया । विभिन्न स्थलों के चित्र (फोटो) लेने में मुजफफरनगर डिग्री कालेज के प्रो० राजेन्द्र जी तथा मैं अपने मित्र किशन जी(मे० राजपूत फोटो स्टूडियो इटावा) एवं उनके पुत्र राजेश के प्रति आभारी हूं जिनके माध्यम से फोटोग्राफी जैसा दुर्लभ कार्य सुलभ हो सका ।

प्रो० रणवीर सक्सेना (विभागाध्यक्ष चित्रकला विभाग) डी० ए० वी० कालेज देहरादून , पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ,फिरोजाबाद , श्रीकृष्णा नन्द गुप्त गरौठा , श्री रामचरण हयारण मित्र झांसी एवं श्री नर्मदाप्रसाद गुप्त (बुन्देलखण्ड साहित्य एकादमी) छतरपुर के प्रति मैं आभारी रहूगा जिनकी सतत प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मुझे आशीर्वाद के रूप में मिलता रहा है

डा० जी० के ० अग्रवाल अलीगढ , डा० सुरेश सक्सेना कानपुर , प्रो० मकबूल अन्सारी कानपुर , डा० उमेश मिश्रा खैरागढ , प्रो० वी० राधाकृष्णा मूर्ति भोपाल , डा० काशीप्रसाद त्रिपाठी टीकमगढ , श्री राजा रणदेवसिंहजू समथर,डा० आनन्दकृष्ण राय बनारस , डा० आर० सी० शर्मा निदेशक राजकीय संग्रहालय लखनऊ , श्री एस० नकवी रजिस्ट्रीकरण अधिकारी लखनऊ , श्री ओ० पी० शर्मा नेशनल म्यूजियम देहली , श्री सुरेन्द्र श्रीवास्तव व्यवस्थापक केशव परिषद टीकमगढ , श्री अम्बिकाप्रसाद दिव्य अजयगढ , श्री एच० एच० के० कुदेशिया संग्रहाध्यक्ष धुवेला , श्री बुधराम निर्मल कस्टोडियन जहांगीर महल ओरछा , श्री श्रीकृष्ण चौरसिया एवं श्री नरेन्द्रजैन महोवा श्री विश्वम्भर दयाल सक्सेना तत्कालीन डिप्टी कलैक्टर दतिया एवं श्री रघुवंशराय दिबियापुर -इटावा आदि कलाविज्ञों , कलाप्रेमियों तथा साहित्यकारों व लेखकों के प्रति आभारी हूं जिनका बहुमूल्य निर्देशन , सुझाव , विचार एवं उनके पास संग्रहीत ग्रन्थ , साहित्य व चित्र आदि देखने को सुलभ हो सके तथा उनकी शुभ कामनाओं से मैं अपने लक्ष को पूरा कर सका ।

सर्वेक्षण के समय जो महानुभाव एवं ग्रामवासी मुझे मिले और जिन्होंने मेरा साहस बढाया उनका योगदान भी भुलाया नही जा सकता । समय-समय पर वांछित सूचनायें एवं जानकारी उपलब्ध कराने में सहयोग देने वाले विभिन्न विद्यालयों के अध्यापक वर्ग एवं विभिन्न कार्यालयों के अधिकारी व कर्मचारी भी धन्यवाद के पात्र हैं । श्री राधवेन्द्र कुमार, रेलवे विभाग, झांसी श्री कैलाश मडवैया पन्ना , श्री रघुनाथ सिंह भू०पू०विधायक मदनपुर,श्री राम नाथ मिश्रा केयरटेकर तालवेहट,श्री गुणसागर सत्यार्थी कुण्डेश्वर एवं श्री गोपेश्वरी प्रसाद व सतेश्वरी प्रसाद मोडवेल इटावा का आभारी हूं जिनकी शुभ-कामनायें व सहयोग से मैं अपने कार्य को सम्पन्न कर सका ।

मैं अपने स्व० पूज्य पिता जी एवं पूज्य माँ के प्रति सदैव ऋणी रहूंगा जिन्होंने मुझे समस्त सुविधायें देकर इस योग्य बनाया , साथ ही मैं अपने अग्रज श्री नरेशचन्द्र सक्सेना एडवोकेट एवं डा० विनोदविहारी लाल सक्सेना (विभागाध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग) पी० पी० एन० कालेज कानपुर के प्रति भी सदैव ऋणी रहूगा जिन्होंने मुझे समय-समय पर प्रोत्साहन देकर इस शोध कार्य को पूरा करने में सहयोग दिया । मेरी पत्नी श्रीमती राधासक्सेना तथा परिवार के अन्य समस्त सदस्यों का सहयोग एक अपूर्व उदाहरण है , पारिवारिक एवं गृहस्थ जीवन तथा व्यवसाय के अन्दर रहते हुये भी उन्होंने समय - समय पर मेरे धैर्य और कार्य को आगे बढाने में तन-मन-धन से जो भी सहयोग दिया उसके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूं ।

मैं अपने विद्यालय की प्रबन्ध समिति एवं प्रधानाचार्य व अध्यापक बन्धुओं तथा विद्यालय के उन समस्त साथियों के प्रति भी आभार प्रदर्शित करता हूं जिन्होंने मुझे समस्त सुविधाओं के साथ अपनी शुभकामनाओं द्वारा मुझे कार्य करने में गति प्रदान की । इसके साथ ही मैं अपने विद्यालय के टंकण लिपिक श्री अमरसिंह के प्रति आभारी हूं जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकार मेरे शोध प्रबन्ध केाटाइप करके सहयोग प्रदान किया ।

क्या कहू कैसे कहू एवं मैं उनके प्रति आभार को किस प्रकार प्रदर्शित करुं " गुरु गोविन्द दोउ खडे काकेलागू पांय,

बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय "

मेरे गुरु एवं निर्देशक डा० राम कंवर विभागाध्यक्ष चित्रकला विभाग डी० ए० वी० कालेज कानपुर के प्रति मैं जन्म जन्मान्तर ऋणी रहूगा जिनके सफल निर्देशन , मार्ग दर्शन एवं प्रोत्साहन के परिणामस्वरुप आरम्भ से लेकर अन्त तक इस शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने में उनका आशीर्वाद मेरे लिये वरदान सिद्ध हुआ है । मैं हृदय से उनका आभारी एवं ऋणी हूं ।

यह प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सभी के सहयोग का स्वरूप है जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में मेरी सहायता की है मेरा हृदय उनके स्नेह को नही भुला पायेगा । अन्त में मैं माँ सरस्वती के पावन चरणों में नत मस्तक हूँ जिसकी वरद लेखनी ने मुझे शक्ति व गति प्रदान की और उसी के कमल चरणों में समर्पित मेरा यह प्रयास आशा है सभी कला मर्मज्ञों एवं कलाविदों को स्वीकार होगा ।

सधन्यवाद ।

ज्ञानचन्द्र

अध्याय-प्रथम

बुन्देल खंड की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि

-: ० :-

बुन्देल खण्ड की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियाँ व उनका सांस्कृतिक विकास क्रम के साथ चित्रकला के विकास में योगदान।

मानचित्र सं० 1 - बुन्देल खण्ड

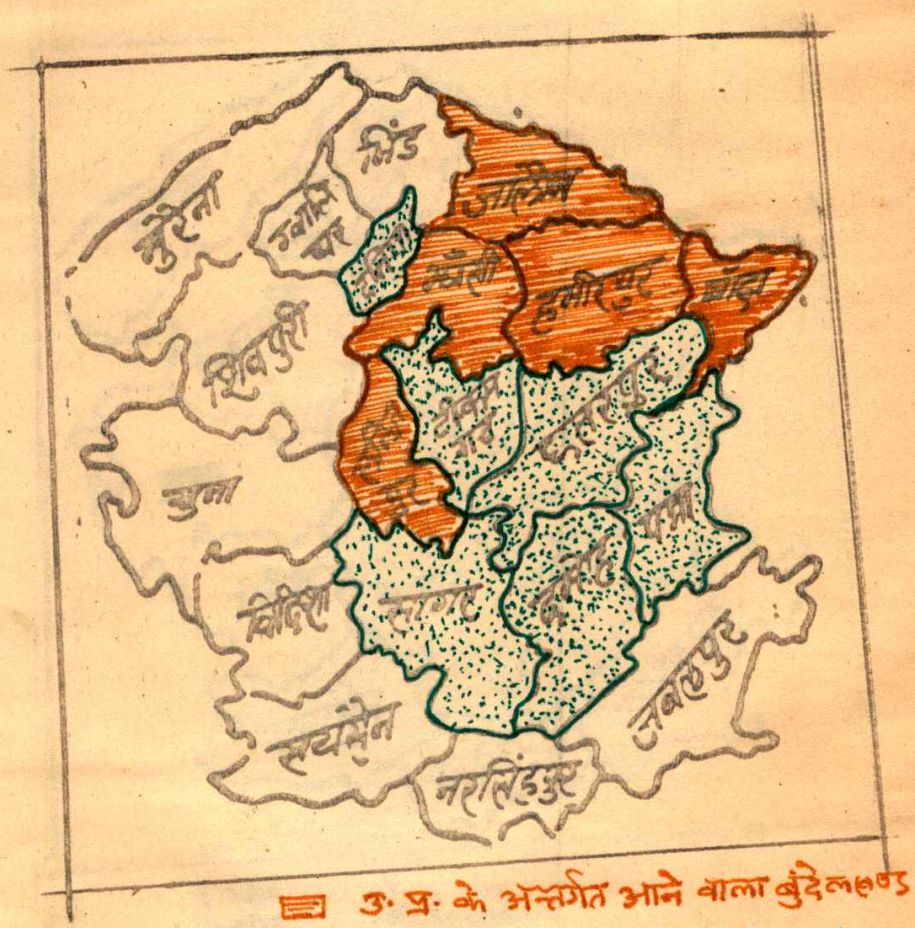

नावचित्र क्र० 2 :- बुन्देलखण्ड में प्राप्य चित्रकला के प्रमुख प्रतिष्ठान

1. झाँसी
2. दतिया
3. ओरछा
4. टीकमगढ़
5. समथर
6. अमरागढ़
7. गुरसराय
8. टहरौली
9. तालबेहट
10. बानपुर
11. मदनपुर
12. धुबेला

अध्याय प्रथम

बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि :-

भारतवर्ष के मध्यभाग में नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत की शाखाओं से समाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित एवं प्राकृतिक सौन्दर्य से अलंकृत क्षेत्र को बुन्देलखण्ड कहते हैं । ‖ मानचित्र बुन्देलखण्ड चित्र नं0 ।‖

1- रामचरण हयारण मित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृत और साहित्य" पृ0सं0 267

भारतवर्ष के किसी अन्य प्रदेश का इतिहास बुन्देलखण्ड से तुलना नहीं कर सकता। वैदिक कालीन इतिहास और साहित्य से लेकर पौराणिक व जैन , बौद्ध , मौर्य , हूण , चन्देल तथा आधुनिक साहित्य व इतिहास में इसके नगरों व नागरिकों का उल्लेख मिलता है । पौराणिक कथाओं में विन्ध्य क्षेत्र को अगस्त , अंगिरा ,विश्वामित्र आदि ऋषियों की तपोभूमि बताया गया है । भगवान राम ने विषम परिस्थितियों में चित्रकूट में निवास किया , भगवान शिव ने समुद्र मंथन से प्राप्त विष का पानकर कालिंजर में ही विश्राम किया एवं भगवान श्रीकृष्ण को रणछोड नाम की संज्ञा देने का श्रेय इसी क्षेत्र को है।

इस क्षेत्र को प्राचीनकाल में दशार्ण तथा चन्देली राज्य कहा जाता था । समय-समय पर इसके नाम दशार्ण, वज्र , जेजाकभुक्ति , जुझौती , जुझारखण्ड तथा विन्धेलखण्ड भी रहे हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि विन्ध्याटवी में स्थित होने के कारण इस प्रदेश का नाम विन्धेलखण्ड तथा बाद में अपभ्रष्ट हो यह बुन्देलखण्ड कहलाया ।

मध्य भाग भारत का हृदय कहा जाता है और इसकी ऐतिहासिकता अति प्राचीन व गौरवपूर्ण है जिसमें समस्त क्षेत्रीय सम्पदा के साथ वहाँ का वैभव झलकता है[2]।

बुन्देलखण्ड के प्रमुख ऐतिहासिक क्षेत्रों को उत्तर प्रदेश के झाँसी, जालौन , बाँदा , हमीरपुर तथा ललितपुर एवं मध्यप्रदेश के ओरछा , छतरपुर , खजुराहो , पन्ना , अजयगढ़ , दतिया , टीकमगढ आदि में बाँटा जा सकता है । (मानचित्र नं0 2)

यहाँ के इतिहास का वह रूप दृष्टिगोचर होता है जिसमें समस्त भारत का गौरव झाँकता प्रतीत होता है [3]। मालवा क्षेत्र के पास होने के कारण बुन्देलखण्ड की गौरवमयी परम्पराओं पर उसकी गहरी छाप पड़ी है तथा इसके सांस्कृतिक परम्पराओं में भी इनका प्रभाव आपस में एक जैसा दृष्टिगोचर होता है ।

1- गोरेलाल तिवारी "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ठ -।
2- रामचरण हयारण मित्र " बुन्देलखण्ड की संस्कृत और साहित्य पृष्ठ 267
3- डा0 आनन्द कृष्ण " छवि" भाग -। पृष्ठ 203

बुन्देलखण्ड नाम पड़ने का कारण बहुत समय से ठाकुरों का राज्य होना तथा पूर्व पुरुषों द्वारा विन्ध्यवासिनी देवी की उपासना करना भी माना जाता है क्यों कि बुन्देला नाम विन्ध्य से बहुत कुछ सम्बन्ध रखाता है इस सम्बन्ध में कुछ दन्त कथायें भी प्रचलित हैं ! लोग कहते हैं कि आदि काल में नारायण की नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा , इनसे मरीचि , मरीचि से कश्यप , कश्यप की अदिति नाम्नी भार्या से सूर्य और सूर्य के वंश रघु हुये । इस वंश के राजा दशरथ के राम और राम के लव ,कुश दो पुत्र हुये । कुश के हरिब्रह्म और इनके महिपाल , भुवनपाल , कमलचन्द्र , चित्रपाल , बुद्धिपाल और विहंगराज हुये । ये सातौ अयोध्या में रहे पर विहंगराज का पुत्र काशीराज काशी चला आया । इससे इस वंश में क्रमानुसार गहरिदेव , विमलचन्द्र ,नानकचन्द , गोपन्द्र , गोविन्दचन्द्र ,टिहनपाल , विन्ध्यराज सौनकदेव , वीझलदेव और अर्जुदेव हुये । इनके लड़के का नाम वीरभद्र तथा वीरभद्र के पुत्र का नाम पंचम या हेमकरण था । §ओरछा गजेटियर और सप्रमाण छत्रप्रकाश की वंशावली में भिन्नता है गजेटियर में हेमकरण पिता और वीरभद्र पुत्र लिखा है पर छत्रप्रकाश में वीरभद्र पिता और हेमकरन पुत्र लिखा है ।§

ऐतिहासिक अध्ययन से पता चलता है कि चन्देलराजा परमर्दिदेव के समय गढकुंडार एक किला था जिसमें शिवा नाम का क्षत्रिय किलेदार तथा सेना का अधिनायक था इसके अधीनस्थ खूबसिंह नाम का एक खंगार था । संवत 1239 में पृथ्वीराज चौहान से परमर्दिदेव हार गया और शिवा भी लड़ाई में मारा गया जिससे खूबसिंह स्वतन्त्र हो गया और गोंड लोग पूर्वी-पश्चिमी भाग के मालिक बन बैठे । समय पाकर बुन्देले भी अपना राज्य स्थापित करने लगे । झाँसी के आस-पास खंगारों का राज्य एक लम्बे समय तक रहा । बुन्देले लोगों को राज्य करने के लिये खंगारों से युद्ध करना पड़ा इसमें प्रमुख भूमिका बुन्देले राजा सोहनपाल ने निभाई ।

1- गोरेलाल तिवारी "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ठ 117-

इसमें सन्देह नही कि बुन्देलों की उत्पत्ति काशी के गहरवार राज घराने से है । इनका राज्य विस्तार बुन्देलखण्ड की पश्चिमी सीमा तक फैला हुआ था बाद में इसके बहुत से भाग पर चेदि देश के राजाओं ने अधिकार कर लिया था । करनपाल के वीर , हेमकरन और अरिवर्मा तीन पुत्र हुये जिसमें हेमकरन छोटा होने के बाद भी योग्य एवं बुद्धिमान था । उत्तराधिकारी होने के बाद हेमकरन के भाइयों ने इससे राज्य छीन लिया और युद्ध में भाइयों से यह हार गया । इसी समय बुन्देलखण्ड में चन्देलों के ~~स्व~~ राज्य का पतन होने के कारण पश्चिम व उत्तर का अधिकतम भाग मुसलमानों के हाथ आ गया । दक्षिण के क्षेत्र में गोंड शासक अपना अधिकार प्राप्त करने में लगे थे । बुन्देलखण्ड में मुस्लिम शासन स्थाई तौर पर न रह सका और यदि कहीं रहा भी है तो बुन्देले उनके सूबेदार रहे तथा अवसर पाकर स्वतन्त्र शासक बन गये थे ।

प्राचीनकाल में चेदि राज्य मतस्य राज्य के एक भाग को कहा जाता थाजो यमुना तथा विन्ध्याचल पर्वत के मध्य सीमित था [1]। इनके राजा कुश बहुत ही प्रतापी व योग्य माने जाते थे इसका विवरण ऋगवेद में भी मिलता है । पुराणों के आधार पर चेदि ज राज्य अति प्राचीन है । चौथी शताब्दी पूर्व यहाँ पर नन्दा व मौर्यवंश का शासन रहा[2] । शुंगों ने मौर्य शासकों को पराजित किया जिससे मौर्य लोगों ने बुन्देलखण्ड व मालवा की ओर भागकर वहाँ शरण ली तथा यहाँ आकर राज्य किया । शुंगों के बाद नागों ने राज्य किया जिसकी पुष्टि दतिया के निकट प्राप्त शिलालेख एवं सिक्कों द्वारा होती है ।

सम्राट गुप्त की विजय के पश्चात नागवंशीय राजाओ से सहयोग की दृष्टि से नागराजकुमारी कुवेरे नागा से अपने पुत्र की शादी की । चौथी शताब्दी मध्य में यहाँ का सांस्कृतिक विकास प्रारम्भ हुआ[3] ।

1- गजेटियर दतिया-मध्यप्रदेश 1977 पृष्ठ 19

2- राय चौधरी "दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी "पृष्ट 32,33

3- आर0सी0मजूमदार "एन एडवान्सहिस्ट्री ऑफ इण्डिया"प्रथमखण्ड पृ0149

हूण राजाओं ने गुप्त शासकों को पराजित किया तथा पश्चिमी मध्य भारत का बहुत बड़ा भाग अपने अधिकार में कर लिया , इनका राज्य विस्तार ग्वालियर व दतिया तक फैल गया जिसका प्रमाण ग्वालियर में प्राप्त एक शिलालेख से प्राप्त होता है । आठवीं शती में प्रतिहारों में अपने अधिकार में इस क्षेत्र को कर लिया तथा कन्नौज को अपनी राजधानी बनाकर ग्वालि- तक अपना राज्य विस्तार किया जिसकी पुष्टि देवगढ में प्राप्त शिलालेख से होती है [1] । प्रसिद्ध बौद्ध चीनी यात्री ह्वानसांग ने भी लिखा है कि जुझौ ति जिसे आधुनिक बुन्देलखण्ड कहा जाता है , का राजा ब्राह्मण था तथा वह बौद्ध धर्म का पक्का अनुयायी व उसके विकास हेतु अकथनीय प्रयास किया[2]

प्रतिहारों के बाद शासन की बागडोर चन्देले राज्य संस्थापक नानुका के हाथ में आयी । इसका राज्य विस्तार खजुराहो तक रहा[3] । इनका सबसे पराक्रमी शासक धंगा था । चौदहवीं शताब्दी तक चन्देले और खिलजी वंश के शासक इस क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाये रहे । तैमूर ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया जिसका विरोध तोमर राजाओं ने किया तथा जिससे दतिया का कुछ भाग उनके हिस्से में आया , जिससे ग्वालियर राज्य का क्षेत्र विकसित होने लगा । इसके बाद खंगार शासकों ने अपनी शक्ति के बल पर महोवा तक अपना अधिकार प्राप्त करने में सफल हो गये । इसके बावजूद भी उन्हें देशी शासकों के आधीन रहना पड़ा और इस प्रकार खंगारो के शासन के पश्चात बुन्देले राजपूत शासक सत्ता में आ गये [4] ।

बुन्देले राजा सोहनपाल ने खंगारों को हराया , इनके पुत्र सहजेन्द्र व नानकदेव और पृथ्वीराज हुये जिन्होंने बुन्देली शक्ति का उत्तरोत्तर विकास किया । मलखानसिंह जो अर्जुनदेव के पुत्र एवं पृथ्वीराज के चौथे उत्तराधिकारी थे इन्होंने 1473 में गद्दी सम्हाली और अपनी शक्ति का विकास किया पर इनके राज्य की सीमायें निश्चित नहीं हो पायीं थीं ।

1- एच हरगीव्ज-एन्टक्युटीज ऑफदेवगढ पृष्ठ 13 अण्ण्ट

2- झाँसी गजेटियर पृष्ठ 180

3- एच० सी० रे "डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया" पृ० 585

4- गोरेलाल त्रिवारी "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ठ 76

मलखानसिंह 1442 ई० में दिल्ली के सुल्तान बहलोल लाधी का विरोधी हुआ और सिकन्दर लोधी की मृत्यु तक बुन्देलों ने चन्देरी को जीत लिया परन्तु यह क्रम अधिक दिनों तक नहीं चल सका । 1531 में राजा रूद्रप्रताप ने ओरछा को अपनी राजधानी बनाया और बुन्देले राज्य का विस्तार होता रहा[1]।

रूद्रप्रताप के बारह पुत्र थे इन लोगों ने बुन्देलखण्ड क्षेत्र को कई भागों में जैसे दतिया,ओरछा,पन्ना,वीना,आदि तथा चरखारी व जागीरों में बाँट दिया । रूद्रप्रताप की मृत्यु के पश्चात उनके पुत्र राजा भारतचन्द्र एवं उनके बाद मधुकरशाह ने शासन की बागडोर अपने हाथों में सम्हाल ली[2] । शेरशाह ने भारतचन्द्र पर चढाई की परन्तु बुन्देले राजा डटकर उनकासामना करते रहे तथा अपने राज्य का विस्तार करते रहे । भारतचन्द्र और मधुकरशाह के शासनकाल में बुन्देली शकित का अत्यधिक विस्तार किया गया जिससे दक्षिण में सिन्धु व केन नदियों के बीच तथा ग्वालियर से कालिंजर तक व दक्षिण-पश्चिम में मालवा तक इनके राज्य की सीमायें पायी गई । दक्षिणी किनारों के जंगली क्षेत्र तक कोई भी सीमा रेखा नहीं थी [3] ।

बुन्देली राजाओं में राजा मधुकरशाह अपने शौर्य ,वीरता,योग्यता एवं शक्ति के लिये सर्वविख्यात रहे । इस समय मुगल शासकों का भारत में शासन था । मधुकरशाह की मृत्यु के पश्चात उनके पुत्र रामचन्द्रशाह के शासन काल तक मुगल शासक अपना आतंक फैलाये रहे । मधुकरशाह के छोटे पुत्र वीरसिंहदेव थे , इन्होंने अपने भाई इन्द्रजीतसेन और प्रतापराव के साथ अनेकों जागीरों पर अपना अधिपत्य जमा लिया । एरिच को भी अपने क्षेत्र में मिला लिया । मुगल शासक अकबर ने विरोधस्वरूप इन्हें गिरफ्तार करना चाहा परन्तु ये अकबर के पुत्र सलीम से जा मिले क्यों कि उस समय अकबर व सलीम में आपसी तनाव था ।

1- झाँसी गजेटियर पृष्ठ 190,191

2- के० आर० कानूनगो "शेरशाह एण्ड हिज टाइम्स" पृष्ठ 339

3- झाँसी गजेटियर पृष्ठ 192

सलीम बागी हो गये थे इससे अकबर काफी चिन्तित हुये तथा अबुलफजल की सलाह मानकर उसे दक्षिण से वापस बुला लिया, इस स्थिति में भी अकबर और वीरसिंहदेव में निरन्तर संघर्ष होता रहा क्योकि वीरसिंहदेव उत्तराधिकार की माँग को महत्व देते रहे। इसप्रकार एक इकाई के रुप में दतिया राज्य का इतिहास 20 अक्टूबर 1626 से प्रारम्भहोता है[1] ।

दतिया :-

दतिया राज में सबसे पहले वीरसिंहदेव ने अपने पुत्र भगवानराव को दतिया व बुढौनी का राज्य प्रदान किया और ओरछा घराने में बुन्देला राजपूत भगवानराव जो दतिया राज्य के संस्थापक हुये ने राज्य व्यवस्था के साथ - साथ बल प्रयोग के द्वारा राज्य विस्तार किया ।

भगवानराव के तृतीय पुत्र शुभकरण (1656 से 1683) ने लगभग 40 वर्ष शासन किया तथा अपने शासनकाल में बाईस लडाइयाँ लड़ी । मुगल साम्राज्य औरंगजेव की दक्षिण विजय के अवसर पर उन्हें दरवार से एक हजार जाट तथा पाँच सौ घोड़ों की मन्सबदारी दी गई । मुगलों की तरफ से इनके विरोधी चम्पतराय बुन्देलों के विरोध हेतु भेजे गये तथा पारितोषिक स्वरुप पुन: मन्सबदारी प्रदान की गई [2] । इनका पुत्र दलपत राय भी मुगलों के सहयोग के लिये आगे आया तथा मन्सबदारी प्राप्त की मराठे शासकों ने बहुत प्रयास किया कि ये लोग मुगलों की सहायता न करें परन्तु इन लोगों ने पारितोषिक के लालचवश अपना ध्येय नहीं छोड़ा । शुभकरण ने दतिया के पूर्वीभाग के टीले पर राजगढ का भव्यमहल का निर्माण कराया ।

अपने पिता दलपतराव (1683 से 1707) की मृत्यु के पश्चात उनके बडे पुत्र (1707 से 1736) दतिया के राजा हुये तथा सन् 1714 ई० में दिल्ली दरवार में रोक लगे होने के वावजूद भी हथियारों से पूर्ण सुसज्जित होकर जाने का साहस किया ।

1- रोगर्स व वैवरिज (अनु०) "ताजुके जहाँगीरी" खण्ड-1 पृष्ट 4-5

2- बी० डी० गुप्ता "महाराजा छत्रसाल बुन्देला" पृष्ट 23

इस प्रकार के उनके साहस के लिये समस्त बुन्देलखण्ड में उनके गौरव का वर्णन किया गया जबकि दूसरी तरफ राव रामचन्द्र जो मुगलों के सदा वफादार बने रहे , अपनी मन्सबदारी की धनराशि अन्तसमय तक पाते रहे । राव दलपत के तीन रानियाँ थीं , प्रथम रानी चन्द्रवती से कोई सन्तान नहीं थी , द्वितीय रानी चन्द्रकुँवर से रामचन्द्र तथा तीसरी रानी गुमानकुँवर से भारतीचन्द्र प्रथम ,पृथ्वीसिंह,सेनापति और करनजू ये चार पुत्र थे[1]।

पृथ्वीसिंह साहित्य के प्रति अधिक लगाव रखते थे , उन्होंने रतन हजारा लिखा । उनके सहयोगियों में भी एक अच्छे कवि थे । इन्होंने एक बार छत्रसाल कवि को अपने यहाँ आने का निमंत्रण दिया जिसको उन्होंने स्वीकार नहीं किसा । इन्होने अपनी बड़ी रानी के नाम पर दतिया में सीतासागर व उसके कुछ दूर पर रामसागर का निर्माण कराया जो बुन्देल-खण्ड की गरिमा पर प्रकाश डालते हुये दतिया को गौरव प्रदान करते हैं । यह आज भह दर्शनीय स्थल है[2] ।

राव रामचन्द्र की मृत्यु के पश्चात उनके प्रपौत्र इन्द्रजीत (1736 से 1762) ने बड़ी रानी सीताजू के संरक्षण में दतिया के शासन की बागडोर सम्हाली । इनका शासनकाल छव्वीस वर्षों तक रहा तथा अपने शासनकाल में राज्य की प्रतिभा को विकसित किया[3] ।

इन्द्रजीत के पश्चात शत्रुजीत (1762 से 1801) ने उत्तराधिकारी के रुप में सत्ता सम्हाली तथा ओरछा नरेश के दत्तक पुत्र को प्रतिष्ठित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया जिसके परिणामस्वरुप इन्हें 17 गाँव प्रदान किये गये । इनके पश्चात इनके पुत्र पारिक्षत (1801 से 1839) गद्दी पर आसीन हुये तथा अपने प्रयासों से मराठों से कुछ भाग वापस प्राप्त कर लिया । चिरगाँव के निकट वेतवा नदी पर एक बाँध बंधवाया जो आज भी पारीक्षा बाँध के नाम से विख्यात है ।

दतिया स्टेट गजेटियर 1901 पृष्ट सं0 7

2-दतिया गजेटियर पृष्ट 7

3- दतिया गजेटियर पृष्ट 9

15 मार्च 1804 को कैप्टवैली से भेंटकर दतिया व ब्रिटिश राज्य सरकार के मध्य सन्धि का प्रस्ताव सम्पन्न कराकर पारितोषिक स्वरुप सिन्ध के पूर्व में चौरासी इलाका नामक प्रदेश जिसमें इन्दरगढ भी शामिल है , दतिया राज्य को प्राप्त हुआ[1] ।

राजा पारिक्षित के बाद उनके दत्तक पुत्र विजय बहादुर (1839 से 1857) ने शासन की बागडोर सम्हाली । यह स्वभावत: धार्मिक पृवृत्ति के थे तथा अपने कोषागार से अधिकतम धनराशि बनारस ,बृन्दवन आदि तीर्थ स्थलों पर खर्च किया । इनका शासनकाल 18 वर्ष तक रहा । राजा विजयबहादुर झाँसी के पडौसी शासक थे जहाँ की रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजी के खिलाफ लडने की तैयारी कर रहीं थी , जबकि ओरछा की रानी सत्ताके लालच में ब्रिटिश सरकार की मित्र बन चुकी थी परन्तु इस स्थिति में विजय बहादुर ने बुद्धिमत्ता से काम लेकर दोनेा से ही अच्छे सम्बन्ध रखे तथा चुप रहना ही उचित समझा[2] ।

बुन्देलखण्ड का गौरव , दतिया जितना क्षेत्रफल में छोटा था उतना ही अधिक गरिमापूर्ण था । 1857 ई0 में नरसिंहदेव के भाई हरसिंहदेव के परिवार के भवानीसिंह दतिया की गद्दी पर आसीन हुये । इनका शासन काल 1857 से 1907 तक रहा । इनके शासनकाल में दतिया राज्य की आधुनिक प्रगति सामने आई । ब्रिटिश सरकार के निर्णय के आधारपर बढौनी की ठाकुर दतिया के आश्रित घोषित किये गये , इसी समय पाँच जून 1857 को झाँसी क्रांति की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई । इस स्थिति से फाइदा उठाने के लिये बड़ी बुद्धिमत्ता से कार्य किया विजयबहादुर की मृत्यु के बाद भवानीसिंह (1857 से 1907) भाग्यशाली शासक रहा[3] । 1962 में ब्रिटिश सरकार से महाराजा की उपाधि मिली और कहीं पर जाने पर 15 तोपों की सलामी मिलती थी ।

1- एस0 पी0 वर्मा "ए स्टडी ऑफ मराठा" पृष्ट 181,182

2- ईस्टर्न स्टेट्स (बुन्देलखण्ड) गजेटियर पृष्ट 102

3- दतिया दर्शन पृष्ट सं0 13

बुढानी की जागीर को दतिया के आश्रित घोषित कर दिया गया था । महाराजा भवानीसिंह संस्कृत,साहित्य,ललितकला एवं संगीत आदि में बडी रुचि लेते थे । इस काल को दतिया के इतिहास में सबसे अच्छा माना गया है । इनके शासनकाल में एक बार भीषण अकाल भी पडा परन्तु इन्होंने अपने विवेक से स्थिति को बडे अच्छे ढंग से सम्हाल लिया जिसके लिये सर्वत्र प्रशंसा की गई तथा इनकी मन्सबदारी व पदवी भी बढा दी गई और 1907 में इनकी मृत्यु हो गई[1]।

राजा भवानीसिंह के पश्चात महाराजा गोविन्दसिंह 1907 में गद्दी पर आसीन हुये तथा 1947 तक इनका शासनकाल रहा । शिकार के सौकीन होने के कारण अपने पूर्वज दलपतराव की भाँति अच्छा नाम कमाया । 1924 में युद्ध के समय ब्रिटिश सरकार की सहयोग के लिये आगे बढे लिसके लिये अंग्रेजों ने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की । लार्ड कर्जन की नीति से बंगाल का विभाजन हुआ[2] । उस समय की स्थिति को देखते हुये लोगों में राष्ट्रीय चेतना का विकास हो रहा था तथा अंग्रेजों के खिलाफ आन्दोलन जोर पकड रहे थे । प्रजा भ्रष्टाचार के कारण परेशान थी । महात्मागाँधी के असहयोग आन्दोलन के कारण राजनैतिक जागरुकता झाँसी तथा दतिया मण्डल में फैल रहीं थी[3] ।

महान क्रातिकारी चन्द्रशेखर आजाद ने अपना निवास थोड़े समय के लिये दतिया में भी बनाया जिसके फलस्वरुप आन्दोलन को भी गति मिली । राजा गोविन्दसिंह की मृत्यु के पश्चात उनके बडे पुत्र राजा बलभद्रसिंह गद्दी पर आसीन हुये तथा उनेक छोटे भाई रावराजा जसवन्तसिंह को भी उचित सम्मान मिला । महाराजा गोविन्दसिंह के शासनकाल में बहुत से पदाधिकारी व राजागण दतिया आये थेक जिसमें लार्ड विलिग्डन , निजाम हैदराबाद , महाराजा ग्वालियर , महाराजा बीकानेर और महाराजा पटियाला प्रमुख है[4] ।

1- ए0 एस0 मिश्रा(नानासाहब पेशवा) पृष्ठ 337

2- अग्निहोत्री"विन्ध्य प्रदेश का इतिहास" पृष्ठ 379

3- झाँसी गजेटियर पृष्ठ 222

4- दतिया दर्शन पृष्ट 58

उस समय की शासन व्यवस्था बहुतकुछ अंग्रेजी व्यवस्था से प्रभावित थी । अन्तिम समय में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना से यहाँ की व्यवस्था में परिवर्तन स्वरुप जन आन्दोलन इनके विरोध में हो गया जिसमें राजनैतिक जनजीवन की विचारधरा एवं स्वदेश प्रेम का प्रतिविम्ब दिखाई पड़ता है[1] ।

ओरछा :--

बुन्देलखण्ड के इतिहास में दतिया के पश्चात ओरछा स्टेट का प्रथम स्थान है । ओरछा की गौरवगाथा का अवलोकन इतिहास के पृष्ठों पर भारतीय संस्कृत के अनुठे उदाहरण के रुप में प्रस्फुटित होता है । यहाँ की संस्कृति में धार्मिक एवं राजनैतिक स्वरुप की अनोखी छटा दृष्टिटगोचर होती है[2] । प्रारम्भकाल से लेकर मौर्य ,शुंग,मालवीय , वाकाटकों , गुप्तों एवं बुन्देलों के समय के वैभव से सभी परिचित है । परिहारों की यह राजधानी रही , यह बुन्देले राजाओं का प्राचीन राज्य था , इसकी राजसत्ता का विकासक्रम भी यहीं सेप्रारम्भ होता है[3] ।

बुन्देले राजा रुद्रप्रताप ने गढकुन्डार के स्थान पर 1531 में ओरछा को राजधानी बनाया । किले निर्माण के साथ - साथ नगर का विकास तथा सुरक्षा के लिये सात कोटे भी बनवाये , जिसमें चार आज भी देखने को मिलते हैं । ओरछा राज्य के निकटवर्तीअन्य राज्य दतिया,महोवा पन्ना इत्यादि प्रमुख हैं । महाराजा रुद्रप्रताप की मृत्यु एक गाय की शेर से रक्षा करते समय शेर से घायल हो जाने के कारण इनकी मृत्यु हो गई थी । इनकी मृत्यु के पश्चात इनका भारतीयचन्द्र गद्दी पर आसीन हुये ।

महाराजा भारतीयचन्द्र(1531 से 1554) योग्य व बहादुर शासक थे । इनके समय में ओरछा में पूर्णतय: शान्ति का वातावरण तथा वैभव का विकास हो रहा था ।

1- विदर्भ भूमि पृष्ठ 77

2- सूचना व प्रचार विभाग विन्ध्यप्रदेश (ओरछा) पृष्ठ 12

3- ठाकुर लक्ष्मणसिंह गौड "ओरछा दर्शन का इतिहास" पृष्ठ 44

4- ठाकुर लक्ष्मणसिंह गौड "ओरछा दर्शन का इतिहास" पृष्ठ 48

बुन्देलखण्ड के गौरव की रक्षा तथा गरिमा को बनाये रखाने के लिये महाराजा भारतीयचन्द्र सदैव तत्पर रहते थेक ओरछा का यह यौवन काल था इनकी मृत्यु के बाद इनके भाई मधुकरशाह (1554 से 1592) गद्दी पर बैठे तथा इनको कईवार मुगल सेना से मुटभेड लेनी पडी थी । अपने पराक्रम के बलिपर बुन्देलखण्ड राज्य का विस्तार किया तथा अपने नामपर मधुपुरी (वर्तमान मऊरानीपुर) को बसाया ।

राजा मधुकरशाह के कुशल राजनीतिक होने के कारण सम्राट अकबर द्वारा कोई अहित न हो पाया । अकबर घोषणा के बाद भी मधुकरशाह तिलक लगाकर व माला पहनकर जो कि हिन्दू धर्म का पुण्य प्रतीक है , राजदरवार में आये । अकबर ने इसप्रकार की घोषणा की थी कि यदि कोई ऐसा करेगा तो गरम लोहे से माथे को दाग दिया जायेगा परन्तु अकबर इस धार्मिक निष्ठा को देखकर उनकी निर्भीकता की बात माननी पडी[1] । उनकी पत्नी भी धर्म परायण महिला थी । रानी, रामकी तथा राजा कृष्ण के उपासक थे । उनके समय में ओरछा रामराज्य के नाम सेविख्यात था

राजा मधुकरशाह की मृत्यु के बाद उनके बडे पुत्र रामशाह 1592 ई0 में गद्दी पर बैठे । यह स्वतन्त्रतापूर्वक राज्य करने के प्रयास में लगे रहे । इनमें धार्मिक भक्तिभावना थी । राजारामशाह सात भाई थे उन्होंने अन्य बुन्देले ठाकुरों का 22 जागीरों में विभाजनकर सब को प्रथक स्वतन्त्र राज्य करने दिया ।

राजारामशाह की मृत्यु के बाद मधुकरशाह के द्वितीय पुत्र वीरसिंहजू बुन्देला 1606 ई0 में ओरछा की गद्दी पर आसीन हुये तथा 1627 ई0 तक राज्य किया । मधुकरशाह के ज्येष्ठ पुत्र वृष न होने के कारण ओरछा राज्य उत्तराधिकार के रुप में इन्हें प्राप्त नहीं हुआ बाद में जहाँगीर ने रामचन्द्रजू देव जो ओरछा के शासक थे , उनको बन्दी बनाकर वीरसिंह को दे दिया[2] ।

1- राममित्र चतुर्वेदी "ओरछा" पृष्ठ 13

2- रामचरण हयारण मित्र " उदय और विकास" पृष्ट 169

महाराजा वीरसिंह ने अपनी योग्यता, विवेक, न्यायप्रियता से अपनी प्रजा को प्रभावित कर लिया । यह वह समय था जब बुन्देलखण्ड की चित्रकला शिल्पकला, साहित्य , व्यापार, धर्म उन्नत की ओर अग्रसर हो रहा था । अत: इसे ओरछा राज्य का स्वर्णिम युग कहा जाये तो अनुचित न होगा । बाबर के समय में यह राज्य मुगलों के आधीन था और वीरसिंह के नेतृत्व में बुन्देलों ने अपनी खोई हुई सत्ताको पाने का प्रयास किया । 25 वर्षों के काल में बुन्देलखण्ड का राज्य संगठित हो गया । अकबर अपने पुत्र जहाँगीर (सलीम) को राज्य नहीं देना चाहता था । वीरसिंह देव ने अबुलफजल को जो जहाँगीर के मार्ग का काँटा था, मारकर जहाँगीर के दिल में मित्रता का स्थान प्राप्त कर लिया ।

वीरसिंहदेव की न्यायप्रियता सर्वत्र विख्यात है । एकबार उनके पुत्र कुंवरप्रवीनराय ने बन के आश्रम में निवास करने वाले ऋषि का सिर काट लिया था क्यों कि उसने शिकार खोलने को मना किया था । उस समय शिकार खेलना पाप समझा जाता था । राजा ने अपनी रानी से इस विषय में पूछा कि तो प्राणदण्ड ही उचित दण्ड बताया गया तथा राजा ने भरे दरवार में उसे मृत्युदण्ड की सजा से दण्डित किया तथा जिस स्थान पर ऋषि का वध हुआ था उसी स्थान पर प्रवीणराय का सिर धड से अलग करादिया । इसीलिये ओरछा को रामराज्य कहा जाता है[1] ।

अकबर बडा ही राजनीतिज्ञ था । अबुलफजल भी संस्कृत का विद्वान था । दोनों हिन्दू जनता पर प्रभाव डालने के लिये माला पहनकर व तिलक लगाकर मन्दिरों में जाया करते थे जिससे लोगा बडे प्रभावित हुये । अवसर पाकर अकबर ने दीनइलाही धर्म की स्थापना की । वीरसिंहदेव ने जहाँगीर की मैत्रीस्वरुप ओरछा में आगरा के शाही महल की शैली पर एक महल बनवाया जिसका नाम जहाँगीर महल रखा[2] ।

1- राममित्र चतुर्वेदी "ओरछा" पृष्ठ 14

2- वी० डी० गुप्ता "महाराजा छत्रसाल बुन्देला " पृष्ठ 23

महाराजा वीरसिंह भवननिर्माण कला में विशेष रुचि रखते थे । अनेक सुन्दर महल ,मन्दिर व दुर्ग बनवाये । एकबार बुन्देलखण्डमेंभीषण दुर्भिक्ष के कारण जनता त्राहि - त्राहि करने लगी । राजा ने तत्काल मंत्री की सलाह से भवननिर्माण की योजना बनाई उस समय उसने 52 दुर्ग 52 बावडी और बासठ महलों का निर्माण कराया जिसमें दतिया का पुराना महल चन्देवा की बावडी और वीरसागर तालाब आदि हैं और उसी समय उसने ज्योतिषियों के कीने पर 32 मन सोने का तुला दान भी किया । दतिया के महल में चित्रकारी के नमूने तत्कालीन चित्रकला की उत्कृष्ट कृतियों के रुप में आज भी देखे जा सकते हैं । महाराजा वीर सिंहदेव कलाकारों , विद्वानों, साहित्कारों के संरक्षाक ही नही वरन् जनता के लोकप्रिय शासक भी थे[1] ।

महाराजा वीरसिहदेव की मृत्यु के बाद उनके बडे पुत्र जुझारसिंह (1627 से 1633) गद्दी पर आसीन हो गये जो कि बहुत ही घमण्डी एवं शक्की स्वभाव के थे । अपने भाई हरदौल का अपनी पत्नी चम्पावती से अवैध सम्बन्धों की गलत धारणा को सच मानकर अपनी पत्नी के द्वारा अपने भाई को भोजन में विषैं डलवाकर मरवाडाला । यह कथा बुन्देलखण्ड में सर्वत्र प्रचलित है ।

जुझारसिंह ने शाहजहां को कर देना बन्द कर दिया । वीरसिंह देव की मृत्यु के बाद जुझारसिंह से अलग राज्य चन्देरी उनके भाई रामसाह को ओरछा के बदले में मिला तथा दतिया अलग राज्य बन गया जिसपर भगवान राव व उनके पुत्र शासक रहे[1] । बुन्देलखण्ड राज्य कई भागों में बंट गया । मुगल शासकों से सन्धिकर लेने के कारण जुझारसिंह का प्रभाव ओरछा में घट गया और शाहजहां को बुन्देलों की शक्ति नष्ट करने का अवसर मिल गया । जुझार सिंह की मृत्यु हो गई तथा ओरछा की शक्ति दिन-प्रतिदिन अवनति की ओर बढने लगी ।

1- राममित्र चतुर्वेदी "ओरछा का अतीत" पृष्ट 14,15

महाराजा जुझारसिंह के बाद महाराजा देवीसिंह(1634 से1636 ने शासन की बागडोर सम्हाली परन्तु शान्ति स्थापना में इन्हें भी सफलता न मिली जिससे इन्हें वापस चन्देरी भेजदिया गया । इनके पश्चात जुझारसिंह के छोटे पुत्र पृथ्वीराजसिंह (1636 से 1637) गद्दी पर आसीन हुये परन्तु आयु कम होने के कारण राज्य की व्यवस्था करने में इनके सामने अनेक कठिनाइयाँ आयी तथा चारो ओर से गद्दी को हथियाने का प्रयास होने लगा , जिसे शाही सेना भी न सम्हाल पाई ।

चम्पतराय (1637 से 1641) ने किसी प्रकार यहाँ की गद्दी को पा लिया और बालक पृथ्वीसिंह को कैद करके ग्वालियर भेजदिया[1] । इस प्रकार ओरछा राज्य दिन-प्रतिदिन कमजोर होता चला गया । मुगल सम्राट ने चम्पतराय को दवाने के लिये शाही सेना भेजी पर चम्पतराय का कुछ भी न बिगाडा जा सका । चम्पतराय लुटेरों की भाँति जनता से कर वसूलने लगा जिससे अशान्ति फैल गई[2] । अन्त में ओरछा राज्य का कार्य भार पहाडसिंह (1641 से 1663) को सौप दिया गया ।

1639 ई0 में चम्पतराय ने ओरछा से अपने राज्यकाल की भगवान जुगुलकिशोर की मूर्तियाँ पन्ना राज्य में विराजमान कराई । पहाडसिंह भक्त और धर्मपालक शासक थे , उसके द्वारा चम्पतराय को मारने के बहुत से उपाय किये गये परन्तु सफलता नहीं मिली । औरंगजेव व चम्पतराय में अनुबन्ध हो जाने से बादशाह द्वारा मुद्रित सनदें अस्त्र-शस्त्र वापिसकर परतन्त्रता को त्यागकर स्वतन्त्रता का डंका बजाते हुये ओरछा आकर राज्य करने लगे ।

महाराजा पहाडसिंह की मृत्यु के पश्चात उनका पुत्र सुजानसिंह ओरछा की गद्दी पर बैठा । इसने 1663 से 1672 तक राज्य किया उनकी रानी कंचनकुंवर अपने नाम पर कंचनाघाट बनवाया ।

1- सूचना व प्रचार विभाग विन्ध्यप्रदेश ओरछा का अतीत" पृष्ट 15

2- " " " " पृष्ट 16,17

औरंगजेव ने ओरछा को नष्ट करने का प्रयास किया इस कारण मंत्रियों की सलाह पर महाराजा छत्रसाल को ओरछा बुलाकर बुन्देलखण्ड को स्वतन्त्र रखने के लिये मुगल सेना के साथ घमासान युद्ध करना पडा । इसमें छत्रसाल की विजय हुई लेकिन महाराजा सुजानसिंह उसी वर्ष स्वर्ग-वासी हो गये[1] ।

महाराजा सुजानसिंह की मृत्यु के बाद उनके कोई सन्तान न होने के कारण उनके भाई इन्द्रमणि (1672 से 1675) गद्दी पर बैठे । इनके शासनकाल में भी राजनैतिक ,सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति का अधिक उतार-चढाव नहीं आया । इनकी मृत्यु के पश्चात उनके पुत्र जस-वन्तसिंह (1675 से 1684) गद्दी आसीन हुये । इन्होने अपने नामपर जसवन्तपुर तथा भाई के नामपर भगवन्तपुर बसाया । इनकी रानी अमर-कुमारी ने पिछौरा ग्राम में रसिकविहारी आदि के मन्दिरों निर्माण कराया पिछौरा ग्राम से 10 मील की दूरी पर बानपुर में किला ,तालाब और बावडी का निर्माण कराया । इनके पुत्र का बचपन में देहावसान हो जाने के कारण ये पुत्र विहीन हो गये । राजा की मृत्यु हो जाने के कारण अपुत्र उनके बाद उनकी रानी अमरकुमारी ने श्री हरदौल लाला के नाती उद्योतसिंह (1684 से 1736) को गोद लेकर गद्दी पर बैठाया । ये बडे ही पराक्रमी ,वीर, और बलशाली थे । साहित्य के प्रति अगाध प्रेम था इनके उपरान्त इनके पुत्र सुजानसिंह द्वितीय गद्दी पर बैठे । नि:सन्तान मृत्यु हो जाने के कारण उनकी रानी ने हम्मीरसिंह को गोद ले लिया वे लाला हरदौल के वंशज थे । इनके राज्य में प्रजा सुखी थी । इनकी मृत्यु के बाद महाराजा प्रतापसिंह व महाराजा वीरसिंहजू देव द्वितीय ने राज्य किया । वर्तमान राजा देवेन्दे सिंह अपने पिता वीरसिंह द्वितीय के बाद ओरछा के राजा हुये । इनके पुत्र राजाबहादुर मधुकरशाह अब यहाँ के शासक हैं । ओरछा राजवंश का परिवार आज भी टीकमगढ में निवास कर रहा है[2]।

1- पीताम्बर अर्दवयु "ओरछा की समान्तायें" पृष्ठ 75

2- बासुदेव गोस्वामी निर्माता वीरसिंहदेव पृष्ठ 36,37

झाँसी :-

झाँसी का प्रसिद्ध ऐतिहासिक किला ओरछा राज्य के वीर बन्देला वीरसिंहदेव द्वारा सन् 1610 ई० में निर्मित कराया गया था[1] । और उस समय से न जाने कितने राजाओं की उन्नति एवं अवनति का तथा बुन्देला तथा मुगल , गुसाई, मराठा और अंग्रेज साम्राज्यों के उत्कर्ष का साक्षी रहा है । वीरसिंह देंवने प्रिंस सहजादासलीम के आदेशानुसार अकबर के मंत्री अबुलफजल को डवरा और आतरी के बीच घेरकर मार डाला । उपहार में वीरसिंहदेव को दी गई खंजर जवाहरातों से मढी थी तथा जिस कटार एवं तलवार से उसका वध किया था वह ओरछे के किले में संग्रहीत है । झाँसी की नीव डालने वाले नारूशंकर ने ओरछा के राज्य को सन 1742 ई० में परास्तकर उसकी कुछ सीमा को अपने अधीनकर झाँसी को प्रथक राज्य बनाया[2] ।

नारूशकर के वंशज बाजीराव द्वितीय से ईस्टइण्डिया कम्पनी ने 1804 ई० में सन्धि की और उसको पूर्ण सत्ताधिकारी राज्य बना दिया सन् 1817 ई० में ईस्टइण्डिया कम्पनी द्वारा बाजीराव को आठ लाख रुपया प्रतिवर्ष की पेंशन दी गई । फलस्वरुप बाजीराव ने बुन्देलखण्ड की सम्पूर्ण राज्यसत्ता अंग्रेजों को हस्तान्तरित कर दी ।

सन् 1832 में पुन: रामचन्द्रराव को राजा की उपाधि देकर झाँसी के किले में दरवार की घोषणा की गई । सन् 1853 में झाँसी राज्य के अन्तिम मराठा राजा गंगाधर राव (जो लक्ष्मीबाई के पति थे) का देहान्त हो जाने के बाद , दत्तक पुत्र का मान्यता नहीं दी गई । रानी लक्ष्मीवाई को पाँच हजार रुपये प्रतिमाह की पेंशन दी गई और वे अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करते समय वीरगति को प्राप्त हुई ।

1- रामचरण्प हयारण्मित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृत और साहित्य"पृष्ट 152

2- इग्लश बुकडिपो द्वारा प्रकाशित"झांसी का किला" पृष्ट 4,5

अठभैया जागीर :-
---------- दीवान रुपसिंह , महाराज वीरसिंहदेव के पुत्र एवं हरदौल के प्रपौत्र थे । दीवनरुपसिंह के आठ पुत्र थे । 1847 म में बडगाँव जागीर को आठ भागों में बाँटकर प्रत्येक पुत्र को एक - एक भाग दे दिया जो अब अठकडियों के नाम से भी प्रसिद्ध है[1] जिनका विवरण निम्न प्रकार है :-

1- टोडी फतेहपुर :-
---------- दीवान रायसिंह ने टोडी फतेहपुर की जागीर अपने बडे पुत्र हिन्दूसिंह को दी । इनके परने के पश्चात दीवान मेदनीमल को जागीर मिली । मेदनीमल के कोई पुत्र न था अत: विजना के जागीर दार सुर्जनसिंह के छोटे पुत्र हरप्रसाद को गोदलेकर उत्तराधिकारी बनाया, इनके भी कोई सन्तान न होने से विजना की जागीर से कुंवर पृथ्वीसिंह को गोद लिया । इनके बाद राव अर्जुनसिंह जागीरदार हैं[2]।

2- विजना :-
---------- राय सामन्तसिंह मेण्अपमेण्पुत्र को उनके पिता ने वि जना की जागीर दी । दीवान सामन्तसिंह के तीन बेटे थे अजीतसिंह, जगतराज और प्रानसिंह । अजीतसिंह के बाद सुर्जनसिंह ने गद्दी पाई और सुर्जनसिंह के बाद खाण्डेराव तथा इनके बाद मुकुन्दसिंह ने गद्दी पाई । दीवान अजीतसिंह के सात बेटों में से बखतसिंह चिरगाँव और धुरमंगदसिंह टोडीफतेहपुर की जागीर में गोद गये[3]।

3- बंका पहाड़ी :-
---------- यह गद्दी उम्मेदसिंह को दी गई इन्हें पाँच गाँव मिले थे परन्तु मराठों के समय इनके हाथ से चार गाँव निकल गये थे इनके बाद दीवान बंकादुर्गसिंह ने जागीर पाई इनके दीवान बंकाक्षत्रपति आ और दीवान बहादुरसिंह दो पुत्र थे तथा दोनो को जागीर दे दी गई ।

1- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 2-1-83 को टहरौली के श्री रामकुमार पाठक द्वारा प्राप्त जानकारी ।

2- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 2-1-83 को दीवान रघुनन्दनलाल से प्राप्त जानकारी ।

3- गोरेलाल तिवारी "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ट 312,313

दीवान छत्रपति के दीवान शत्रुजीतसिंह और वंकाईश्वरसिंह दो पुत्र थे[1] । दीवान ईश्वरसिंह के मरने के बाद बंका विजयबहादुर तथा इनके बाद दीवान वंकाप्यादे जू तथा बाद में बंकामेहरवानसिंह गद्दी पर बैठे ।

4- धुरवई :- दीवान रायसिंह ने धुरवई की जागीर अपने पुत्र अमानसिंह (मानसिंह) को प्रदान की । इनके तीन पुत्र , खेतसिंह, जैसिंह और जसवन्तसिंह थे । 1823 में अंग्रेजी राज्य स्थापित होने पर सरकार ने जैसिंह के पुत्र बुद्धसिंह को गद्दी आसीन कराई । बुद्धसिंह के मरने पर नाहर सिंह को गद्दी मिली तथा नाहरसिंह के बाद रनजोरसिंह व उनके पुत्र हमीरसिंह जागीरदार हुये ।

5- चिरगाँव :- चिरगाँव की जागीर मोकमसिंह को मिली और उनके कोई पुत्र न होने से विजना के दीवान अजीतसिंह के पुत्र बखतसिंह को गोद लिया परन्तु अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने के कारण इनसे जागीर छीन ली गई[2] ।

6- करीं :- करीं की जागीर फतेहसिंह को मिली तथा बाद में कोई वारिश न होने के कारण अन्य रियासतों में मिला दी गई ।

7- पसरई :- पसरई की जागीर भुजवलसिंह को मिली और यह भी जागीर कोई वारिश न होने के कारण अन्य रियासतों में मिला दी गई ।

8-टहरौली :- टहरौली की जागीर लक्ष्मनसिंह को मिली तथा उनके बाद इसको ओरछा राज्य में मिला दिया गया[3] ।

इस प्रकार करीं और पसरई की जागीरें लुप्तप्राय: सी हो गई तथा टहरौली की जागीर के प्रमाण स्वरूप वहाँ का किला खण्डहर के रुप में आज भी विद्यमान है[4] ।

1- गोरेलाल तिवारी "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ट315,

2- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 1-1-83

3- गोरेलाल तिवारी "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ट 312

4- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 2-1-83

समथर :--

---------- दतिया के राजा इन्द्रजीत नन्हेशाह गूजर के पुत्र मदनसिंह को समथर किले की किलेदीरी व राजधर की उपाधि विक्रम सम्वत् 1790 में प्रदान की गई[1] । इसके बाद इनके पुत्र देवीसिंह को पाँच गाँव की जागीर दी गई इसी समय मराठों की चढाई हो जाने से समथर स्वतन्त्र राज्य बन गया । इनके बाद राजा रंजीतसिंहदेव गद्दी पर बैठे इनके तथा इनके दोनो भाइयों पहाडसिंह और विजयसिंह के लड़के न होने से चचेरे भाई हिन्दूपत राजा हुये[2] ।

हिन्दूपत के पश्चात चतरसिंहजीदेव तथा इनके पश्चात वीरसिंहदेव राधाचरणसिंहदेव शासक हुये तथा वर्तमान शासक श्री राजारणजीतसिंहजीदेव हैं[3]।

--:बुन्देलखण्ड की भौगोलिक स्थिति :--

भूगोल प्रमुखत: एक ऐसा वयावहारिक विज्ञान है जिसमें क्षेत्र, प्रदेश के सांस्कृतिक तत्वों की अवहेलना सम्भव नहीं है । भूगोल की विशुद्ध तथा व्यावहारिक शाखाओं के मध्य विचारों ,प्रविधियों तथा परिणामों के परस्परिक विनिमय में क्षेत्रीय सांस्कृतिक तत्वों के विश्लेषणों को उपयुक्त स्थान प्रदान किया जाने लगा है[4] ।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र भारत में ही नहीं अपितु दक्षिणी-पूर्वी ऐशिया में एक ऐसा प्रदेश है जो सांस्कृतिक तत्वों में अपना विशेष महत्व रखता है । बुन्देलखण्ड को प्राकृतिक दृष्टिकोण से विन्ध्य पर्वत माला की मान्यता प्राप्त है और ऐतिहासिक रुप से भारतवर्ष का वक्षस्थल माना गया है ।

1- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 1-1-83 को गनेश मिस्त्री एवं मदिर के पुजारी से प्राप्त जानकारी ।

2- गोरेलाल तिवारी "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ठ 290

3- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 1-1-83

4- "मामुलिया" त्रैमासिक पत्रिका अंक 3 पृष्ट 42

बुन्देलखण्ड प्रदेश के सीमांकन के भौगोलिक,सांस्कृतिक तथा राजनैतिक तीन आधार हैं । भौगोलिक दृष्टिकोण से इसके अन्तर्गत मध्य प्रदेश का छतरपुर,टीकमगढ,दतिया तथा पन्ना जनपद आते हैं और उत्तर प्रदेश के झाँसी ,बाँदा,हमीरपुर,जालौन तथा ललितपुर जनपदों को सम्मलित किया जाता है[1] (देखें मानचित्र नं 0 2)

भौगोलिक प्रादेशिक संकल्पना की दृष्टि से इस क्षेत्र के कई ऐसे भाग हैं जहाँ समांगता का दर्शन होता है । यदि बुन्देलखण्ड को दो प्रमुख भौगोलिक उप प्रदेशों में बुन्देलखण्ड मैदान तथा बुन्देलखण्ड उच्च भूमि में विभाजित करें तो मैदानी भाग में बाँदा ,हमीरपुर,जालौन तथा दूसरे भाग में पन्ना, छतरपुर,टीकमगढ आदि को उच्च भूमि में सम्मिलित किया जा सकता है और इनमें अनुरूपता भी पाई जाती है ।

ग्रामीण बस्तियाँ बुन्देलखण्ड की संस्कृति को तो अपने में समाहित किये हुये ही हैं परन्तु इसके अतिरिक्त बुन्देली संस्कृति की छाप नगरीय बस्तियों में भी अवलोकित की जा सकती है तथा इस भौगोलिक सांस्कृतिक क्षेत्र में स्थित झाँसी,ललितपुर ,छतरपुर,टीकमगढ,बादा ,हमीरपुर,उरई, महोवा एवं पन्ना आदि में अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं ।

बुन्देलखण्ड में विन्ध्याचल ,हंसपर्वत, स्वर्णगिरि, उदयगिरि,एवं सतपुडा आदि पर्वत सुशोभित हैं । प्रमुख नदियों में यमुना,वेतवा,पहूज, चम्बल,केन ,धसान , नर्वदा , टांस एवं सिन्ध आदि हैं[2] । उत्तर में यमुना , दक्षिण में नर्वदा, पूर्व में टांस ,पश्चिम में चम्बल नदी इस प्रदेश की चारों ओर की सीमाओं का कार्य करती हैं । एक तत्कालीन कवि ने बुन्देलखण्ड के महाराज छत्रसाल के समय की क्षेत्रसीमा का उल्लेख इस प्रकार किया है[3]"इत जमना उत नर्बदा, इत चम्बल उत टोंस ।

छत्रसाल सौं लरन की, रही न काऊौंस ।।

1- आर0 एल0 सिंह (सम्पादक) ए रीजनल ज्योग्रफी 1971 पृष्ठ 597

2- रामचरण हयारमित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य"पृष्ठ 140

3- ठाकुर लक्ष्मनसिंह गौर "ओरछा का इतिहास" पृष्ठ 15

3- रामचरण हयारमित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य"पृष्ट 269

विभिन्न प्रकार के वृक्षों ,जडबूटियों,पशुपक्षियों आदि से अलंकृत प्रदेश अपनी प्राकृतिक छटा में चार चाँद लगा देता है । वर्षा तथा शरदकाल में यहाँ के वृक्ष ,लतिकायें मनोरम हो जाती हैं । यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यप्रद है । इसका देशान्तर 78·82 अक्षांश 26·23 के लगभग है , कर्क रेखा इसके निचले मध्यभाग में से जाती है इसका श्रेष्ठ पृष्ठभाग समुद्र सतह से 3000 फुट ऊँचा है और ढाल के उत्तरी अन्तिम छोर पर यह ऊँचाई केवल 500 फीट रह जाती है[1] ।

बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत अध्ययन किये जाने वाले कुछ प्रमुख स्थानों का भौगोलिक विवरण का अवलोकन हम निम्नरूप में कर सकते हैं ।

दतिया का भौगोलिक प्रारुप :- मध्यप्रदेश के अन्तर्गत आने वाले बुन्देलखण्ड भाग में दतिया एक छोटा जिला है (मानचित्र नं0 2) झाँसी दिल्ली रेलवे लाइन पर स्थित एक प्रमुख रेलवे स्टेशन है ,हालाँकि रेलवे स्टेशन से बस्ती कुछ दूर है । जिला दतिया मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग मे स्थित है इसकी दो तहसीलें है दतिया और सेवडा । यह जिला औद्योगिक दृष्टिकोण से पिछडा हुआ है तथा इस जिले में दो विकासखण्ड हैं जिसकी सीमायें दोनों तहसीलों से मिलती है[2] । वर्तमान समय में इसे अविकसित जिलों में सम्मिलित किया गया है ।

दतिया राज्य भिण्ड व ग्वालियर के प्रमुख ब्लाक उत्तर में तथा शिवपुरी जिला मध्य प्रदेश में जिसके दक्षिण में झाँसी व पश्चिम में भिण्ड और बाघेर (ग्वालियर की तहसील) पूर्व में पडती है । यह जिला गंगा घाटी के किनारे तथा महान विन्ध्याचल के चारो ओर बसाहै जो देखने में त्रिभुजाकार सा प्रतीत होता है , उत्तरपूर्व से दक्षिण पश्चिम तक इसकी लम्बाई 90 किलोमीटर है तथा पूर्व से पश्चिम तक की लम्बाई 48 किलोमीटर है[3] ।

1- रामचरण हयारण मित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृतऔर साहित्य"पृष्ठ 139

2- जिलादतिया "एक नजर में" जिला उद्योग केन्द्र द्वारा प्रगाशित पृष्ठ 2

3- गजेटियर आफ इण्डिया(म0 प्र0) दतिया जिला पृष्ठ 12-14

एक प्रथम इकाई के रूप में दतिया राज्य का इतिहास 20 अक्टूबर 1626 से प्रारम्भ होता है । समुद्र सतह से इसकी ऊँचाई 800 फुट है यह 25•36 अंश से 26•19 अंश उत्तरी अक्षांश तथा 78•12 अंश से 78•50 अंश पूर्वी देशान्तर पर स्थित है । इसका अधिकतम तापमान 67^0 फे0हा0 तथा न्यूनतम तापमान 42•5^{0}फे0 हा0 है । औसत वर्षा 826 मि0मी0 है इसका क्षेत्रफल 2034•8 वर्ग किलो मी0 है[1] ।

दतिया जिले की मुख्य नदी सिन्धु है यह दतिया और ग्वालियर सीमा पर लगभग 50 मील तक बहती है । दतिया के निकट झाँसी ,सोना कणर गिर ,कोटरा,बसई,ग्वालियर आदि मुख्य रेलवे स्टेशन हैं । इसकी सीमा में झाँसी,उन्नाव,भाण्डेर,सेवडा प्रमुखरूप से आते हैं । सिन्धु,वेतवा पाहूज एवं भादुर इस राज्य की प्रमुख नदियाँ हैं । 1956 में दतिया को मध्यप्रदेश में शामिल कर दिया गया। इसका सांस्कृतिक,ऐतिहासिक एवं राजनैतिक स्वरूप अब एक इकाई के रूप में हाकर मध्यप्रदेश की समस्त इकाई के साथ जुड गया है[2] ।

ओरछा का भौगोलिक प्रारूप :- भारतवर्ष के मध्यभाग में नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण मेंु विन्ध्याचल पर्वत की शाखाओं से समाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित सृष्टि सौन्दर्यकृत जो प्रदेश है उसे बुन्देलखण्ड कहते हैं । इसके मध्य भाग में टीकमगढ जिले का ओरछा एक प्रमुख राज्य है[3] । (देखें मानचित्र नं0 2)

झाँसी,मानिकपुर रेलवे लाइन पर झाँसी से पहला स्टेशन ओरछा पडता है हालाँकि कि स्टेशन से ओरछा बस्ती लगभग 5 कि0मी0 दूर है यह बुन्देले राजाओं की प्राचीन राजधानी है[4] । यहाँ बेतवा और यमुना दो नदियों का संगम विशेष रुप से दर्शनीय है इसके बीच में एक विशालभवन बना है जिसे लंका कहते हैं ।

1- डिस्ट्रिक स्टेटिकल हैण्डबुक दतिया 1973 पृष्ठ 38
2- गजेटियर ओफ इण्डिया पृष्ठ 14,15
3- झाँसी जिला गजेटियर पृष्ठ 190
4- रामचरण हयारणमित्र बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य पृष्ठ 153

वेतवा ने अपनी पावन धारा से ओरछा को तीन ओर से घेरा है जिससे इसकी शोभा बढ गई है । वेतवा के घाटों में राजघाट ,कंचनाघाट तंगरंइय घाट विशेष मनमोहेक हैं । तंगरइयघाट के पास ही तुलसी पहाडी है , ऐसा कहा जाता है कि यहीं गोस्वामी तुलसीदास ने कवीन्द्रकेशव को रामकथा सुनाकर प्रेत योनि से मुक्त किया था पास में ही तुंगारइय है जहाँ तुंग ऋषि ने तपस्या की थी[1] ।

ओरछा के निकटतम स्थानों में झाँसी बरुआसगर ,टीकमगढ,मरुरा-नीपुर ,मऊसानिया , अहारपपौरा आदि महत्वपूर्ण दर्शनीय स्थल हैं । चित्रकूट,करवी,खजुराहोआदि धार्मिक एवं एतिहासिक स्थानों का ओरछा रेलवे लाइन होकर मार्ग जाता है । टीकमगढजिले की निवाडी तहसील में ओरछा ग्राम स्थित है । यहाँ वन में जंगली जानवर जैसे साँभर ,तेदुआ , हिरण आदिपाये जाते हैं । वृक्षों में अर्जुन,छीताफल ,पलास, आमला,काँकैर आदि अधिक हैं कहीं-कहीं पर सागौन , सीसम,पीपलएवं नीम भी पाये जाते हैं । प्राचीन काल में ओरछा में बागों की संख्या भी अधिक थी इन की रौस पट्टियाँ वेतवा के पूर्वी भाग में आज भी मिलती हैं । पक्षियों में नीलकंठ ,चातक,मोरएवं तोता अधिक मात्रा में अवलोकित होते है[2] ।

झाँसी एवं बुन्देलखण्ड के अन्य दर्शनीय स्थलों का भौगोलिक प्रारुप:-

बुन्देलखण्ड के मध्य भाग में स्थित झाँसी मध्य रेलवे का एक पुमुख रेलवे स्टेशन है । (मानचित्र नं0 2) यहाँ से बुन्देलखण्ड की संस्कृत एवं वैभव के प्रतीक के रुप में दर्शनीय स्थलों केा जाने-आने के रेल एवं सडक मार्ग द्वारा समस्त साधन आसानी से सुलभ हो जाते हैं दतिया,ग्वालियर,ओरछा,टीकमगढ,मऊरानीपुर,बरुआसागर,तालवेहट,ललितपुर आदि प्रमख स्थानों से मध्य झाँसी नगर स्थित है[3]

1-- रामचरणहयारणमित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृत और साहित्य"पृष्ठ 153

2= स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 26-12-82

3- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 26-12-82 से 2-1=83

झाँसी का वीरतापूर्ण वैभव आज भी बुन्देलखण्ड की संस्कृति में अपना प्रमुख स्थान बनाये हुये है । झाँसी का किला स्वतन्त्रता आन्दोलन का ऐतिसिक वर्णन आज भी अपने में समाहित किये सब को अपनी ओर आकर्षित करता है ।

अन्य स्थानोंकी भौगोलिक स्थिति :--

टोरीफतेहपुर, विजना, टहरौली, चिरगाँव, गुरसराय, अमरागढ, समथर, टीकमगढ, धवेला-(मऊसानिया), तालवेहट, ललितपुर आदि स्थानों का मार्ग झाँसी से सुलभ पडता है (देखें मानचित्र नं0 2)

झाँसी से चिरगाँव तथा चिरगाँव से दो मार्ग हो जाते हैं एक जाता है अमरागढ और मोठ होता हुआ समथर को और दूसरा गुरसराय को जाता है[1] । झाँसी से मोठ रेलवे स्टेशन 54 कि0 मी0 है और मोठ से समथर 14 कि0 मी0 तथा मोठ से अमरागढ 7 कि0 मी0 की दूरी पर स्थित है । इसी प्रकार झाँसी से टहरौली , टहरौली से गुरसराय , गुरसराय से पंडवाहा होते हुये टोरीफतेहपुर तथा टोरीफुतेहपुर से विजना के लिये बस द्वारा मार्ग है[2] ।

झाँसी से छतरपुर जाने पर मध्य में धुवेला स्थान पडता है जहाँ पर कि पुरातत्व विभाग का एक संग्रहालय भी है । झाँसी से ही तालवेहटव ललितपुर के लिये रेल व बस दोनो मार्ग सुगम हैं सुलभ हैं[3] ।

टीकमगढ जिसका प्राचीन नाम टेरी रहा है जनश्रुति के अनुसार जब ओरछा में रामराज्य की स्थापना हुई तब महाराज प्रतापसिंह ने इसको ही राजधानी बनाया । इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण बात यह भी है कि वीरसिंहदेव द्वितीय ने सर्वप्रथम इस राज्य को भारतीय गणराज्य में विलय करने के लिये स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा0 राजेन्द्रप्रसाद को अर्पित किया था[4] ।

1व2- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 1-1-83 व 2-1-83

3- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 27-12-82

4- रामचरणहयारण मित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य" पृ0163

टीकमगढ से ही बानपुर ,मदनपुर आदि ऐतिहासिक स्थानों का भी अवलोकन किया जाता है आज भी वहाँ के खण्डहर एवं अवशेष भवन चित्रकलाएवं मूर्तिकला के उदाहरण अपने में समाहित किये अपने पूर्व वैभव की याद दिलाते हैं ।

इस प्रकार सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड की भौगोलिक एवं प्राकृतिक स्थिति का अवलोकन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि भले ही कुछ जनपद मध्य प्रदेश तथा कुछ उत्तर प्रदेश में स्थित हैं परन्तु इनकी संस्कृति ,साहित्य मूर्ति,शिल्प,चित्रकला,एवं लोककला सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड की एक दूसरे में से अलग नहीं की जा सकती वरन एक दूसरे से प्रभावित एवं आपस में सामंजस्य स्थापित करती है ।

बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक स्थिति का अवलोकन करने से ऐसा आभास होता है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य चित्र एवं मूर्तिकला के अनेक अनगिनित केन्द्र इसमें समाहित हैं[1]।

1- सर्वेक्षण यात्राओं के दौरान प्राप्त जानकारी एवं डा० आर० ए० अग्रवाल मेरठ एवं डा० एस० ड० त्रिवेदी निदेशक ,राजकीय संग्रहालय झाँसी द्वारा प्राप्त जानकारी ।

बुन्देलखण्ड ऐतिहासिक एवं भौगोलिक स्थितियों के साथ उनका सांस्कृतिक विकासक्रम व चित्रकला के विकास में योगदान :---

बुन्देलखण्ड के वैभव का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यहाँ के सांस्कृतिक विकासक्रम में इस क्षेत्र की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विकासक्रम तथा ऐतिहासिक तत्वों का स्वरुप महत्वपूर्ण रहा है । बुन्देलखण्ड की वसुन्धरा को इतिहास वेत्ताओं ने रत्न गर्भा की उपाधि से विभूषित किया है क्यों कि इस भूमि में समय समय पर वीरों ,कवियों ,चित्रकारों और वास्तुकलाविदों तथा उच्चतम गायकों को जन्म दिया है[1] ।

वर्तमान बुन्देलखण्ड जो प्राचीनकाल में चेदि,वत्स,दशाण,जेजाकभुक्ति आदि अनेक नामों से जाना जाता था । ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी से ही न केवल राजनैतिक क्षेत्र में अपितु ,संस्कृत की विविध दिशाओं में प्रचुर पुरातत्वीय अवशेषों से सम्बद्ध है जिससे यहाँ की संस्कृति पर प्रभूत प्रकाश पडता है । यहाँ प्राकृतिक वैभव में एवं ऐतिहासिक रुप में कुछ ऐसी प्रमुख घटनायें घटी हैं जो बुन्देलखण्ड को आज भी अमर कर रहीं हैं ।

ललित कलाओं के उद्भव एवं विकास की दृष्टि से बुन्देलखण्ड क्षेत्र का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है । वास्तुकला,चित्र तथा मूर्तिकला का इस भू-भाग में आद्यैतिहासिक काल से लेकर मध्यकाल के अन्त तक अनेक रुपों में विकास हुआ इसका प्रमाण बहुसंख्यक ,स्मारक,स्तूप, चित्र तथा मूर्तियां हैं जो बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्थानों से प्रज्ञप्त हुई हैं[2] ।

1- रामचरणहरारण मित्र "उदय और विकास" पृष्ठ 335

2- मामुलिया त्रैमासिक पत्रिका अंक 5 पृष्ठ 85

बुन्देलखण्ड की भूमि कवियों ,साहित्कारों व चित्रकारों के लिये एक ऐसी भूमि है जिसमें आचार्य केशव,मतिराम आदि रीतिकालीन कवियों की भावनायें समस्त बुन्देलखण्ड में व्याप्त दिखाई पडती हैं । बुन्देले शाष्क भारतीयता के मूल स्वरुप को मुगलों के आधिपत्य में होते हुयेभी छोडना नहीं चाहते थे । यह यहां की परम्पराओं एवं मान्ताओं आदि में पूर्णतया सिद्ध एवं अवलोकित हो जाता है[1] । इसीलिये यहां के साहित्य और चित्रकला का विषय एवं रीतिकालीन कवियों का विषय राग-रागनी ,कृष्णलीला अवतार ,देवीदेवताओं ,राजाओं की सवारी, जलविहार ,आखेट एवं शाही व्यक्तियों के चित्र इसमें उकेरे गये हैं ।

चित्रकारों ने रामायण,महाभारत,साधुसन्तों आदि को भी अपनी तूलिका का विषय बनाया है । मुगलों के प्रभाव से भक्ति विषय भी प्रभावित नहीं हो पाये वरन् चित्रकार ने उनमें आत्मा ,और परमात्मा व नायक-नायिका आदि के भाव को लेकर उसको प्रस्तुत कर दिया है । यहाँ की भूमि पर राजनैतिक परिवर्तनों का इतना अधिक प्रभाव सामने नहीं आया है[2] ।

मध्यकालीन भारत में पन्द्रहवीं शताब्दी से सांस्कृतिक पुनरुत्थान की कहानी बुन्देली इतिहास के साथ जुडी है । वास्तुकला,मूर्तिकला एवं स्थापत्यकलाओं का उत्तरोत्तर विकास होता रहा है[3] । तत्कालीन राजपूत और मुगलकालीन कला इसको प्रभावित करती रहीं है और इसके सांस्कृतिक विकासक्रम में अपनायोगदान देकर महत्व को विकसित किया है

दतिया के प्रसिद्ध महाराजा भवानीसिंह के शासनकाल में यहां के सांस्कृतिक प्रदेश की बहुमुखी प्रतिभा देखने को मिलतीहै है क्यों कि उन्होने यहां की प्राचीन गौरवमयी मान्यताओं एवं परम्पराओं को महत्व देकर क्षेत्रीय प्रभाव में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आने दी ।

1- गोरेलाल तिवारी "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ट 4,5

2 व 3- केशवग्रन्थावली खण्ड 3(विश्वनाथ प्रसादमिश्र) पृष्ठ 24-26

ओरछा राज्य का स्वरुप वीरसिंहजीदेव के शासनकाल में इतना उत्कर्ष पर थप कि उस समय की भक्ति एवं रीतिकालीन साहित्यिक परम्परा किसी न किसी रुप में प्रस्तुत हो रही थी[1] । बुन्देलखण्ड अपनी प्राचीन धरोहर के लिये आज भी प्रसिद्ध है जिससे उसकी कला को यथोचित स्थान मिला है राजनैतिक,ऐतिहासिक परिस्थितियों में भी उन्होंने अपने कलात्मक एवं सांस्कृतिक स्वरुप को नहीं छोडा है यह विशिष्ट उदाहरण है ।

ओरछा का लक्ष्मीनारायण मन्दिर,राजमहल,जहाँगीरमहल अपने में अनूठे हैं इसी प्रकार दतिया में राजमहल ,लाला का ताल,बंदरिया का ताल करनसागर,वक्सी के महावीर ,भैरवपहाडी,उडनू की टौरियाँ एवं गोविन्द जी का मन्दिर आदि अपने में साक्षात उदाहरण हैं[2] ।

लगभग इन सभी प्रतिष्ठानों में चित्रकारी से पृथक अनोखे स्थापत्य के भी दर्शन होते हैं । भित्ति चित्रों एवं लघु चित्रों में स्थानीय रंगों का प्रयोग हुआ है । मानव आकृतियों में स्त्री पुरुषों के पहनावे एवं उनके आभूषण इतने बुन्देलखण्डीय हो गये हैं कि जिनमें क्षेत्रीय प्रभाव पूर्णरुप से परिलक्षित प्रतीत होता है । रेखाओं और रंगों का संयोजन राजस्थानी एवं पहाडी शैलियों की भाँति दिखाई पडता है । चित्रो की विषय वस्तु ऐतिहासिक ,पौराणिक,धार्मिक एवं साहित्यिक विषयों से परिपूर्ण हैं इनमें लोकजीवन की झाँकी भी उभर कर सामने आयी है ।

पुरुष आकृतियोंमें तिलक ,धोती-कुर्ता एवं मालवा पगडी अंकित है , जबकि स्त्रियों के अंकन में लाँगदार धोती एवं ब्लाउज अधिक पाये गये हैं । तत्कालीन मुगल एवं राजस्थानी प्रभाव कहीं - कहीं पर परिलक्षित अवश्य होता है[3] । जिससे यहाँ के चित्रकार वहाँ की वेशभूषा के मोह को नहीं छोड पाये हैं ।

1- बी0 एस0 अग्रवाल (दतिया दर्शन) पृष्ट 406,407

2- राममित्र चतुर्वेदी (ओरछा) पृष्ट 25-27

3- राममित्र चतुर्वेदी (ओरछा) पृष्ट 40-45

सुनहरे और चाँदी के रंग का प्रयोग भी चित्रों में खुलकर किया गया है । समथर ,विजना,ढहरौली, टोरीफतेहपुर,अमरागढ,आदि के प्रतिष्ठानों ,छतरियों ,मन्दिरों,मुकरवों आदि में जनजीवन से सम्बन्धित दैनिक विषय ,धार्मिक दृश्य एवं लोक व पौराणिक गाथाओं के चित्र अंकित मिलते हैं[1] ।

किसी देश का सांस्कृतिक परिवेष कलाओं के लिये मार्ग प्रशस्त करता है । बुन्देलखण्ड भी इसी प्रकार का एक ऐसा क्षेत्र है कि जिसमें यहाँ के सांस्कृतिक विकासक्रम में चित्रकला के विकास के लिये अभूतपूर्व योग-दान मिला है ।

किसी स्थापत्य एवं मूर्तिकला में वैष्णव व जैन धर्म का प्रभाव इतना अधिक है कि समस्त क्षेत्रों में चन्देलों और प्रतिहार युग की मूर्तियाँ आज भी बहुत से संग्रहालों एवं स्थानीय मन्दिरों आदि में इस क्षेत्र की गाथा को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत कर रह हैं । उनमें धार्मिक भैक्तिभावना कूट-कूटकर भरी है ।

जहाँतक बुन्देले स्थापत्य का प्रश्न है वह भी अपने में अनूठा है जिसको आसानी से पहचाना जा सकता है । यदि भकित और रीतिकालीन युग के धर्म और साहित्य के प्रभाव से यह चित्र वंचित रहता है तरे इसका आज ऐसा रूप न होता ।

यह इस क्षेत्र का सौभाग्य है कि जिसमें वीर एवं प्रतापी शासक हुये तथा उनमें धर्म परायणता एवं शौर्य इतना अधिक रहा कि जिससे उनका स्वतन्त्र अस्तित्व बना है । कलाओं के विकास में यह अपूर्व महत्व की बात है कि जो यहाँ की संस्कृति और साहित्य के साथ विकसित और फली फूली है[2] ।

1- स्वयं सर्वेक्षण यात्राओं के दौरान प्राप्त जानकारी के आधार पर

2- राजस्थान की लघु चित्रशैलियाँ (रा0ल0क0अकादमी जयपुर) पृष्ठ 7।

यह प्रदेश प्राकृतिक समृद्धि का प्रदेश है लोकजीवन भी अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं को अपने अन्तस में संजोये हुये आज भी लहराता हुआ दृष्टिगोचर होता है । बुन्देलखण्ड वन-उपवन, पशु-पक्षियों, सर-सरिताओं और पर्वतमालाओं से आक्षादित प्रदेश हैं । इस प्रदेश की छै: ऋतुयें अपने अपने निश्चत समय पर प्रदक्षणा किया करती हैं[1]। यहाँ की संस्कृति और लोक साहित्य यहाँ के ग्रामों में आज भी सुरक्षित है ।

भारत में चित्रकला का अपना महत्वपूर्ण स्थान है । कला के माध्यम से विश्व को मानव शक्ति व सत्य की अनुभूति कराई जाती है । बुन्देलखण्ड की कला में उपरोक्त तथ्यों का समावेश व योगदान पूर्णरूप से परिलक्षित प्रतीत होता है इसके अन्तस में क्षेत्रीय धरातल की वाह्य झाँकी झाँकती रहती है जिसका उदय और विकास समय - समय पर होतारहा है बुन्देली चित्रकला में भी यहाँ की धरती का बहुविधि प्रभाव अंकित हुआ है जिसने भारतीय चित्रकला के इतिहास में अपूर्व योगदान प्रदानकर एक महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त किया है[2]।

1- रामचरणहरारण मित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृत और साहित्य" पृष्ट 25।

2- स्वंय सर्वेक्षण यात्र के दौरान नागरिकों से प्राप्त जानकारी के अनुसार

अध्याय-द्वितीय

बुन्देल खंड की चित्रकला

-: ० :-

सांस्कृतिक विकास क्रम के साथ चित्रकला का स्वरूप (उदभव, विकास व संरक्षक) प्रमुख प्रतिष्ठान, सर्वेक्षण, विशेषतायें व महत्व ।

अध्याय-द्वितीय --

बुन्देलखण्ड की चित्रकला :-

बुन्देलखण्ड क्षेत्र जिसमें मध्य-प्रदेश के दतिया ,ओरछा,टीकमगढ , पन्ना ,छतरपुर आदि एवं उत्तर-प्रदेश के झाँसी ,बाँदा,जालौन,हमीरपुर एवं ललितपुर आते हैं । इनमें से कुछ स्थानों का सांस्कृतिक स्वरूप इतना महत्वपूर्ण है कि वहाँ के अतीत की गौरवमयी गाथा और साहित्य का विकास ऐसा हुआ है जिससे चित्र कला को अनायास ही एक ऐसी पृष्टिभूमि मिल गई जिससे कि उसका क्रमिक विकास सामने आ गया । इसके लिये भी यह क्षेत्र अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये हुये है जिसका भारतीय चित्रकला में एक प्रमुख स्थान है[1] ।

1- राममित्र चतुर्वेदी "ओरछा" पृष्ट 68,69

चित्रकला के माध्यम से विश्व को मानव सत्य की अनुभूति कराई जाती है । मानव जीवन में ईर्ष्या ,ग्लानि,वीरता,और प्रेम आदि भावों का प्रस्फुटन चित्रकार की तूलिका द्वारा उसकी प्रभावोत्पादक शैली में दर्शित होता है[1] । चित्रकार भूत की वेदी पर वर्तमान का सृजनकर भविष्य की ओर संकेत करता है क्योंकि वह त्रिकालदर्शी होता है ।

सांस्कृतिक विकासक्रम के साथ चित्रकला का स्वरूप :-

यहाँ की भूमि आर्य सभ्यता के आदिम काल से बहुत पहले अनार्य कालीन संस्कृति के परम प्राचीनतम् अभिनयों की लीला क्षेत्र रही है । प्राचीनता में पांचाल देशीय इतिहास को छोड भारत के किसी अन्य प्रदेश का इतिहास बुन्देलखण्ड के साथ अपनी तुलना नहीं कर सकता । वैदिक कालीन इतिहास और साहित्य से लेकर पौराणिक , बौद्ध,जैन,मौर्य,हूण ,कलचूर्य ,चन्देल तथा आधुनिक साहित्यों और ऐतिहासिक तत्वों वक में इसके नगरों और नागरिकों का उल्लेख मिलता है ।

लगभग ढ़ै सहस्त्र वर्ष प्राचीन अनार्य चित्रकला के चित्रों से जो माणिकपुर की वनस्थली में योगनियों की गुफा के द्वारों पर अंकित है और अत्यन्त साधारण रेखाओं द्वारा व्यक्त किये गये हैं । इस भूमि की पुरातन अर्द्ध सभ्यता को प्रमाणित करते हैं ।

1962 में श्री के0 पी0 जडिया ने पन्ना के पास व्रहस्पति कुण्ड में ऐसे शैल चित्र खोजे हैं कि तथा सागर विश्वविद्यालय के डा0 श्यामकुमार पाण्डेय ने छतरपुर जिला के देवरा पहाडी में एक ऐसा स्थल खोजा था जिसमें लाल रंग (सम्भवत: गेरु) द्वारा बनी सुन्दर मछली का चित्र प्राप्त हुआ है[2] ।

1- रामचरणहयारण मित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य"पृ025।

2- मामुलिया त्रैमासिक पत्रिका अंक 2 पृष्ट 78

बुन्देली चित्रकला की परम्परा का श्रोत भित्ति चित्रों में हैं चित्र कला का जन्म पहाडों की उन गुफाओं में हो गया था जिनमें मनुष्य रहते थे । बुन्देली चित्रकला का स्वरुप बुन्देले राज्यके विकासक्रम के साथ जुडा है । प्राकृतिक सम्पदाओं से परिपूर्ण यह भूमि अपने वृहद इतिहास के उतार -चढाव के मध्य पनपी और विकसित हुई है । यहाँ के शासकों का संरक्षण पाकर वह अमर हो गई । इन्होने साहित्य , संगीत एवं चित्रकला को यथोचित प्रोत्साहन दिया विशेषकर ओरछा और दतिया आदि स्थानो पर चित्रकला का अपार भण्डार यहां की भावनाओं को प्रदर्शित करता है यही नहीं यहां के सुप्रसिद्ध कवियों ने ऐसे साहित्य का सृजन किया है कि जिसकी एक-एक रचना कलाकारों के प्रेरणा श्रोत बन गई है साथ में नये विषयों पर चित्रकार ने अपनी तूलिका चलाई जिससे नई दिशायें प्रस्फुटित हुई[1] ।

पन्द्रहवीं शताब्दी के रीतिकालीन कवियों जिसमें आचार्य केशव , मतिराम,देव आदि के साहित्य पर अनेकों चित्र बनाये गये जो समस्त भारत के अन्दर प्रेरणा के श्रोत के रूप में माने जाते हैं । कुछ चित्रों में तो चित्र कारों ने राजनैतिक ,सामाजिक,धार्मिक और लोकगाथाओं के चित्र इसप्रकार प्रस्तुत किये जिनसे कि इस भूमि की स्मृति भुलाई नहीं जा सकती । ऐसे चित्र कुछ राजकीय संग्रहालयों के अतिरिक्त व्यक्तिगत संग्रहों में भी उपलब्ध हैं ।

राजस्थानी एवं बुन्देलखण्डी चित्र भारत में ही नहीं वरन् समस्त विश्व की कला धरोहर के रूप में माने जायें तो अतिशयोक्ति न होगी । इन प्रदेशों के चित्रों का इतिहास प्रागैतिहासिक काल से ही प्रारम्भ हो जाता है जब से मनुश्य ने कुछ भी कला के क्षेत्र में किया है तब से सांस्कृतिक विकास के साथ कला का आश्रय ही उसका आधार बना है ।

1- डा0 आनन्दकृष्ण राय "सर्वे ओफ राजस्थानी पेन्टिंग्स" अप्रकाशित शोध प्रबन्ध द्वितीय अध्याय ।

जब मनुष्य जंगली जीवों में रहता था उसकी संस्कृति का विकासक्रम प्रारम्भ ही हुआ था उस समय वह अपनी इस रुचि को अनगण औजारों व पत्थर की चट्टानों पर कुछ अंकन करके अपने हृदय की हूक को पूरा करता था इसका साक्षात्प्रमाण उनके तत्कालीन आखेट के चित्र ,परस्पर युद्ध व पशु-पक्षी आदि के चित्र हैं । वह उनके द्वारा अपने भावों को प्रदर्शित करता था और जो रंग प्रयोग में लाये गये हैं वे भी एसे हैं जो सहज में ही उपलव्ध हो जाते थे जैसे खडिया,कालौच,रामरज और हिरौजी आदि । अधिकतर इस प्रकार के चित्रों के स्थान खुली चट्टानें या गुफायें हैं[1] ।

इस प्रकार के चित्र मध्यप्रदेश के मन्दसौर जिले में चम्बल के तट पर प्राप्त चट्टानों पर उपलव्ध हैं । पहले यह स्थान के अन्तर्गत आते थे अब मध्यप्रदेश और राजस्थान अलग प्रदेश होने के नाते मन्दसौर क्षेत्र की सीमायें मध्य प्रदेश में आती हैं[2] । इसी प्रकार चम्बल के तट पर स्थित चट्टानों पर बने चित्र इस श्रंखला के एक भाग हैं[3] ।

राजस्थान की सरस्वती हषद्वती नदियों के बीच के मैदानों में ईसापूर्व के कुछ ऐसे मिट्टी के बर्तन तथा उन पर चित्रित आलेख सामने आये हैं जो कि हडप्पा कालीन संस्कृति के विस्तारस्वरुप कहे जा सकते हैं इसी प्रकार राजस्थान के कुछ स्थानों पर स्लेटी रंग के पात्रों पर सरलरेखाओं , कोणों तथा वृतांशों के बने अलंकरणों की अधिकता मिलती है जिसे आजकल पकाई मिट्टी की सभयता कहते हैं[4] ।

300 से 500 ईसापूर्व के कुछ पहले लाल रंग के ऐसे बर्तन भी राजस्थान के उत्तरी भाग की कला प्रवृति के द्योतक हैं इसी प्रकार मेवाड़ में आहड़ स्थान पर कुषाणकालीन बहुत से वर्तन इस श्रंखला में आते हैं ।

1- डा0 सत्सप्रकाश "महाराणा कुम्भा विशेषांक कुम्भा अभिभाषण माला पृ09

0 डा0 जगदीशगुप्त प्रागैतिहासिक चित्रकला पृष्ठ 99 - 105

2- ए0 पी0 व्यास "राजस्थान की चित्रकला" पृष्ट 14,15

3- ओझा राजपूताने का इतिहास प्रथम भाग पृष्ठ 38

4- नागरी प्रचारणी पत्रिका पृष्ट 22-40

मार्ग भाग 4 तारानाथ एण्ड बुद्ध आर्ट पृष्ट 63

यहाँ तक कि छठी शताब्दी के प्रसिद्ध तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने राजस्थान की भूमि एवं मारवाड छेत्र के श्रगधर नामक चित्रकार का नाम लिखा है इसीप्रकार सातवीं शताब्दी से लेकर बारवीं शताब्दी तक जो चित्रकला व मूर्तिकला का विकास पाल शैली के रुप में हुआ उसमें भी इस क्षेत्र का नाम अग्रणीय है । गुरजर ,प्रान्तीय,चालुक्य (सोलंकी) चौहान ,परमार,कछवाहा चन्देला ,आदिदि लोग इन प्राप्तों में बस गये जिनहोंने अपनी चित्रशैली को जन्म दिया ।

तारानाथ ने राजस्थान की चित्र परम्परा की पुष्टि करते हुये कहा है कि सम्भवत: कई शताब्दियों तक भारत के पश्चिम में और विशेषतय: मारवाड और मेवाड पर अपना प्रभाव किये हुये थीं । लगभग उसी युग की बौद्ध चित्रकला जिसमें अजन्ता ,सित्तनवासल आदि की भित्ति चित्रकला के रुप में सामने आई जो आज भी अपना प्रभावबनाये हुये हैं । उपलब्ध सचित्र गन्थों में विक्रम संवत् 1216 का भद्रवाहु स्वामी रचित सचित्र कल्पसूत्र भारतवर्ष के पश्चिमी भाग का प्राचीनतम एवं कलात्मक ग्रन्थ है ।

उत्तर भारत में चित्रित ताड़पत्रीय प्रथम उपलब्धा ग्रन्थ "सावग पडिकमणसुत्त चुनी"[1] (श्रावक प्रति क्रमण सूत्र चूर्णी) है जो अहाड (उदयपुर) में सन् 1260 में मुहिलतेजसिंह के राजकाल में चित्रित हुआ है और जिसकी साज-सज्जा नागदा और चित्तौड के मोकल के मन्दिर की तक्षण कला की समता हें है । इसी प्रकार का दूसरा सचित्र ग्रन्थ "सुवास नाहयरियम् (सुपार्श्वनाथ चरितम्) है इसपर जैन और गुजरात शैली का प्रभावपूर्णतय: झलकता है । कल्पसूत्र में भी वेशभूषा कुम्भा के विजय स्तम्भों की मूर्तियों की वेशभूषा के अनुरुप दीखती हैं । सभी हस्तलिखित चित्रित ग्रन्थों में विशेषकर गीतगोविन्द , बालगोपाल स्तुति ,कृष्ण सम्बन्धी विषय राजस्थान के प्रारम्भिक चित्रण का श्रोत कहे जा सकते हैं ।

1- रायकृष्णदास "भारतीय चित्रकला " पृष्ठ 40-48

2-

इसी प्रकार बसन्तविलास भी राजस्थानी चित्रण के उद्गम का आधार माना जा सकता है इस पन्दहवीं शताब्दी के सगुणभक्ति मार्ग से सांस्कृतिक पुनरुत्थान ने जब संगीत ,वास्तु व साहित्य की उन्नति की तब चित्रकला की उन्नति न हुई हो ऐसा तो असंगत सा लगता है[1] ।

अजन्ता के भित्ति चित्र पाल,गुजरात,अपभ्रंश,राजस्थानी,मध्यभारतीय ,मुगल और पहाडी शैलियों में चित्रकला की यह धारा प्रभावित होती रहती है जो कि ग्रन्थों के चित्र लघुचित्र ,पटचित्र एवं भित्ति चित्रों में देखी जा सकती है ।

बुन्देलखण्ड की चित्रकला का उद्भव और विकास कई अन्य शैलियों की भाँति न तो एक स्थान में हुआ और न कुछ एक कलाकारों द्वारा ही हुआ । यहाँ के कितने ही प्राचीन नगर ,राजधानियाँ,धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठान ऐसे हैं जो कि स्थानीय विशेषताओं के कारण पल्लवित एवे पोषित चित्रकला वहाँ की शैली का रूप ले गई ।

जैन तथाजैनेत्तर ग्रन्थों को आधार बनाकर जो चित्रण हुआ उसे प्राय जैन शैली ,गुजरात शैली ,पश्चिमी भारतीय शैली कहें तो भी सातवी शती से पन्द्रहवी शती तक यहाँ पर मौलिक कला या अजन्ता एलोरा की कला के सामन्जस्य से पैदा होने वाले सिद्धान्तों के अनुकूल चित्रकला ,मूर्ति कला ,शिल्पकला की पगति होती रही थी[2] ।

बुन्देलखण्ड में तो अब भी ऐसे चित्रकला के कुछ रूप प्रचलित मिलते हैं जिन्हें अदिमकाल का ही कहें तो कोई गलत न होगा । सभ्यता के विकास क्रम के साथ उनमें कोई भी विशेष परिवर्तन नहीं हुआ । कुछ चित्र ऐसे भी उपलब्ध है जिनका रूप किसी कलाकार की कल्पना से आविर्भूत व ज्ञात नहीं होता है और यह भी पता नहीं चलता कि यह कितने काल से प्रचलित चले आ रहे हैं जैसे सुरातू का चित्र है । दीपावली के दिन इसकी पूजा होती है यह भित्ति पर चित्रित किया जाता है पहले खडिया मिट्टी से सफेदी की जाती है फिर हल्दी-चूने के रंग से यह अंकित किया जाता है[3] ।

1- ए0 पी0 व्यास "राजस्थान की चित्रकला" पृष्ठ 15
2- रायकृष्णदास "भारत की चित्रकला" पृष्ट 38-39
3- रामचरणहयारणमित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य"पृष्ट 252

दूसरा चित्र वटवृक्ष का मिलता है इसमें वट का एक वृक्ष चित्रितकर उसपर पक्षी बैठे हुये अंकित किये जाते हैं । तीसरा चित्र नमे का है यह स्त्री का चित्र है जिसमें नीचे चौखाना खींचा जाता है जो वस्त्रों का द्योतक है । चौथा चित्र तोता का मिलता है इसकी कल्पना भी निराली है[1] ।

बुन्देलखण्ड में ऐसे कितने ही चित्र प्रचलित है जिसकी कल्पना को प्रारम्भिक युग का ही कहा जा सकता है । यह धर्म की शरणपाकर अबतक जीवित चले आ रहे हैं पर इसका अर्थ यह नहीं कि चित्रकला का सूत्रपात बुन्देलखण्ड में ही हुआ है पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बुन्देलखण्ड में भी चित्रकला का प्रचलन आदि काल से चला आ रहा है । भारतीय चित्र कला के साथ-साथ वह भी विकसित होती चली आ रही है ।

प्रारम्भिक युग को पार कर भारतीय चित्रकला अजन्ता के युग में आती है जिसकी शैली ऐसी अपूर्व है कि वह आजकल के चित्रकार की आदर्श बनी हुई है । उसके रंगों में चमक और चिकनापन है । रेखायें स्पष्ट हैं । छाया भी अल्प मात्रा में दिखाई गई है । रेखाओं के द्वारा ही सारी भाव व्यंजना की गई है । आगे चलकर अजन्ता की यही शैली देशकाल के प्रभाव में कितनी ही अन्य शैलियों में प्रस्फुटित हुई जिन्हें आजकल राजपूत कलम , कांगड़ा कलम ,मुगल कलम तथा बुन्देली कलम के नाम से पुकारा जाता है ।

मुगल कलम के आते ही चित्रकला ने एक नयारूप अपनाया । अजन्ता के समय के भित्तियों पर जो चित्र बनाने की प्रथा चली आ रही थी उसमें परिवर्तन होने लगा था । कलाकार अपने भावों का चित्रण भित्तियों के स्थान पर कागजों पर करने लगा और इस प्रकार लघु चित्रों का सूत्रपात होने लगा । इस शैली का प्रवेश पारस से हुआ क्यों कि प्राय: मध्यकाल के प्रारम्भ से ही चित्र बनना प्रारम्भ हो गया था जिनको पानी के रंगों से कागज के टुकडों पर बनाया जाता था । यही शैली आगेचलकर भारतीय पद्धति के नाम से प्रचलित हुई[2] ।

1- रामचरणहयारणमित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य" पृष्ट 252

2- रामचरणहयारणमित्र " " " " पृष्ठ 253

यही चित्रण शैली आगे चलकर दो भागों में बंट गई -मुगल कलम और राजपूत कलम और इसी राजपूत कलम के अन्तर्गत बुन्देली कलम को मान्यता प्रदान की गई इसीलिये इन शैलियों में सामन्जस्य तथा एकरूपता पायी जाती है ।

श्रीरायकृष्णदास का यह कथन पूर्णरूप से सत्य है कि जिस समय राजस्थानी चित्रकला का जन्म हो रहा था उनदिनों मुगल साम्राज्य संस्थापक अकबर के पितामह बावर का जन्म हुआ । गुजरात के सुलतान महमूद बेगडा व मेवाड का राजा महाराज कुम्भा दोनो ही ,कला के पोषकों एवं संरक्षकों में थे । इसी समय कश्मीर में जैनुल आब्दीन के शासनकाल मे इसकी उन्नति हुई तथा इन राज्यों में आपस में आदान-प्रदान होता रहा । इनका सम्पर्क पाकर राजस्थानी चित्रकला अपने नये परिधान में सामने आई ।

इन शैलियेां को रंग ,पृष्टभूमि,पशु-पक्षियों और चित्र में अंकित पुरुष व स्त्रियों के पहनावों,वस्त्रों ,आभूषणों तथा आकृति विशेषकर आँखों की बनावट इत्यादि की दृष्ठि से अलग-अलग समझा व उनका मूल्यांकन किया जा सकता है जिससे उनका अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है[1] । उदाहरणार्थ जैपुर और अल्वर शैली के चित्रों में हरे रंग का प्रयोग अधिक है जबकि जोधपुर और बीकानेर शैली में पीले रंग का तथा उदयपुर शैली में लाल रंग का प्राविधान है व कोटा शैली के चित्रों में नीले रंग का किशनगढ के चित्रों में सफेद व गुलाबी रंगों तथा बूंदी के चित्रों में सुनहरे रंगों का विशेष प्रयोग किया गया है इसी प्रकार पृष्टभूमि का प्रश्न है कि उदयपुर शैली में कदम्ब का वृक्ष , किशनगढ शैली में केले का वृक्ष , कोटा व बूंदी शैली में लम्बे-लम्बे खजूर , अलवर व जयपुर शैली में पीपल व वटवृक्ष और बीकानेर व जोधपुर शैली में आम के वृक्ष का चित्रण अधिक मिलता है[2]।

1- राजस्थान की लघुचित्र शैलियां रा0ल0 क0 अकादमी जयपुर पृष्ठ-40व49

2- मिनिएचर पेन्टिग्स, ललितकला अकादमी नईदिल्ली पृष्ट 14-18

हाँसिये व सम्पूर्ण चित्र के बाहरी पट्टी के रंग भी अलग-अलग मिलते है जयपुर के चित्रण में हाँसिये काली पृष्टभूमि पर लाल रंग से बने उदयपुर के चित्रों में पीले रंग , किशनगढ में गुलाबी और हरे रंग की अधिकता है तथा बूंदी के चित्रों में यह सुनहरे व लाल रंगों से बनाये गये हैं । बुन्देलखण्ड की चित्रशैली में इन सभी प्रभावों को आसानी से अवलोकित किया जा सकता है[1] ।

विभिन्न शैलियों में पशु-पक्षी भी भिन्न -भिन्न हैं जोधपुर की शैली व बीकानेर की शैली के चित्रों में कौआ,चील और पशुओं में ऊँट-घोडों का चित्रण अधिक है जबकि उदयपुर में हाथी और चकोर पक्षी को प्रधानता दी गई है । नाथद्वारा में गाय ,जयपुर व अलवर के चित्रों में मोर व घोडा प्राय: चित्रत किया गया है । बतख ,हिरण,शेर ,चीते आदि को कोटा व बूंदी शैली में अधिक स्थान मिला है । यही नहीं मानव आकृतियों में भी भिन्नता साफ दृष्टिगोचर होती है । बीकानेर शैली में आँखों की बनावट खंजन पक्षी की तरह है जबकि नाथद्वारा के चित्रों में हिरण के समान । बूंदी शैली में आम के पत्तों के समान ,जयपुर शैली में मछली के समान ,किशनगढ शैली में कमान की तरह व जोधपुर शैली में प्राय: बादाम के समान आंखों का अंकन हुआ है ।

इसी प्रकार कद गठीले ,नाक,होट,ठोडी एवं हाथ-पैरों की उंगलियों के आधार पर भी इनमें अधिक भिन्नता मिलती है जिससे प्रत्येक शैली का अलग से अस्तित्व देखा जा सकता है । इसी प्रकार बुन्देलखण्ड चित्रशैली में भी उसका अपना एक अलग रुप है । वेश-भूषा ,पोषाक और आभूषणों के चित्रण में उपरोक्त सभी शैलियों के जन्म स्थान कालक्रम व तत्कालीन परिस्थितियों की झलक साफ दृष्टिगोचर होती है । यही कारण है कि यह प्रान्त भारतीय सस्कृति का प्रतीक माना जाता है । चित्र बनाने के तरीकों में भी अन्तर मिलता है ।

1- कार्ल खण्डेलवाल "लीजेज फ्राम राजस्थान" पृष्ट 51

राजपूत चित्रकला का सामूहिक रुप से अध्ययन करने से ऐसा ज्ञात होता है कि उसे अकबर और जहाँगीर जैसे आश्रयदाता नहीं मिले हों पर इसका परिणाम यह हुआ कि राजस्थानी चित्रशैली अपने में पूर्ण स्वतन्त्र रही । राम और कृष्ण इसके उपास्य रहे जब कि (चित्रसं0 99 - 100) मुगलचित्रकार के उपास्य अकबर और जहाँगीर बन गये (चित्रसं0 103-104) राजपूत चित्रकला दोभागों(राजपूत राजस्थानी और राजपूत पहाडी) में विभाजित है । राजपूत कलम की एक शाखा बुन्देली कलम मानी जाती है कुछ लोगों का तो यह मत है कि बुन्देलखण्डी कलम का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है , परन्तु कुछ लोगों का कहना है कि जिसप्रकार अजन्ता से राजपूत कलम का विकास हुआ वैसे ही राजपूत कलम से बुन्देली कलम का। मुगल कलम का दोनों पर प्रभाव है परन्तु राजपूत कलम की अपनी कुछ विशेषतायें हैं जिससे उसे राजपूत कलम से भिन्न माना जा सकता है । बुन्देली कलम की भारतीय चित्रकला को एक विशिष्ट देन है[1] ।

मुगल कलम कई दृष्टियों से परीक्षणीय है इस कलम के प्रारम्भिक चित्रों पर सूफियों का अधिक प्रभाव है जो कि धीरे-धीरे कम होता गया तथा उसमें भारतीयता का मिश्रण बढता गया । मुगलों के आने के पूर्व ही चित्रकला का एक समुन्नत भारतीय रुप विद्यमान था जिसपर परशिया का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता था जिसे मुगलों ने अपने ढंग से परिवर्तित किया । मुगलकाल का प्रारम्भ होते ही अजन्ता के समय से जो भारतीय धारा बहती चली आ रही थी वह प्राय: लोप सी हो गई । अजन्ता की चित्रकला पर मूर्तिकला का भी प्रभाव था । मुगलकाल में भारतीय चित्रकला ने मूर्तिकला को छोड दिया , उसके सामने आदर्श जैसी कोई चीज नहीं थी , धार्मिक भावना जिससे वह प्रेरणा लेता था, छुविदा ले गई । आध्यत्मिकता से उसका कोई सम्बन्ध न रहा और चित्रकार के सामने रुपव्यंजना ही प्रमुख रह गई । पहले जहाँ बुद्ध जैसे दैवी पुरुषों के रुप चित्रित किये जाते थे वहाँ पतित मुगल बादशाहों के रुप चित्रित किये जाने लगे (चित्रसं0 103) और कलाकार ने एक नया मार्ग अपनालिया।

1- रामचरणहरितारणमित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य" पृष्ठ 255

अजन्ता की चित्रकला जहाँ विशालता को लक्ष्य मानकर चली, मुगलकाल की चित्रकला लघुता की ओर अग्रसर हुई । अजन्ता का चित्र कार आत्मा की ओर बढता था और मुगल चित्रकार रूप की ओर बढा। अजन्ता का चित्रकार भावव्यंजना को प्रमुखता देता था तो मुगलचित्रकार ने बारीकी और नफासत को प्रमुखता दी । अजन्ता का चित्रकार रेखाओं से अपना अभीष्ट सिद्ध करता था तो मुगल चित्रकार ने रंगों से किया । अजन्ता के चित्रकार में आदर्श प्रधान थे तो मुगल चित्रकार में वास्तविकता।

राजपूत कलम का जन्म मुगल चित्रकला के साथ होने से उसपर मुगल चित्रकला का प्रभाव पडना स्वाभाविक सा था , फिर भी उसमेंभारतीयता अधिक पाई जाती है । बुन्देलखण्डी चित्रकला की उत्पत्ति राजपूत चित्रकला से हुई , यह पूर्णतय: सत्य तो नहीं है , पर इस क्षेत्र की कला को मुगल,राजपूत और पहाडी शैलियों का समुचित रूप से सहयोग मिला है लेकिन राजपूत चित्रकला का यहाँ की कलम में इतना सब होते हुये भी उसका अस्तित्व आज भी स्वीकार किया जाता है ।

भारत में उस समय मुगलों का साम्राज्य था इसलिये बुन्देलखण्ड के राज्य उनके आधीन रहना स्वाभाविक था , इसीलिये यहाँकी चित्रकला में उसका भी कहीं-कहीं प्रभाव परिलक्षित होता है । भारतीय चित्रकला के इतिहास में , मुगल चित्रकला का इतिहास विशेषकर अकबर के शासनकाल में मुगल कला विकसित तथा इतनी समन्वयात्मक और रुचिकर थी कि बौद्ध काल के बाद ऐसा विकास न देखाने को मिला जिसका का कारण अकबर की उदार नीति और उसकी कला की परख ही माना जायगा[1] ।

साहित्य में नये-नये विषयों के आ जाने से चित्रकारों के लिये कल्पनाओं से ओत-प्रोत कवितामय विषाय विशेषकर बारहमासा,नायक-नायका भेद,रागमालाचित्र व श्रगारिक चित्र (चित्र सं० 103,234) आदि अधिक लोक प्रिय हो गये[2] ।

1- रामचरण हयारण मित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य" पृष्ट 254-255

2- अम्बिकाप्रसाद वर्मा "दिव्य"ओरछा की चित्रकारी" पृष्ठ 69-70

इसके अतिरिक्त बुंन्देलखण्डी चित्रकारीं के विषय भक्तिविषयक थे जिसमें राधाकृष्ण पर बने चित्र ,विशेषकर कृष्ण लीला ,बालक्रीडा,रामायण ,महाभारत आदि धार्मिक भावनाओं से पूर्ण (चित्रसं0 30,42, 44) रस अलंकार युक्त चित्रों की भरमार सामने आने लगी । चित्रकारों द्वारा चित्रों का उत्कृष्टतम स्वरुप उभरकर सामने लाया जाने लगा । राधाकृष्णं के प्रेम रुप में आलौकिक ,आध्यात्मिक एवं आत्मा व परमात्मा का स्वरुप चित्रित किया जाने लगा । विरह ,मिलन,प्रेमलीलाओ का चित्रण सजीवता पूर्ण होने लगा जिससे प्रतीत होता है कि कलाकार ने अपनी आत्मा की गहराई को चित्रों में उडेल दिया[1] ।

बंन्देलखाण्ड के ओरछा में कला की स्थिति क्रमश: बुन्देली राजा शत्रुजीतसिंह और महाराजा वीरसिंहजूदेव के शासनकाल में चर्मोत्कर्ष पर देखने को मिलती है । पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताव्दी में बुन्देलखण्ड की चित्रकला का अपना विशेष महत्व व प्रमुख स्थान था । चित्रकारों के द्वारा चित्रकला का स्वरुप भी मुगल सम्राट अकबर और जहाँगीर काल की कला की भाँति निखरा हुआ दृष्टिगोचर होता है । बुन्देलखण्ड के साहित्यसे प्रेरित धारा इतनी वेगवती रही कि वह उज्जैन व विदिशा तक अपने प्रभाव को बढाती रही और हिन्दी साहित्य का विकास इन सभी क्षेत्रों के लिये उनकी परम धरोहर बन गया[2] ।

आचार्य केशव ,हरीराम व्यास एवं प्रवीणराय की हवेलियों को देखाकर लगता है कि ओरछा एक सौभाग्यशाली राज्य था जहाँ ऐसे विद्वानों ने अपपेम अपनी पवित्र लेखनी से इतने उत्कृष्ट साहित्य की रचना कई जिसकी तुलना अन्य साहित्य से करना सम्भव प्रतीत नहीं होता है । पर यहाँ का दुर्भाग्य है कि यह क्षेत्र बहुत समय से उपेक्षित बना रहा । मतिराम के रसराज ,विहारी की सत्सई ,तुलसी की रामचरित मानस,केशव की बारहमासा एवं रसिक प्रिया पर आधारित चित्रों(चित्रसं0 4,44,45,49,57) का सृजन इस बुन्देलखण्ड की पावन भूमि पर हुआ है ।

1- गजेटियर ओफ इण्डिया(मध्यप्रदेश-दतिया राज्य) पृष्ट 270

2- गोरेलाल तिवारी "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ट 129-30

कलाकार ने अपनी साधना से साहित्य का सहारा लेकरकला को उसके योवन तक पहुँचाने का प्रयास किया । कलाकार रंग व अन्तरंग में डूबकर कला की धारा को ऐसे मोड की ओर ले गया कि जिससे राजपूताना क्षेत्र को भी सिंचित करना पडा । समस्त राजपूताना जिसमें राजस्थानी एवं पहाडी कला शैलियों के केन्द्रे प्रसिद्ध ठिकाने बन गये और इस के प्रभाव से अछूते न रहे । बुन्देलखण्ड के दतिया ,ओरछा,छतरपुर,पन्ना झाँसी,ललितपुर,टीकमगढ आदि स्थान अपनी प्राचीन परम्परा संस्कृति को कलाओं के माध्यम से संजोये रखे थें । मुगलों के आधीन होते हुये भी इस में किसी भी प्रकार का व्यवधान प्रतीत नहीं होता है । राजनैतिक परिवर्तनों का इसपर कोई प्रभाव दिखाई नहीं पडता है इसी कारण से आज भी उनकी अमर,अमिट स्मृति सर्वत्र विद्यमान है । बहुतकुछ नष्ट हो जाने के बाद भी उनको देखकर आसानी से पहचाना जा सकता है[1] ।

1- कलानिधि भाग - । पृष्ठ 32

बुन्देलखण्ड

चित्रकला का विकास

संरक्षण एवं प्रमुख प्रतिष्ठान :--

==========

भारतीय मध्यकालीन इतिहास में बुन्देलखण्ड का वैभव पन्द्रेहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही अपने सांस्कृतिक विकास को नया रूप देने लगा था । राजनैतिक परिवर्तनों के कारण बुन्देलखण्ड का तत्कालीन सृजनात्मक पक्ष अधिक विनाशकारी न था जैसा कि लोग अनुमान लगाते हैं । चित्रकला ,संगीत,वास्तु कला के विकास में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है कहीं-कहीं तो इतिहासकारों ने इसयुग को अधिकारमय युग कहकर पतन का द्योतक बताया है क्यों कि युद्धों , मन्दिरों के विनाश ,षणयन्त्रों तथा हत्याओं से यह युग भरा पडा है । इसके उपरान्त भी उसमें भक्ति एवं रीतिकालीन साहित्य अपने प्रभाव से प्रभावित करता रहा है जिससे उस युग के काले बादल इनके प्रभाव से शीघ्र हट गये[1] ।

भारतीय कला के प्रसिद्ध विद्वान श्री आनन्दकुमार स्वामी ने उस समय की कला को दो भागों मे बाँटा है और उसकी प्रसिद्धि विकसित चित्रशैलियों के बारे में लिखते हुये उनकी भौगोलिग एव ऐतिहासिक मान्यताओं के आधारपर भिन्न -भिन्न रूप दिया है जिसमें क्रमश: राजस्थानी व पहाडी क्षेत्र हैं[2] ।

राजस्थानी कला शैलियों में मारवाड , मेवाड ,ढूँढार ,हडौती और बुन्देलखण्ड क्षेत्र को अलग-अलग राजकीय ठिकानों के आधार पर प्रस्तुत कर दिया है जबकि पहाडी क्षेत्र में काँगडा ,बासौली,गढवाल एवं जम्मूकश्मीर क्षेत्र ही प्रसिद्ध चित्रशैलियों के रूप में सामने आये हैं । बुन्देलखण्ड क्षेंत्र में तो दतिया एवं ओरछा में इसके दो प्रमुख क्षेत्र रहे हैं जहाँ पर रीतिक्षेत्र एवं रागमाला चित्रों की अधिकता है[3]

1- विश्वनाथ प्रसादमिश्र "केशवग्रन्थावलीभाग 3" पृष्ट सं0 11-17

2- आनन्दकुमार स्वामी" डान्स औफ शिव"(चित्रानन्ददासगुप्त) पृ01,2

3- अम्बिकाप्रसाद वर्मा "दिव्य"ओरछा की चित्रकारी"पृष्ठ 71-72

मध्यकालीन चित्रकला में वैष्णववाद का उदय एक ऐसी घटना है जिससे चित्रकला ,भक्ति व जन मोक्ष का साधन बन गई । राधाकृष्ण के अलौकिक प्रेम की धारा ने कला के क्षेत्र में एक अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिया । कृष्ण-राधा के प्रेम कह कहानिया वैष्णववाद की आधारशिला बनकर चित्र कार को अपनी ओर आकृष्ट करने लगी और चित्रकार ने अपनी तूलिका को पूर्ण रूप से इन्ही विषयों की ओर मोड दिया जहाँ परम्परागत रुढियों से युक्त चित्रों की रचना हो रही थी कलाकार इन बन्धनों से मुक्त हो गया । कलाकार ने स्वतंत्रता की अनुभूति पाकर अपने हृदय और विचारों को सुन्दर सुकोमल सहारा देकर चित्रकला में एक नया निखार लाना प्रारम्भ कर दिया । कृष्ण भक्ति के आधार पर राधाकृष्ण की प्रेम लीलाओं एवं उनकी क्रीडाओं पर चित्र(चित्र सं0 5,14,15,28,30,51) बनाकर चित्रकार ने एकनवीन परिपाटी का सूत्रपात किया[2] ।

यही कला आगे चलकर राजस्थानी एवं पहाडी शैलियों में इतनी मुखरित हो गई कि जिससे उस युग की कला अपने आप में स्वर्णिम अक्षरो में इतिहास का अंग बन गई । चित्रकार ने भक्ति व प्रेम के माध्यम से कलामें लौकिक विषयों का समावेश करके चित्रकला की बहुमुखी प्रतिभा को निखारने का प्रयास किया जिससे बहुमुखी प्रवृत्ति के द्वार खुल गये[3] ।

1451 ई0 में अहमदाबाद में रचित वसंतविलास की प्रथम रचना में प्रेम और सौन्दर्य का मुक्त चित्रण किया गया है । 1506 ई0 में लिखी गई मृगावती के चित्रित विषय अधिकतर लौकिक ही रहे । मुख्यत: भक्ति चित्र औररीति चित्रों में रीति काव्य से ओत - प्रोत विषय ही चित्रित होते हैं इसमें नाय-नायिका भेद प्रमुख विषय था । तत्कालीन धार्मिक भावना ने काव्य को और काव्य ने चित्रकला को विशेष रुप से प्रभावित किया ये दोनो ही सौन्दर्यानुभूति से से प्रेरित एवं प्रभावित थे[4] ।

1- ब्रासिलग्रे "राजपूत पेन्टिग(फेवर एण्ड फेवरलिमिटेड)" पृष्ट 2-4
2- एम0 एस0 रणधावा"दी कृष्णालीजेण्ड " पृष्ठ 60
3- ए0 पी0 व्यास " राजस्थान की चित्रकला" पृष्ट 15
4- डा0 गोपीनाथ शर्मा " भारतीय चित्रकला और राजस्थान" (वार्षिकी 63) पृष्ट 22,23

1601 ई0 में कविप्रिया ,रसिकप्रिया की रचनाओं के आधारपर चित्रकारों ने व्यापक पैमाने पर उनपर आधारित चित्र बनाये । रसिक प्रिया चित्र के लिये एक अनोखा प्रेरणाश्रोत बन गया । बुन्देलखण्ड के ओरछा राज्य के राजा इन्द्रजीत के दरबारी कवि आचार्य केशव के साहित्य ने चित्रकला के लिये ऐसी प्रेरणा दी जिससे एक - एक पंक्ति चित्रों पर उभरने लगी । ओरछा राजा मधुकरशाहजूदेव ने साहित्य के प्रति ऐसा प्रभाव छोडा जो आगेचलकर साहित्यकार एवं चित्रकार के लियेएक वरदान सिद्ध हुई[1] ।

कवि केशव के काव्य द्वारा चित्रकला में दो परिपाटियों को जन्म मिला जिनमें एक तो स्त्रियों के सोलह श्रंगार या स्त्री अलंकरण और दूसरा बारहमासा व ऋतुओं के गीतों का विषय । प्रथम भावना को लेकर चित्रकारों ने स्त्री के सोलह श्रंगार को ध्यान में रखकर नायिका के के रुप में सास्त्रीय परम्परा को निभाते हुये इस प्रकार का चित्रांकन किया जिससे यहाँ का समस्त सांस्कृतिक वातावरण प्रभावित हो उठा । दूसरे भावनाओं को सामने रखकर संगीत जैसे अदृस्य कला के सिद्धान्तों को चित्र कला द्वारा दृश्यमय रुप प्रदान किया गया ।

इसप्रकार सोलहवीं शताब्दी में चित्रकला का रुप भी बदल गया । तत्कालीन चित्रों में जीवन का उत्साह व स्फूर्ति रंगों के बोध के साथ सौन्दर्यान्भूत को एक नये मोड पर ला दिया । साहित्य में महाकवि सूर्यण्प सूर और तुलसी ने जो प्रभाव पैदा किया वही चित्रकारों ने राम और कृष्ण की बाल लीलाओं और क्रीडाओं को चित्रस्वरुपों में अंकित किया । मुगल कला में लौकिक विषय ही चित्रित हुये हैं यह श्रेय तो केवल राजपूताना बुन्देलखण्ड ,राजस्थानी एवं पहाडी शैली (चित्र सं0101,102,105) को है[2]

1- डा0 आर0 ए0 अग्रवाल "कला-विलास" पृष्ठ 82,83

2- " " " " 118,119

जिनके इस प्रकार के अलौकिक विषय भक्ति और श्रंगार के माध्यम से मुख्य विषय बने हैं और यही कारण है कि बुन्देली कला मध्यकालीन संस्कृत के विकास में एक कडी का कार्य करती है यदि यह क्षेत्र उपरोक्त भावना से वंचित रहता तो भारतीय चित्रकला (मुगल और राजपूत काल) का युग इतना समृद्धशाली न हो पाता[1] ।

कला में यह अभूतपूर्व परिवर्तन गुजरात तथा सीमावर्ती प्रदेशों में हुये पर यह निश्चित था कि दिल्ली की सल्तनत का प्रभाव इन सभी जग हों पर विद्यमान था[2] । यही कारण है कि भारतीय संस्कृति की सर्वोत्कृष्ट धरोहर यहाँ की समन्वयात्मक दृष्टिकोण की रही जिससे इस संस्कृति को पूर्णतय: बदला न जा सका । ओरछा व दतिया की चित्रकला इसका साक्षात प्रमाण है यहाँ के चित्रकार ने बाहरी प्रेरणाओं को विदेशी कहकर छोडा नहीं वरन् उदार हृदय से अपनी शैली में आत्मसात किया है।

चित्रकला के सास्त्रीय मानदण्डों को ध्यान में रखकर तथा अपने संरक्षकों की रुचि के अनुसार ही उसे रुप बदलकर प्रस्तुत किया है[3] । ओरछा का लक्ष्मी मन्दिर (चित्र सं0 3) राजमहल, जहांगीर पेलेस इसके साक्षात उदाहरण हैं । इसी तरह दतिया के वीरसिंह देव काकिला व महल तथा मुकरवे (चित्र सं0 2।) हैं जो उपरोक्त बात की और पुष्टि करते हैं । टहरौली, टोडीफतेहपुर, विजना, धुवेला, गुरसराय, समथर आदि के किले, मन्दिर एवं मुकरवे इससे अछूते नहीं रहे हैं ।

मुगलों के साथ ईरानी चित्रकला की प्रेरणा मुगलकालीन चित्रकला का भी समन्वयात्मक स्वरुप प्रस्तुत करती है । इस शैली में रुढिगत धार्मिक परम्पराओं को कम स्थान मिला है । कहीं-कहीं पर वैष्णव भक्ति विषयों के साथ लौकिक विषयों को प्राथमिकता अधिक दी गई है । मध्य कालीन साहित्य का प्रतिबिम्ब इसमें दिखाई पडता है ।

1- डा0 आनन्दकृष्णराव "भारतीय चित्रकला की कतिपय प्रमुख शैलियां" पृष्ठ 63-65

2- हरमन गोयज"आर्ट एण्ड आर्कीटैक्चर"ओफ बीकानेर" पृष्ट 23

3- राजस्थान ललित कला अकादमी-जयपुर (वार्षिकी 6) पृष्ट 5-8

कला में व्याप्त तत्कालीन प्रवृत्तियां रंगों एवं रेखाओं के माध्यम से इसका परिचय करा देती हैं । ओरछा की साध्य भूमि , कालिदास के नवयुगों का मार्ग दिखाने वाली ,वेतवा नदी के तटपर झाँसी स 8 मील की दूरी पर स्थित है यही वह स्थान है जहाँ महाराजा वीरसिंहजूदेव एवं हरदौल की कर्मभूमि रही है ।

बुन्देलखण्ड की चित्रकला के प्रमुख प्रतिष्ठान व उनके संरक्षकों की गाथा जहां वैभव से परिपूर्ण है वहीं उनके संघर्ष की कहानी भी कहती है । बुन्देलखण्ड क्षेत्र के टीकमगढ जिले में ओरछा बारह कोस के घेरे में फैला हुआ एक वैभवशाली नगर था । इसकी प्रसिद्धि धार्मिक,कीर्ति एवं एतिहासिक घटनाओं से अत्यधिक है । प्रसिद्ध तीर्थ स्थान रामराजा का मन्दिर, के दर्शन तथा वेतवानदी में स्नान कर जहां मानव एक ओर मोक्ष का साधन मानता है वहीं हरदौल की समाधि के दर्शन करके लोग अपने जीवन को सार्थक मानते हैं[1]। रामनवमी,बसन्तपंचमी और महासंक्रान्ति के दिन यहा जन समूह का अच्छा सेा दृश्य प्रस्तुत होता है ।

ओरछा जाते हुये सबसे पहले बाई ओर कुछ दूर पर राणाखुवान-सिंह की हवेली है जो भगनावस्था में है । यह राजा रुद्रप्रताप के प्रतापी सामन्त की हवेली थी गोंडवाने पर आक्रमण में विजय के प्रतीकस्वरूप यह हवेली आज भी ऐतिहासिक द्वार सा प्रतीत होती है[2] । ओरछा से नदी की ओर महादेव घाट की तरफ जाने में दहिनी ओर जगतसिंह और विन्ध्यवासिनी देवी का चबूतरा है इसके बारे में एसी कथा प्रचलित है कि बुन्देला पंचमसिंह ने विन्ध्यवासिनी देवी की आराधना कर मनवांछितफल प्राप्त किया था । यहीं से दहिनी ओर मुडने परनदी के किनारे सामंत सिंह का मुकरवा है जिससे थोडा आगे बढने पर कंचनाघाट पर पहुंच जाते हैं । यह वह स्थान है जहाँ बुन्देलों इतिहास को अमर बनाने वाली वीर सिंहदेव और मधुकरशाह के मुकरवे हैं[3] ।

1- विद्यानिवास मिश्र "वेतवा के तटपर ओरछा" पृष्ट 1,2
2- गोरेलाल तिवारी "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ट 97-106
3- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 2-11-79

यह दोनों शासक वीर ही नहीं वरन् कला प्रेमी, धार्मिक और प्रतापी राजा रहे हैं इन्होंने मुगलों के आधीन रहकरभीहिन्दू संस्कृति की रक्षाकी इसी से इनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व सराहनीय है । उन्हें संस्कृति पोषक कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी ।

महाराजावीरसिंहजूदेव ने वावन भवनों का निर्माण कराया जो स्थापत्य कलाके के उत्कृष्ट रूप में है । यही कारण है कि बुन्देलों के इतिहास में वीरसिंहदेव का समय स्वर्णकाल की श्रेणी में रखा जाता है[1] । महाराजा मधुकरशाह अकबर के समकालीन थे । एकबार की घटना है कि मुगल साम्राट की राजाज्ञा से दरवार में तिलक न लगाकर जाने की घोषणा की गई परन्तु उस दिन महाराजा मधुकरशाह बहुत बडा तिलक लगाकर गये जिसको देखकर अकबर सम्राट हिन्दूराजा के अपने धर्म के प्रति अटूँट आस्था व साहस देखकर अत्यधिक प्रभावित हुये । तब से आजतक मधुकरशाही तिलक (चित्र सं0 ५०,8।) बुन्देलखण्ड में देखा जा सकता है । आगे चलने पर तुगारन घाट जहाँ ऋषि तुंग ने तपस्या की थी तथा उसके पास ही शंकरजी का छोटा सा मन्दिर है जिससे लगा हुआ महाराजा भारतीयचन्द्र का मुकरवा है ।

ओरछा :--

ओरछा के उत्तर-पश्चिम में लक्ष्मीनारायण का मन्दिर है (चित्र सं0 3) यह महाराजा वीरसिंहजूदेव ने बनवाया था इस मन्दिर को बाहर से देखने में हय त्रिभुजाकार सा दिखाई देता है जबकि अन्दर से देखने में चौकोर लगता है । इसमें अठारहवीं शताब्दी के भित्तीय चित्र अंकित हैं इन चित्रों को देखने से राम, कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित चित्रों का आभास तथा लोक जीवन के चित्र बने हैं मन्दिर में प्रवेश करते ही चित्रकारी देखने को मिलती है ।

1- ठाकुर लक्ष्मनसिंह गौर " ओरछा का इतिहास " पृष्ठ 63,64

लक्ष्मीनारायण मन्दिर के फाटक में घुसते ही दोनों ओर कुछ चित्र गेरु जैसे लाल रंग की पृष्ठभुमि पर चूना पत्थर द्वारा रेखांकन किया गया है । एक चित्र में स्त्री अपने बाल पकडे हैं और दूसरी स्त्री शीशा दिखा रही है चित्र श्रंगरर करते समय का है । दूसरे चित्र में कृष्ण राधा के गले में हाथ डाले हैं एक ओर केले का पेड है तथादूसरी ओर गाय है । कृष्ण के दूसरे हाथ में बांसुरी है चित्र को देखने से आभास होता है कि दोनेा में वपर्तालाप हो रही है । तीसरा चित्र भी पहले जैसा है चौथा चित्र भी श्रंगार का है पाँचवां चित्र एक रानी का प्रतीत होता है जिसकी अग्रओर मोर तथा पीछे की ओर एक अंगरक्षक बन्दूक लिये है । छठवें चित्र मूं भैरव बावा कुत्ते पर सवार है तथा भक्तगण हाथ जोडे खडे हैं । इन सभी की रंग योजना व शैली एक सी है[1] ।

फाटक के सामने दो गलियारे हैं दोनों गलियारों के बीच में छः कोने का कमरा है उसकी छत पर उच्छे चित्र हैं । सामने के चित्र में कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं तथा दो गोपियां आगे व दो गोपियां पीछे खडी हैं पृष्टभूमि में कदम्ब का पेड है उसके ऊपर दो-दो मोर तथा नीचे गाय का चित्र है ।चित्र सं0 5 । दोगोपिया चंवर डुला रहीं हैं तथा दो हाथ जोडे खडी हैं । दूसरे चित्र के देा भाग हैं ऊपर के चित्र में चार भुजाओं वाले विष्णु जिनके एक तरफ एक भक्त आरती कर रहा है तथा दूसरी ओर एक आदमी शंख बजा रहा है । उसके नीचे चार भुजावाली लक्ष्मी जी का चित्र है जिनके एक ओर सेविका चंवर डुला रही है । सामने शंकर जी माला लिये तथा एक सेवक ढोलक बजा रहा है उनके पीछे गणेश जी का चित्र है । एक अन्य चित्र में पंचमुखी शिव हैं उनके पीछे खडे है कुत्ते के साथ भैरव बाबा तथा सामने शेर का चित्र है । इसके नीचे शिकार का एक चित्र है जिसमें हाथी पर राजा सवार है साथ में घुडसवार भी हैं शेर पर आक्रमण किया जा रहा है । चौथे चित्र में राम दरवार का चित्र है ।

1- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 3-11-79

पाँचवें चित्र में गाय का दूध निकालेत कृष्ण का चित्र है जिसमें एक गोपी बछडा को पकडे है दूसरी मटकी लिये खडी है इसके नीचे लक्ष्मी जी का चित्र है इसके पास ही ऊपर विष्णु व नीचे राधा-कृष्ण का चित्र है[1] ।

दायें गलियारे में महारानी लक्ष्मीबाई का चित्र ,युद्ध के चित्र , दशहरे पर निकलने वाली शाही सवारी का चित्र तथा शाही यात्र के चित्र अधिक है[2] । दूसरे गलियारे राम-रावण की लडाई (चित्र सं० ५) व रामायण से सम्बन्धित चित्र बने हैं । गणेश जी का चित्र बना है इसी पट्टिका पर शेषनाग पर विष्णु जी का चित्र , चुंगुल चिडिया का चित्र, भैंसे के शिकार का चित्र , काली देवी के साथ राक्षसों की लडाई ,शाही सेना ,भगवान कृष्ण का दरवार ,गोपियाँ पूजा करती हुई, रामदरवार एवं लक्ष्मी जी के चित्र हैं[3]। तीसरे चित्र में गलियारे में गोपियों का नृत्य रास लीला के चित्र ,चीरहरण ,नाग नाथना आदि के चित्र हैं । गणेश जी के अतिरिक्त राम दरवारा के भी चित्र अंकित किये गये हैं । इसके अतिरिक्त दरवारके चित्र , कुश्ती का चित्र , अंग्रेजों के शिकार के चित्र चित्रित हैं[4] । चौथें गलियारे में लंका के राजा रावण का पारिवारिक चित्र , राम-रावण युद्ध , बाल-सुग्रीव की लडाई व रामायण के चित्र अधिक हैं । शिकार का भी चित्रण दृष्टिगोचर होता है[5]। मन्दिर के पास वाले गलियारे में रामायण के दृश्य एवं श्रीकृष्णलीला के चित्र हैं इनके चेहरे एकचश्मी ,लम्बी बडी आँख , कत्थई,काला,हरा,पीला,व हलका नीला रंग अधिक दिखाई पडता है । मन्दिर की थोडी दूर पर राधा-कृष्ण का दूसरा मन्दिर है जिसे चन्द्रमुखी मन्दिर कहते हैं[6]। लक्ष्मीनारायण मन्दिर से वापस आते समय दहिनी ओर महाकवि केशव का निवास खण्डहर के रुप में है । हिन्दी साहित्य में इनका स्थान सूर व तुलसी के समकक्ष लिया जाता है इसी घर में रामचन्द्र का कविप्रिया,रसिकप्रिया,वीरसिंहजूदेव चरित्र आदि ग्रन्थों की रचना हुई थी[7]।

।से7 - स्वयं सर्वेक्षण के समय श्री वृन्दावन(केयरटेकर जहाँगीमहल) द्वारा प्राप्त जानकारी एवं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 3-11-79

वीर हरदौल की समाधि , जो महाराज वीरसिंहदेव के सबसे छोटे पुत्र एवं ओरछ नरेश जुझारसिंह के छोटे भाई थे ,फूलबाग में स्थितहै उनकी समाधि आज भी बुन्देलखण्ड के लोग गीतों में जीवित हैं आज भी प्रत्येक बुन्देलखण्ड निवासी अपने पारिवारिक उत्सवों एवं शादी के अवसरों पर सबसे पहला निमन्त्रण लाला हरदौल की समाधि पर देकर उनका मांगलिक कार्यक्रमों में आमन्त्रण करती है[1] । रामराजा मन्दिर में यहाँ के शासक राजा मधुकरशाह की रानी गणेशकुंवर ने भगवान राम की मूर्ति अयोध्या से लाकर इसमें स्थापित की । यह मन्दिर पहले महल था जिसे राजा भारतीयचन्द्र ने बनवाया था । रामनवमी के दिन यहाँ बहुतबडा मेला लगता है । चतुर्भुज मन्दिर ठीक पश्चिम दिशा में स्थित है इसका निर्माण भी महाराजा वीरसिंहदेव ने करवाया था । स्थापत्य कला की दृष्टि से यह विशेष महत्व रखता है[2] ।

ओरछा के दक्षिण भाग पर बना यहाँ का किला ,राजमहल,रानी महल और जहांगीर महल आदि भागों बंटा है । राजमहल और रानी महल के अन्दर कुछ भित्तीय चित्र हैं (चित्र सं0 6 से 13) जिनमें सत्रहवीं और अठरहवी शताब्दी का भित्तीय अंकन माना जाता है जहांगीर महल वीरसिंहजूदेव की संरक्षता में निर्मित हुआ था । जहांगीर के स्वागत हेतु इस महल का निर्माण कराया गया था[3] । इसी के कारण इसका नाम जहांगीर महल पडा । इसी के एक भाग को शीश महल भी कहा जाता है । यह चित्र बीथिकायें भित्तीय चित्रण परम्परा में बुन्देलखण्ड की चित्र कला के रुप में स्वतन्त्र व स्थानीय पर्यावरण से परिपूर्ण हैं । किले के उपरी कई खण्डों में चित्र बने हैं ।

यहाँ के विभिन्न कमरों में अलग-अलग विषयों पर चित्रण किया गया है जिसमें सरोवर ,कमल के अतिरिक्त वतख के आकार की नौका है जिसपर क्षतरी तनी है उसके नीचे राजा बैठा है युवती मोरछल लिये खडी है ।[11] (चित्र सं0 6) चित्र खरौच के निशान के कारण अस्पष्ट हैं ,

---

1- भैयालाल व्यास "हरदौल का विषपान-ओरछा " पृष्ट 44

2- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 3-11-79

3- [illegible]

पूरे कमरे में इस प्रकार के चौबीस चित्र है इन्ही चित्रों के नीचे चौगान खेलने का चित्र किसी में 6 तथा किसी में चार खिलाडी हैं स्त्रियां घोडे पर सवार चौगान खेलती हुई दिखाई गई हैं । बगल के दूसरे कमरे की छत पर युवतियों की बेल बनाई गई है जिनकी वेश-भूषा बुन्देली है इसी बेल के नीचे हाथी पर सवार किसी राजा की सवारी का चित्रण किया गया है । आगे-पीछे घुडसवारों की पंक्तियां हैं । बारहदरी के दालान में श्रीकृष्ण व गोपियों के चित्र एवं नीचे की दालान में भगवान के चौबीस अवतारों के चित्र अंकित हैं । राजमहल के कमरा नं0 47 की छतपर क्रमशः रामदरवार ,घुडसवार,परशुराम व भगवान राम संवाद,गणेश पूजन,कृष्ण-गोपी चित्रण ,नृसिंह अवतार , बरहारुप अवतार,यज्ञ का दृश्य ,समुद्रमंथन सूर्य एवं विष्णु भगवान का चित्र ,अश्वमेध यज्ञ का चित्र ,शेष सैया ,गज-ग्रह हप्पू चिरैया॥चित्रसं0 11,12 ॥ हाथी एवं रथ यात्रा तथा जंगल का दृश्य प्रस्तुत किया गया है[1]।

कमरा नं0 50 में चित्र अस्पष्ट सुदे हैं जिसमें कि राम दरवार, नरसिंह अवतार ,शेष सैया,अश्वमेघ यज्ञ का घोडा,वृहमा द्वारा यज्ञ एवं युद्ध का चित्र दृष्टिगोचर होते हैं । कमरा नं0 52 में रामकृष्ण की गाथाओं के चित्र,गणेश जी का चित्र,नारी कुंजर॥हाथी के पूरे शरीर पर स्त्री स्वरूपों का चित्रण॥ अवलोकित होता है । कमरा नं0 53 में दासियों द्वारा झूला झुलाते रानियों का चित्र ,महाभारत का पेड जिसपर कौरवों के चढ जाने पर भीम ने पकड कर हिलाया था ,हाथी और ऊँट की लडाई ॥चित्र सं0 8 ॥ राम दरवार ॥चित्र सं0 12. ॥ कृष्ण लीला ,शिकार,[10] एवं गणेश पूजन आदि के चित्र हैं । कमरा नं0 57 में रासलीला,एवं गोपियों के नृत्य करते हुये जिसमें कि ऊपर गणेशजी का चित्र तथा सबसे नीचे नदी के घाट का चित्रण किया गया है[2]॥ चित्र सं0 9 ॥

1-व 2- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 4-11-79

इसी प्रकार राजमहल - रानी महल के अन्य कक्षों में रामदरबार, झूला-झूलती हुई रानियां ,कुर्सियों पर बैठी रानी के चित्र जिनके पीछे दासिया चंवर डुला रहीं हैं । बाजार ,मंगलगीत , मोर लिये हुये स्त्रियों का चित्रण , तलवार द्वारा शेर का चित्रण, गज-ग्राह,बालि व राक्षस युद्ध नरसिंह अवतार ,गोपियों के साथ नृत्य करते हुये कृष्ण एवं विश्राम करते हुये रानी के चित्र हैं । शेर की खाल पर बैठे हुये चार भुजाओं वालेशिव का चित्र जिनके एक हाथ में सर्प दूसरे में त्रिसूल,तीसरे में चक्र तथा चौथे हाथ में डमरु है । चित्र के ऊपर महराव के आकार में अलंकारिक आलेखन चित्र को आकर्षित बना रहा है ।चित्र सं0 13 । इनके अतिरिक्त दूसरी मंजिल पर भी कुछ चित्र बने हैं जो अस्पष्ट से हैं । आलेखनों पर आधारित कुछ पैनल्स,दरवार हॉल की छत पर बने हैं जिसमें से एक चित्र के बीच में अलंकारिक आलेखन तथा उसके चारो ओर हाथी,मोर,एवं अन्य पशु-पक्षियों पर आधारित चित्रांकन किया गया है । ।चित्र सं0 17 । इसी प्रकार दरवार हाल की छत पर प्राप्त मानव आकृतियों पर आधारित एक चित्र है जिसमें किले के चित्रण के साथ-साथ बीच में राजा का चित्र तथा उसके आस-पास सेविकाओं के चित्र चित्रित किया गया है ।चित्र सं 18 ,18 । इन सभी चित्रों की रंग योजना चटक ,एकचश्म चेहरे अधिक बनाये गये हैं । जहांगीर महल में भी कुछ चित्र प्राप्त हैं । हालांकि उनमें से बहुत से चित्र नष्ट हो गये हैं तथा जो शेष हैं वे भी नष्ट प्राय: से हैं क्यों कि आने - जाने वाले पर्यटकों ने या तो उनको खरोच दिया है अथवा उन पर अपना नाम लिखकर चित्रों की सौन्दर्यता को हानि पहुंचाई है इनमें एक चित्र है जिसमें कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं तथा गोप व गोपियां विभिन्न मुद्राओं में खडी हैं । इसी प्रकार एक चित्र में कृष्ण कदम के पेड के नीचे बांसुरी बजा रहे हैं एक ओर एक गोपी मोरछल लिये खडी है तथा दूसरी ओर राधा का चित्र है ।[1] [चि.सं.14] इसी प्रकार जहांगीर महल की दूसरी छत पर भी चित्र है जिसके बीच का भाग अस्पष्ट है तथा किनारे के भाग में घोडा एवं दूसरी ओर नायक-नायिका का चित्र है ।चित्र सं0 16,15 ।

1- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 4-11-79

प्रवीण राय का महल भी (चित्र सं0 19) एक ऐसा प्रतिष्ठान है जहां कि राय प्रवीण विदुषी ,कवित्रीएवं केशव की प्रिय शिष्या व महाशत्रुजीतसिंह के राज्य की राजनर्तकी का निवास था । इस महल की छत पर तथा बरामदों में भी कुछ चित्र चित्रित हैं एक चित्र में एक नायिका पेड के सहारे झीने परिधान में एक विशेष भाव-भंगिमा में खडी है तथा उसके सासनेषककसेविका एक पात्र में कुछ फल आदि लिये हुये खडी है चित्र खरोंच के निशानके कारण अस्पष्ट सा हो गया है फिर भी उसकी सुन्दरता सब को अपनी ओर आकर्षित करती है । अधिकतर चित्र नष्ट प्राय: से हो चुके हैं[1] (चित्रसंख्या 20)

बुन्देलखण्ड चित्रशैली के प्रमुख स्थान ओरछा की चित्रकला यहां के सांस्कृतिक विकासक्रम के साथ पुष्पित व पल्लवित अवश्य हुई है और उसके संरक्षकों ने प्रमुख कला प्रतिष्ठानों एवं ग्रन्थों की रचना द्वारा स्थापत्य मूर्ति ,संगीत एवं धर्म तथा चित्रकला का स्वरुप इस गौरवमय भूमि पर संजोयकर रखा है[2]।

दतिया :--

बुन्देलखण्ड चित्र शैली में दूसरा प्रमुख स्थान दतिया शैली के चित्रों का आता है । दतिया शैली के शाही चित्र ओरछर के लक्ष्मीजी के मन्दिर के पीछेवाली दालान में देखे जा सकते हैं । बारहमासा ,रामायण दृश्य,रसिक प्रिया के प्रसिद्ध चित्रजो वीरसिंहदेव प्रथम के काल के हैं आज भी वोस्टन,म्यूजियम यू0 एस0 ए0 में संग्रहीत हैं । दतिया राजमहल एवं पुस्तकालय में कुछ चित्र हैं जो राजा मधुकरशाह के कार्यकाल के हैं । भित्ति चित्र दतिया के राजमहल(चित्र सं0 21 से 25) तथा डिग्री कालेज दतिया में थे जो राजा भवानीसिंह के कार्यकाल के हैं । डिग्रीकालेज के चित्रों पर चूना की पुताई होने के कारण चित्र लुप्त हो गये हैं ।

1- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 4-11-79

2- रामचरण हयारण मित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य"पृष्ट257

दतिया महल के द्वार पर कुछ चित्र अंकित हैं गणेश जी की मूर्ति के दोनों ओर नीचे हिरन, फूल, पत्तियों पर आधारित पैनल हैं। महल की ऊपर की मंजिल पर कुछ चित्र हैं जिनमें मानव आकृतियों के साथ-साथ फुल, पत्ती, हिरन एवं पक्षियों पर आधारित कुछ आलेखन भी बने हैं। (चित्र सं 21) ऊपर की मंजिल में छत की बार्डर पर कुछ कम्पोजीशन दृष्टिगोचर होते हैं। बीच के गोल कमरों के आलों में व छत पर अलंकारिक आलेखन हैं। लाला के ताल की ओर छज्जों के पीछे वाले कमरों की छत, दीवार एवं आलों में आलेखन बने हैं एक चित्र में एक वृक्ष के दोनों ओर हाथी व उसपर दो सवार दिखाई दे रहे हैं।[1] (चि.सं.22) चौथी मंजिल के केन्द्र के कमरे की छत पर टाइल्स लगे हैं जिनमें कालेरंग के पत्थरों को काटकर एवं शीशे के टुकडों से अलंकरण किया गया है। आखरी मंजिल की गुम्मत के अन्दर के भाग मेंमोर व हंस पर आधारित अलंकारिक आलेखन व उसके नीचे वार्डर की गोलोई में मानव आकृतियां तलवार लिये चित्रित हैं। दतिया महल की तीसरी मंजिल की बाहरी गैलरी में रागमाला व नायक-नायिका ओ के चित्र हैं।[1] (चि.सं.23) भरतगढ की छत पर गोलाई में मोर व हंसों पर आधारित अलंकारिक आलेखन हैं जो कहीं-कहीं नष्ट से हो गये हैं। (चि.सं. 24 से 27)

राजा परीक्षत के मुकरवे में भी अलंकार व आलेखन के अतिरिक्त भित्त चित्र भी पाये जाते हैं। एक चित्र में हाथियों एवं घोडों पर शाही यात्रा का दृश्य है दूसरे चित्र में भगवानकृष्ण के दोनेा ओर गोपियों एवं वाद्य यन्त्र बजाते देव पुरुष दिखाई दे रहे हैं। इसी प्रकार राजा परीक्षत के मुकरवे की पूर्वी गैलरी में एक चित्र में कृष्ण भगवान का पूजन एवं वंदना करते हुये गोपियाँ एवं ग्वाल-वालों के चित्र हैं[2] (चित्र सं. 28 से 30)

इन चित्रों के रंग योजना चटक, एकचश्मी चेहरे, महीन रेखांकन एवं आकर्षित अलंकरण अपने में एक अनपेखापन लिये हुये है। यह चित्र रख-रखाव के कारण आज भी स्पष्ट अवलोकित होते हैं।

1-व 2- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 5-11-79

झांसी :-

जहां झांसी बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अपनी वीरता एवं सौर्य के लिये प्रसिद्ध है वहीं दूसरी ओर इस नगर का अंचल चित्रकला एवं मूर्ति कला से अछूता नहीं बचा है १। बाबूराम की बगिया ,गंगाधर की समाधि (लक्ष्मीतालवे निकट) सिद्धेश्वर का बगीचा एवं रानी - महल में अब भी कुछ चित्र (चित्र सं० 3।) बुन्देलखण्डी गरिमा के प्रतीक के रूप में अपनी संस्कृति का ज्ञान करवाते हैं[1] ।

तालवेहट (ललितपुर) :--

ललितपुर जनपद का तालवेहट का किला व नरसिंह नारायण का मन्दिर भी अपने भित्तियों पर बुन्देलखण्डी चित्रशैली के चित्र आज भी संजाये हुये है । तालवेहट के किले की ऊपरी मंजिल पर मानिक चौक के पूर्वी सिरे पर बनी दीवार पर नरसिंह भगवान का एवं शेर पर सवार भवानी का चित्र है जिसके दोनो ओर नायिका खडी हैं । चित्र खरोंच के कारण अस्पष्ट सा हो गया है चित्र सं 32 नरसिंह भगवान के चित्र की नीचे राक्षसों का युद्ध ,बरहा अवतार,शिव एवं राधा-कृष्ण का चित्र बिना है[2]।

तालवेहट के नरसिंह मन्दिर में घुसते ही फाटक के बाद वाले कमरे एवं हाल के चारो ओर की दीवारों तथा गर्भग्रह की बाहरी दीवार पर बहुत से चित्र बने हैं जिनमें राधाकृष्ण ,रासलीला, नायिका,रामराजा दरबार ,हनुमान रामरावण युद्ध, सातघोडों के रथ पर सवार सूर्य भगवान , चतुर्भज भगवान , हाथी के ऊपर पताका लिये चन्द्र का चित्र , गरुणनायिका ,यशोदा कृष्ण , आरती चित्रण एवं गोवर्धन धारण आदि के चित्र (चित्र सं० 33, 34) हैं[3] ।

1- स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 27-12-82 सर्वेक्षण केसमय डा० आर० ए० अग्रवाल मेरठ एवं प्रो० राजेन्द्र मुज्जफर नगर साथ में थे ।

2व 3- सर्वेक्षण यात्र दिनांक 28-12-82

देवगढ (ललितपुर) :-

प्राकृतिक सौन्दर्य एवं मूर्तिकला की दृष्टि से देवगढ भी आपने में महत्व रखता है । चित्रकला के कोई विशेष नमूने नहीं हैं फिर भी यहा राजघाट , नाहरघाटी , बरहा महिंद मन्दिर, दशावतार मंदिर , सिद्धगुफा आदि स्थानों तथा राजकीय संग्रहालय में उपलब्ध मूर्तिकला के उत्कृष्ट नमूने जैन तथा ऐतिहासिक दन्त कथाओं से सम्बन्धित हैं ।

वानपुर :-

राजा मर्दनसिंह द्वारा बनवाया हुआ वानपुर का किला जो अब खंडहर के रूप में है , बुन्देलखण्डी चित्रशैली से अछूते नहीं रहे हैं । तोते एवं मुर्गे पर आधारित अलंकरण ,सैनिकों के चित्र एवं भागते हुये हाथी के चित्र आज भी अपनी गरिमा के गीत गा रहे हैं[2]।

मोहनगढ :-

मोहनगढ के किले में अब स्कूल चल रहा है उसके कार्यालय की दीवारों पर चित्रित कृष्ण लीला के चित्र जैसे मक्खन निकालते ,गाय बांधते एवं ग्वालबालों के साथ क्रीडा करते आज भी सुरक्षित हैं[3] ।

टीकमगढ :-

टीकमगढ के किले एवं मुकरवों में भी बुन्देल खण्डी भित्ति चित्र प्राप्त हैं । फूल-पत्तियों एवं मछलियों के चित्रांकन द्वारा सुन्दर आलेखनों (चित्र सं0 35) को बनाकर (भगवन्तक्लब) जिसमें आजकल एग्रो का दफतर है , बनाकर चित्रकार ने सभी का मन मोह लिया है । इसी प्रकार मुकरवों में बने चित्र जो कि धार्मिक एवं शाही यात्रा ,शिकार(चित्र सं0 36) आदि के प्रतीत होते हैं[4] ।

---

1 से 4 - सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 27-12-82 से 29-12-82 तक डा0 अग्रवाल मेरठ,डा0 त्रिवेदी झांसी के साथ ।

टीकमगढ के विभिन्न स्थलों पर दर्शनीय चित्र बडे ही मोहक तथा कलाकार की भावनाओं का सही प्रदर्शन है । चित्रों का अच्छा रख-रखाव एवं सुरक्षा न होने के कारण धीरे-धीरे वे धूमिल पडते जा रहे हैं ।

मदनपुर :-

~~टीकमगढ~~ जनपद के मदनपुर ग्राम में छोटी एवं बडी कचहरी के खंडहर जिन्हें आल्हा-ऊदल की बैठक भी कहा जाता है तथा यहाँ पर भी भित्ति चित्र अल्प मात्रा में अवलोकित होते हैं इसमें शिव, नन्दी, सरस्वती, दुर्गा की ~~प्रतिहार कालीन~~ मूर्ति शिल्प अत्यधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होता है । छत पर गोल अलंकृत आलेखन , कमल के फूल तथा मोर पर आधारित जिसके दोनेा ओर मानव आकृतियों के चित्रण हैं, को देखने से यह चित्र जैन शैली के प्रतीत होते हैं फिर भी बुन्देलखण्ड की गरिमा में अपने योगदान से पीछे नहीं हैं[1] ।

समथर :-

समथर के किले के राजमन्दिर में कृष्णलीला चीरहरण , वृह्मा , गज-ग्राह , महादेव , विष्णु आदि के चित्र हैं । राम दरवार , देवयज्ञ , घोडों पर विजय यात्रा (चित्र सं0 37,38,40) साधू मण्डल एवं देवताओ (चित्र सं0 39) के चित्र हैं । इनके साथ-साथ राम विवाह आदि के चित्र भी हैं । इसी प्रकार लक्ष्मी चौक में भी राजदरवार, घोडे, हाथी व रथ ऊँटों का चित्रण है । मंदिर की दूसरी मंजिल पर भी शिकार , रामलक्ष्मण , होली खेलते कृष्ण आदि के चित्र बुन्देली चित्रशैली के अच्छे उदाहरण हैं । इन चित्रों का रेखांकन स्पष्ट रंगयोजना चटकीली तथा धार्मिक एवं साही घटनाओं से परिपूर्ण हैं । रख-रखाव अच्छा होने के कारण चित्र देखने में अब भी सुन्दर प्रतीत होते हैं[2]।

1- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 30-12-82 डा0 आर 0 ए0 अग्रवाल मेरठ एवं प्रो0 राजेन्द्रजी मुज्जफरनगर के साथ ।

2- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 1-1-83

अमरागढ :-

अमरागढ के किले ,मुकरवा एवं मंदिर में चित्र हैं । मंदिर के चित्र (चित्र सं0 ५। से ५५) बालि-सुग्रीव युद्ध , एवं राधा-कृष्ण रासलीला , राधा-कृष्ण की प्रेमलीला एवं राधा-कृष्ण के समक्ष गोपियों के नृत्य आदि के चित्रों के अतिरिक्त रामदरवार एवं ऋषि मुनियों के चित्र अंकित हैं । अमरागढ के मुकरवे में बहुत से धार्मिक एवं शाही चित्र हैं । गोवर्धन लीला का चित्र जिसपर बुन्देली लिपि में कुछ लिखा हुआ है एक अनोखा चित्र है (चि.क्र.५५) । मंदिर रमवाडा में भी चित्र थे जो अब पुत गये हैं । इस मंदिर में अब विद्यालय लगता है । यहाँ का किला खण्डहर के रूप में है । कहीं - कहीं पर देखने से यह आभास होता है कि किले के अन्दरी चौक में चित्रकारी अवश्य रहीं होगी[1] ।

टहरौली :-

टहरौली के मंदिर एवं किले में अब भी चित्र हैं । किले के अन्दर दउआजू के डेरे में व उनके बरामदे में जो खण्डहर है तथा भीतरी कमरे में चित्र हैं । बहुत से चित्र अब नष्ट हो गये हैं उन-में से कुछ चित्र रामदरवार, राजतिलक (चित्र सं0 ५१,५२) युद्ध,हाथी पर सवारी , वृह्मा (चित्र सं0 ५१) सन्यासी , गाय एवं वृक्षों के चित्र हैं । इसी प्रकार रामजी के मंदिर में रामदरवार , चौपडखेलते हुये हाथी (चित्र सं0 ५५,५६) गाय चराते कृष्ण , कृष्ण - कंस लीला , पूतना वध , ब्रह्मा , झूला झूलते कृष्ण , कृष्ण एवं रामलीला शाही सेना धानुष यज्ञ , राजतिलक आदि के चित्र हैं । चौक की तोडियों में भी बहुत से चित्र बने हैं जो कृष्ण लीला , राम दरवार , वानर सेना एवं हाथियों आदि के हैं[2] (चित्र सं0 ५३,५५,५६)

1- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 1-1-83

2- सर्वेक्षण यात्रादिनांक 2-1-83

गुरसराय :-

गुरसराय का किला अब लगभग नष्ट हो चुका है किले के पीछे भाग में मंदिर के कुछ अवशेष भाग , चित्रकला के नमूने अभी भी संजोये खडे हैं । राम दरवार , हनुमान , जुलूस यात्रा, चुंगल चिडिया (चित्र सं0 ५८) शिव , हाथियों एवं घोडों पर सवारी , बारात , मयूर नृत्य (चित्र सं0 ५७ से ६०) आदि के चित्र दिखाई देते हैं । ये चित्र अधिकतर राम और उनके जीवन से सम्बन्धित चित्रित किये गये हैं । राम बरात का चित्र जिसमें परिस्थिति का बडा अच्छा चित्रण किया गया है । इसके साथ - साथा शाही सवारी,यात्रा और देवी-देवताओं आदि का चित्र अधिक मात्रा में चित्रित किये गये हैं- (चित्र सं0 ५७,५९) ये चित्र खरोंच के निशान पड जाने के कारण अत्यधिक मात्रा में नष्ट हो गये हैं । यहाँ पर चरवाहे आदि आग वगैरह जलाकर चित्रों को धूमिल कर रहे हैं जिससे इसकी रंग योजना धूमिल पडती जा रही है[1]।

टोडीफतेहपुर :-

टोडीफुतेहपुर का किला(चित्र सं0 अब खण्डहर के रुप में विद्यमान है । इसी किले के किनारे भाग में एक मंदिर है (चित्र सं0 ५८) जिसका निर्माण दीवन हरप्रसरद ने करवाया था । मंदिर तीन मंजिल का है सबसे ऊपर की मंजिल पर मंदिर छैलविहा री (राधाकृष्ण) बीच की मंजिल पर मंदिर राजकुमार राम का है तथा नीचे की मंजिल पर मंदिर दशरथ परिवार एवं धनुषधारी राम का है । इन सभी खण्डों पर क्रमश: मंदिर के अन्दर भाग में रासलीला , तीर्थों के चित्र , राजदरवार शाही सवारी एवं घोडों पर सैनिकों के चित्र हैं । बीच की मंजिल पर रामविवाह , ब्रह्मा,विष्णु,महेश,रामबारात,राजतिलक,रामरावण युद्ध, बावना अवतार, हरकी पौढी तथा अन्य देवी-देवताओं के चित्र हैं (चित्र सं0 क्रमश: ५७ से ६३) नीचे की मंजिल पर चित्र नहीं हैं । मुख्य द्वार की तोडियों में चित्र हैं[2] ।

---

1 व 2- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 3-1-83

बिजना :-

टोडीफतेहपुर के आगे विजना स्टेट है। इसके यहाँ के राजा पखावज बजाने में विख्यात हैं । इस किले के भाग में भी एक मंदिर है इसके अन्दर चारो ओर चित्र बने हैं । चित्रों में रथ यात्रा नादिया पर शंकरजी की बारात , बरात की स्वगत तथा महल व हाथी आदि का चित्रण है (चित्र सं0 क्रमशः 64 से 66) ये चित्र धूमिल से हो गये हैं रेखायें महीन हैं । स्लेटी, काले एवं कत्थई रंगों का अधिक प्रयोग किया गया है तथा सभी चित्र धार्मिक हैं[1] ।

धुबेला :-

झांसी -छतरपुर मार्ग पर धुबेला (मऊसानिया) स्थान भी चित्रकला के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं । यहाँ पर श्री छत्रसाल की समाधि (चित्र सं0 67) एवं रानी कमलापति की सुरई (चित्र सं0 70) में कुछ चित्र मिलते हैं । छत्रसाल की समाधि में पाये जाने वाले घोडे व मोर पर आधारित है जबकि इनमें मानव चित्रण न के बराबर हैं (चित्र सं0 68,69) इसी प्रकार रानी कमलापति सुरइ में भी अलंकारिक आलेखन, हाथी-घोडे पर सवार युद्ध का दृश्य आदि देखने को मिलते हैं (चित्र सं0 71 से 73) ये चित्र भी कुछ अस्पष्ट से हैं । स्थापत्ति कला की दृष्टि से दोनों भवन अति सुन्दर और अपनी प्रशस्ति के गीत आज भी गा रहे हैं[2]।

पन्ना :-

अजयगढ, कालिंजर एवं पन्ना भी बुन्देल खण्ड के गौरव हैं परन्तु अब उनमें चित्रकला के कोई नमूने देखने को नहीं मिलते हैं और न ही पहले ही कभी रहे होंगे । स्थापत्य एवं मूर्तिकला की दृष्टि से अवश्य प्रमुख केन्द्र रहे होंगे[3] (चित्र क्रमांक 74

---

1 से 3- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 3,4 एवं 5 जनवरी 83

पन्ना का प्राणनाथ मंदिर आज भी स्थापत्य कला का अद्भुत प्रतीक है जिसे आज भी लोग मुक्ति धाम के नाम से जानते हैं ।चित्र सं0 ७५ ।

बुन्देली चित्रकला का अजस्त्र श्रोत परम्परानुसार बुन्देलखण्ड में निरन्तर प्रभावित होता आ रहा है । अपनी सर्वेक्षण यात्राओं के दौरान यथा सम्भव उन सभी स्थानों का वर्णन प्राप्त करने का प्रयास किया गया है । अब भित्ति चित्रों के बाद लघु चित्रों में वैष्णव धर्म से सम्बन्धित भक्ति भावना एवं रीति चित्रों का अपार भण्डार यहाँ की चित्रकला के स्वतन्त्र अस्तित्व को प्रस्तुत कर देता है ।

भित्तीय चित्रण श्रंखला में अजन्ता के बाद बुन्देलखण्ड के प्रमुख प्रतिष्ठानों के कुछ ऐसे स्थल हैं जिसमें मध्य युग की तत्कालीन प्रवृत्तियाँ सामाजिक तथा ऐतिहासिक स्वरुप तथा जनजीवन झांकी प्रस्तुत हो जाती है ।

बुन्देलखण्ड के इन चित्रों में स्थानीय वेशभूषा , आभूषण ।चित्र सं0 ९२ । एवं भोगोलिक प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है परन्तु रेखाओं में मुगल प्रभाव है । रंगों में स्थानीय रंग व बनस्पति द्वारा बनाये रंग अधिक प्रयोग किये गये हैं । कहीं - कहीं मानव आकृतियों को चटकीले में भी चित्रित किया गया है । चित्रों को देखने से ज्ञात होता है कि यहाँ की कला राजस्थानी एवं पहाडी शैली से लाभान्वित हुई है ।

बुन्देलखण्ड जितना वीरता ,गौरवमय परम्पराओं और अपने अतीत के प्रति सजग रहा है उतना ही चित्रकला को अपनाने की पूर्ण भूमिका निभाई है[1] । इस क्षेत्र की धरोहर किलों ,मंदिरों ,मुकरवों एवं राजकीय संग्रहालयों तथा व्यक्तिगत संग्रहालयों में आज भी अपनी गौरवगाथा प्रस्तुत कर रही है ।

लघु चित्रकारी हेतु चित्रकार ने अधिकतर छतरपुरी कागज प्रयोग में लाया है । चित्रकार के पास रंगों की संख्या अधिक प्रतीत नहीं होती है ।

1- वाचस्पति गैरोला "भारतीय चित्रकला " पृष्ट 228,29

रंग साधारण हैं । लाल , नीले , पीले , हरे , सफेद तथा काले रंगो का प्रयोग किया गया है । सुनहले व रुपहले रंग भी कहीं - कहीं प्रयोग में लाये गये हैं । रंग भी घर में तैयार किये प्रतीत होते हैं । गेरु , रामरज ,नील , सिन्दूर , ह्यौरी से अधिकतर काम लेता हुआ चित्रकार प्रतीत होता है ।

उसकी तूलिका भी अपनी बनाई हुई प्रतीत होती है वह इस तूलिका से इतनी बारीक रेखायें खींचता है जिसको देखकर आँखों को भी भ्रम हो जाता है । रंगों की जमावट में बुन्देली चित्रकार असावधान नहीं हैं उसके रंगों की जमावट सर्वत्र एक सी है । प्रकृति चित्रण भी उसे अधिक प्रिय है, कहीं-कहीं पशुओं का भी चित्रण अधिक मात्रा में देखने को मिलता है । स्त्री-पुरुष के चित्रण को अपना अभीष्ठ समझता सा चित्रकार सामने आता है और चित्र की अन्य सजावट उसके लिये गौढ है।[1]

यह एक उल्लेखनीय बात है कि बुन्देलखण्ड के चित्रो का श्रजन कम नहीं हुआ है । क्या भित्ति चित्र क्या लघु चित्र दोनों ही समान रूप से मिलते हैं इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के कुछ ऐसे चित्रकार भी हुये है जिन्हों ने देवल(चने का अर्द्ध भाग) पर अम्बारीदार हाथी चित्रित किया , एक अन्य चित्रकार ने एक चावल पर "विहारीलाल जमनादास डवरागिर्द" इन पन्द्रह अक्षरों को अंकित किया है । इसी प्रकार मूंगफली के छिलके द्वारा चित्र निमार्ण विश्व की चित्रकला को एक नवीन देन है ।

इसप्रकार भारतीय चित्रकला के सन्दर्भ में बुन्देलखण्ड की चित्रकला का प्रमुख स्थान है । यहाँ के भित्ति चित्र लघुचित्र ,पटचित्र एवं हस्तकौशल आदि अपना स्थान बनाये हुये हैं । यह सामग्री प्रत्येक घर से लेकर संग्रहालयों तक सुरक्षित हैं , इसका भविष्य आशावान है जिससे इसका महत्व दिन-प्रतिदिन सामने आता जा रहा है तथा इसकी उपादेयता भी जीवन में उत्तरोत्तर बढती जा रही है ।

।- रामचरण हयारण मित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य" पृष्ट256

अध्याय-तृतीय

बुन्देल खंड चित्रशैली के भित्ति चित्र

भित्ति चित्रों के प्रमुख प्रतिष्ठान प्रतिपाद विषय, प्रमुख कलाकार सर्वेक्षण, शैलीगत विशेषतायें व महत्व।

अध्याय-तृतीय

बुन्देलखण्ड चित्र शैली के भित्ति चित्र :-

ललित कलाओं के उद्भव तथा विकास की दृष्टि से बुन्देलखण्ड क्षेत्र का भारत में विशेष स्थान नहा है । वास्तुकला , चित्रकला , मूर्तिकला का इस भू-भाग में प्रागैतिहासिक काल से लेकर मध्यकाल के अन्त तक अनेक रुपों में विकास हुआ । भारतीय चित्रकला हैं भित्ति चित्रण परम्परा प्राचीनकाल से ही देखने को मिलती है । मनुश्य जब आरम्भिक स्वरुप में स्वतंत्र रुप से विचरण करता था उस समय उसके पास न तो पहनने के लिये कपडे थे और न ही रहने के लिये कोई आवास की व्यवस्था ही थी । भोजन के लिये प्रकृति के सहारे अपनी समस्या का निदान करता था । भोजन के लिये फल-फूल ,

कन्दमूलफल और जानवरों का मांस खाकर अपना भरण-पोषण करता था । पेडों की छाल , पशुओं की खाल को पहन कर धूप,वर्षा एवं सर्दी से अपने शरीर की रक्षा करता था । रहने के लिये उसे गुहा, गुफा, ही सहजरुप में उपलब्ध थे जिनमें उसने अपने जीवन की रक्षा की ।

तत्कालीन पर्यावरण में उस समय के मानव ने अपनी अनुभूतियों को उन गुहाओं में उकेरा जिनमें वह निवास करता था । वह इस बात से अनभिग्य था कि वह चित्रकला के इतिहास का सूत्रपात कर रहा है[1] ।

आज प्रकृति की इन स्थलों में जहाँ मानव ने अपने जीवन का प्रथम अध्याय प्रारम्भ किया था , चित्रकला के साथ - साथ वहाँ मानव जाति का प्रारम्भिक इतिहास भी प्राप्त होता है । दिन - प्रतिदिन ऐसे गुहा चित्र सामने आ रहे हैं जिनमें आदि मानव की अनुभूतियों का लेखा-जोखा मिल रहा है ।

लगभग छै: सहस्र वर्ष प्राचीन अनार्य चित्रकला के चित्रों से जो माणिकपुर की वनस्थली में युगनियों की गुफा के द्वारों पर अंकित है और अत्यन्त साधारण रेखाओं द्वारा ही व्यक्त किये गये हैं उनसे इस भूमि की पुरातन अर्द्ध सभ्यता का प्रमाण मिलता है[2]।

गुहा चित्रों का भित्ति चित्रण परम्परा में प्रथम स्थान है इसके उपरान्त सिन्धु घाटी एवं वैदिक कालीन सभयता के वर्तन दैनिक उपयोग की वस्तुयें , मुहरें , सिक्के एवं अन्य उपयोगी वस्तुयें आती हैं[3] । जिन से यह परम्परा आगे बढती प्रतीत होती है । मानव सभ्यता के क्रमिक विकास का पूर्ण आभास होता है । समय और संस्कृति के साथ-साथ प्राकृतिक परिवेश को छोडकर भवनों , कपडों एवं कृषि की उन्नतिशील सामग्री ने मानव जीवन को सुखी बना दिया था ।

1- रायकृष्ण दास "भारतीय चित्रकला" पृष्ट 5-19

2- रामचरण हयारण मित्र" बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य"पृष्ट 2

3- डा0 सत्यप्रकाश "आकृति" 1962 पृष्ट 4,5

इस परम्परा में चित्रों का स्वरूप आदि मानव की गुहा चित्रकला से सुधरा हुआ था जिसे सभी कला विद्वान स्वीकार करते हैं ।

बौद्धकाल की भित्ति चित्रण परम्परा गुप्त शासकों के सहयोग एवं धर्म भावनाओं से प्रेरित हो विकसित हुई है । अजन्ता की चित्रकला विश्व में अपनी कृतियों के लिये सर्वविख्यात हैं । इन चित्रों में जहां एक ओर सास्त्रीय परम्परागत दार्शनिक रूप अवलोकित होता है वहां दूसरी ओर अध्यात्म से भी अछूता नहीं रहा है । यह प्रथा भारतीय चित्रकला के इतिहास में महत्वपूर्ण मानी गई है और इसी लिये इस युग को स्वर्ण युग के रूप में माना जाता है । इसका श्रेय चित्रकार के साथ - साथ उसकी धार्मिक प्रेरणा को भी है[1] । जिससे इन उत्कृष्ट चित्रों की रचना हो सकी है ।

अजन्ता के बाद भारतीय चित्रकला में तत्कालीन धार्मिक प्रवृत्तियों के साथ तर्कशास्त्र एवं साहित्य के आ जाने से भित्ति चित्र परम्परा के साथ लघुचित्र प्रणाली को भी अपना लिया था । दीवार से हटकर ताडपत्र , भोजपत्र , सिल्क , कागज एवं पट्टों पर चित्र बनना शुरु हो गया थी । विशेषकर वैष्णव , जैन और ब्राह्मण धर्म के पदार्पण से इनका स्वरूप और भी बढ गया ।

चित्रकला के स्थान पर बडे-बडे मंदिरों ,पूजाग्रहों एवं मूर्तियों का निर्मा ण भी प्रारम्भ हो गया ि था । यह लम्बा मध्यकालीन युग चित्रकला हेतु अधोपतन का युग रहा जिसमें भित्ति चित्रण परम्परा तो लगभग नष्ट प्राय: सी हो गई परन्तु लघु चित्रों की परम्परा स्वतन्त्र रूप से मध्यकालीन युग के चित्र , साहित्य को सजाती व सम्भारती रही । यही कारण था कि जिससे मध्य युग के बाद चित्रकला का मुगल और राजपूताना स्वरूप फिर से निखर उठा[2] ।

1- असित कुमार हलधर"ललितकला की धारायें" पृष्ट 59-64

2- अशोक मित्रा "दि अजन्ता एण्ड बाघ स्टाइल्स"(पब्लिकेशन डिवीजन भारत सरकार मई 1968) पृष्ट 12- 58

बुन्देलखण्ड को भारत का हृदय क्षेत्र कहा जा सकता है इसमें मध्य युग के बहुत से ऐसे प्रसिद्ध स्थान जिनमें भित्ति चित्रण पद्धति का स्वरुप विकसित हुआ है । भारतीय चित्रकला के इतिहास में इनका अपना अलग महत्व है[1] ।

भारतवर्ष में भित्ति चित्रकला की पद्धति भी अपना अलग महत्व रखती है । प्राचीन भारत में चित्रकला का बहुतायत से अभ्यास किया गया तथा राजपरिवारों ने चित्रकारों को आश्रय प्रदान किया । सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का अवलोकन करने पर यत्र-तत्र इसके प्रमाण उपलब्ध हैं । शिल्पकला की प्राचीन पुस्तकें जैसे विष्णु धर्मोत्तर प्रमाण मनसोल्लास शिल्प पुराण आदि चित्रांकन पद्धति पर प्रकाश डालते हैं[2] ।

अजन्ता और बाघ की गुफाओं के चित्र तो सम्पूर्ण विश्व के लिये गर्भ का विषय हैं । कालान्तर में यह तकनीकि राजस्थान की चित्रकला का अभिन्न अंक बन गई[3] ।

भारतीय भित्ति चित्रों में अजन्ता , बादामी , बाघ सित्तन-वासल , कांजीवरम आदि स्थानों के चित्र उल्लेखनीय हैं । यह चित्र मिट्टी रेत , चूना , गोबर आदि से बने धरातल पर अंकित हैं । सफेद , लाल , पीला , नीला , हरा , काला रंग अधिकता से प्रयुक्त है । अधिकांशत: समीपवर्ती क्षेत्र में पाये जाने वाले भौमिक पदार्थों का प्रयोग होता है । आला-गीला चित्रांकन इसी कोटि में आता है[4] ।

आला-गीला चित्रांकन उस समय होता है जब लेप ताजा होता है इसमें प्रयोग होने वाले रंग भी चूने के पानी में मिश्रित होते हैं । जब सतह सूख जाती है तो यह दीवाल का एक अंग बन जाती है । रंग सतह के साथ - साथ चूने में प्रवेश कर कैल्शियम हाइड्रो आक्साइड प्रक्रिया के द्वारा रंगों में दीर्घ समय तक चमक बने रहने की क्षमता आ जाती है[5] ।

1- डा0 वेनीप्रसाद "हिन्दुस्तान की पुरानी कहानी" पृष्ट 445

2- वाचस्पति गैरोला "भारतीय चित्रकला " पृष्ट 55,56

3- ए0 के0 कुमार स्वामी "हिस्ट्री ओफ इण्डिया एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट" पृष्ट 148

4- बी0 बी0 लाल "अजन्ता म्यूरल्स" पृष्ट 55

5- डा0 आर 0 ए0 अग्रवाल"मारवाड म्यूरल्स" पृष्ट 61,62

आला-गीला चित्रांकन के विविध अवस्थाओं के अन्तर्गत सर्वप्रथम चित्रकार भित्ति को तराशता है तथा पुन: सम्पूर्ण दीवाल को पानी से धोता जाता है ताकि धूल और रेत के कण साफ हो तथा सतह समतल और चिकनी हो जावे । द्वितीय अवस्था में लेपकर्म किया जाता है । इसके उपरान्त गुण , मकराना तथा चूना का प्रयोग किया जाता है । भूसा तथा बालू भी भित्ति को कडा करने केलिये प्रयोग में लायी जाती है । तृतीय अवस्था में गुण ,चूना ,मकरानाडस्ट का लेप किया जाता है । चतुर्थ अवस्था में सुधा लेप्य की आवश्यकता होती है जिसको बनाने केलिये कम से कम छ: महीने की आवश्यकता होती है । चित्रण प्रक्रिया के समय प्रथम गेरु तथा काले रंग से रेखांकन करते है फिर सुधा लेप के साथ रंगों मिलाकर रंगते है इसके लिये हिरमिजी या हिंगलो , रामरज , हरभाटा , नील , चूना , काजल का प्रयोग भी किया जाता है तथा अन्त में सतह को चमकाने के लिये मोहरा पत्थर को घिसते है[1] ।

टैम्परा पद्धति में एक ऐसे माध्यम का प्रयोग किया जाता है जो पानी में घुलनशील होता है और बाद में अघुलनशील हो जाता है इसमें रंग की परतें अपारदर्शी होती हैं जिसपर विभिन्न रंग योजनाओ का प्रयोग सम्भव है । आला-गीला पद्धति की तरह ही टैम्परा रंगों को बनाया जाता है अधिकांशत: अण्डे की जर्दी का प्रयोग भी किया जाता है । रंग योजना प्रकाशा से अंधकार से संयोजित रंगों की होती है अर्थात पहले हल्के रंग बाद में गहरे रंगों का प्रयोग होता है । टैम्परा चित्रण केवल सूखे धरातल पर ही सम्भव है जो कि प्लास्टर की सतह की तरह होती है[2] ।

टैम्परा चित्रण नग्न प्रस्तर शिलाओं की समतल सतहों पर भी हो सकता है । इसप्रकार भित्ति चित्रण पद्धति अपने में एक ऐसी पद्धति है कि जिसके लिये चित्रकार को काफी तैयारी करनी पडती है ।

1- डा० आर० ए० अग्रवाल "मारवाड म्यूरल्स" पृष्ठ 66 से 74

2- वाजस्पति गैरोला " पृष्ट 55,56

डा० आर० ए० अग्रवाल "मारवाडी म्यूरल्स" पृष्ट 66 से 74

बुन्देलखण्ड के
भित्ति चित्र एवं प्रतिष्ठान :--

बुन्देलखण्ड भित्ति चित्रों के स्थल पूरे क्षेत्र में पाये जाते हैं उनमें से कुछ तो ऐसे हैं जो चित्रकला ही नही वरन धार्मिक दृष्टिकोण से भी विख्यात हैं । और कुछ स्थान केवल चित्र कला की धरोहर संजोये जीर्ण-शीर्ण अवस्था में जीवित हैं ।

ओरछा :--

ओरछा बुन्देलखण्ड का महत्वपूर्ण स्थान है यहाँ के बहुत से प्रमुख प्रतिष्ठानों में भित्ति चित्रों का स्वरुप देखने को मिलता है ।

§ अ § - लक्ष्मीनारायण का मंदिर :-

यह मंदिर बाहर से तिकोना §चित्र सं0 3 § तथा अन्दर जाने पर चौकोर दिखाई देता है । यह मंदिर ओरछा के उत्तर - पश्चिम में स्थित है । महाराजा वीरसिंह जूदेव ने इसका निर्माण कराया । इसकी निर्माण की व्यवस्था इस प्रकार की हुई कि विभिन्न दालानों में भित्ति चित्रण के लिये उचित स्थान की व्यवस्था का ध्यान रखा गया ।

मंदिर के प्रवेश द्वार से ही चित्रकारी के उदाहरण मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं । पहली दालान की छत पर कुछ आलेखन अंकित है उनमें बाहरी रेखाओं के द्वारा अलंकारिक स्वरुप जिनमें चटकीले रंगों का प्रयोग किया गया है , देखने को मिलते हैं । सम्पूर्ण छत आलेखनों से सुसज्जित की गई थी परन्तु अब बहुत से आलेखन धीरे-धीरे नष्ट हो रहे हैं । दूसरी दालान में गाय का दूध निकालते हुये भगवान कृष्ण , राम , सीता व लक्ष्मण , पंचमुखी शिव , बृहमा , विष्णु तथा लक्ष्मी के चित्र हैं[1] ।

1- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 3-11-83

इन चित्रों में पौराणिक मान्यताओंके अनुरुप उरेहे गये हैं तथा उनमें तत्कालीन भक्ति भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। रेखाओं में वारीकी ,रंग चटक तथा समस्त संयोजन अनोखे छवि के साथ प्रस्तुत किया गया है । जिससे उस समय के चित्रकारों की कुशलता का आभास किया जा सकता है चित्रों के चौकटे (बार्डर) भी पहले की दालान की भाँति थी । ओलेखनों को अलंकृत करके उनमें सौन्दर्यता की अनुभूति प्रस्तुत की गई है इससे चित्रों की सुन्दरता और बढ गई । चित्रों की पृष्टभूमि और अग्रभूमि में , स्वरुपों , आकारों एवं रंगों का ऐसा सम्मोहन है जिसे देखते ही बनता है[1] ।

आगे की दालान में रामलीला सम्बन्धी चित्र जैसे राम-रावण युद्ध चित्र सं0 ५ (और बाई ओर से अन्तिम दीवार की ओर जाने प पर मल्ल योद्धाओं का भी अंकन हुआ है । इस चित्र से तत्कालीन शासकों की रुचि का आभास मिला है , तथा मल्ल युद्ध परम्परा का स्पष्ट होता है । इन चित्रों में भी रंग , आकार और रेखाओं की विशेषता भी दूसरे दालान की भाँति है[2] ।

इसी प्रकार चौथी दालान में भगवान कृष्ण की लीला सम्बन्धी, बालक्रीणा सम्बन्धी चित्र अंकित हैं । इन चित्रों में रेखाओं द्वारा भगवान कृष्ण का पराक्रम और उनका प्रभाव स्पश्ट देखा जा सकता है । चित्रों में कृष्ण भक्ति भावना से प्रेरित होकर चित्रकार ने अपनी तूलिका से चित्रांकन किया है । कृष्ण के मुख मण्डल एवं राधिका का स्वरुप उपराकत भावना क को दर्शक तक पहुँचा देता है । खम्भों पर मोरछल लिये स्त्रियां एवं उनके ऊपरी तथा निचले भाग में अलंकारिक आलेखनों की भरमार कला के प्रति अनुराग प्रस्तुत करती है[3] ।

।- राममित्र चतुर्वेदी "ओरछा" पृष्ट 69-70

2व 3- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 2व 3 नवम्बर 1979

पांचवी दालान में व्यापक चित्रण हुआ है जिसमें राम और कृष्ण की लीलाओं का अलग-अलग चित्रण है । चित्रों के माध्यम से तीज-त्योहार एवं विशेष पर्वों को बडी मार्मिकता के साथ चित्रकार ने अपनी भावनाओं के माध्यम से भित्तियों पर प्रस्तुत किया है । देवी-देवताओं , शेषशाही भगवान विष्णु , अहिरावण और हनुमान आदि का चित्रण भी चित्रकार ने अपनी तुलिका से उरेहा है[1]। इनमें परम्परागत देवी-देवताओं के चित्र विभन्न स्वरुपों में प्रस्तुत किये गये हैं । रंगों एवं रेखाओं में तीसरे-चौथे दालान की भांति ही तकनीकि चित्रकार ने अपनाई है । मंदिर के इन चारोओर की दालानों को देखते हुये ऐसा आभास होता है कि इन कला बीथिकाओं की योजना भवननिर्माण कर्ता एवं चित्रकार ने बडी कुशलता के साथ उनमें सजीवता का रुप प्रस्तुत किया है । यह कला बीथिकायें दर्शकों एवं भक्त गणों को अनायास ही अपनी ओर आकर्षितकर लेती है[2] ।

छटी दालान में किले पर चढाई{युद्ध} जैसा दृश्य है जिसमें हाथी,घोंडे एवं सिपाही हथियार लिये हुये हैं और इसको देखकर तत्कालीन सन्य व्यवस्था का पूर्ण आभास होता है । अन्य विषयों में झांसी की रानी ,चुंगल चिडिया , राधाकृष्ण , युद्ध के चित्र एवं विकराल काल्पनिक पशु का चित्रण है । यह चित्रण भी अन्य दालानों की भांति समस्त विशेषताओं से परिपूर्ण है[3] । इन चित्रों की विशिष्टताओं से अलग तत्कालीन सामाजिक,राजनैतिक स्थिति का भी अंकन हुआ है । लडाइ के चित्रों में वेशभूषा,शस्त्र,हाथी-घोडे एवं युद्ध कौशल व्यवस्था बडी ही बारीकी से चित्रित की गई है । एक अन्य चित्र में श्रवणकुमार अपने अन्धे माता-पिता को कन्धे पर ले जाते हुयेचित्रित किये गये हैं जो ओरछा के जनमानस पर गहराप्रभाव छोडती है[4]।

---

1 से 4 - स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 2 एवं 3 नवम्बर 1979

इन चित्रों में संयोजनात्मक विशिष्टता अलंकारिक आलेखनों के साथा प्रत्येक चित्र को अलग करके , चित्रफलक की सुव्यवस्था इसप्र कार प्रस्तुत की गई है कि जनको देखते हुये दर्शक कभी नहीं थकता है । यह ब बात अवश्य है कि इन चित्रों के साथ आलेखनों का अधिकतम चित्रण दर्शक के मन में बोझ सा बन जाता है पर जहां पर रिक्त स्थान है वहां पर आलेखनों के माध्यम से कलात्मकता का वातावरण प्रस्तुत किया गया है ।

लक्ष्मीनारायण के मंदिर के सामने वाली दालान में रामजन्म, द्रोपदी स्वयंवर , शंकर विवाह , रामवनगमन , ताडकावध आदि के चित्र बने हैं । इन चित्रों में भी उपरोक्त चित्रों की भांति सभी विशिष्टतायें प्राप्त होती है जो रंगों और रेखाओं तथा संयोजन की कुशलता का प्रमाण हैं । लक्ष्मीनारायण मंदिर , ओरछा के भित्ति चित्रों के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण योगदान व स्थान रखता है , जिससे यहां की मध्यकालीन परम्पराओं से लेकर राजस्थानी और मुगल भित्ति चित्रण परम्परा का इतिहास प्रस्तुत होता है[1] । विषयवस्तु की व्यापकता सामने आ जाती है । बुन्देलखण्डी अलंकार का यह एक ऐसा उदाहरण है जिससे इस शैली का महत्व आंका जा सकता है ।

लक्ष्मीनारायण मंदिर में अंग्रेजों के शिवरों का चित्र झांसी के किले में आक्रमण का चित्र , शिकार के चित्र , युद्ध सम्बन्धि चित्र आदि तत्कालीन प्रवृत्ति के द्योतक हैं । रूकमणी का चित्र व अन्य धार्मिक, पौराणिक विषयों के चित्र बडे ही मार्मिक हैं । अंग्रेजों और युद्ध के चित्रों में उनकी पोषाकों का बडा अच्छा चित्रण है । साधुओं के आश्रम का भी एक चित्र है जिसमें उसके रेखांकन के द्वारा उनके जीवन का त्याग, तपस्या एवं अध्यात्म का दर्शन मिलता है । यह मंदिर भित्ति चित्रण का एक अनोखा एवं विशिष्ट उदाहरण है जो कि धार्मिक भक्ति भावना से जनसाधारण को ओत-प्रोत करने में अपना अपूर्व योगदान प्रस्तुत करताहै[2]

1- श्री आनन्दीलाल पोद्दार‖स्मृतिपुष्पी‖ पृष्ट 247

2- रामचरण हयारण मित्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य" पृष्ट 256-258

§ ब § - आचार्य केशव भवन :-

लक्ष्मीनारायण मंदिर से लौटते समय आचार्य केशव भवन के भगनावशेष अनायास ही दर्शक को अपनी ओर आकृष्टकर साहित्य एवं कला के संगम स्थल का अतीत हृदय को द्रवित कर देता है । रामचन्द्रिका , कविप्रिया ,रसिक प्रिया और वीरसिंहदेव चरित्र आदि ग्रन्थों की रचना आचार्य केशव ने इसी स्थान पर की थी । यहां कभी चित्र रहे होंगे जिनका विषय भी इन ग्रन्थों के ऊपर आधारित था पर अब स्थापत्य एवं चित्रकारी के रूप में कुछ भी शेष नहीं हैं[1]। यह निश्चय है कि ऐसी पुण्य भूमि पर लेखनी के साथ तूलिका भी सहयोगिनी बनकर कार्य करती रही होगी जैसा कि अन्य स्थानों के चित्रण से पूर्णतय: चरितार्थ हो जाता है[2] ।

§ स § - राय प्रवीण का महल :-

महाराजा शत्रुजीतसिंह के राज्य की राजनर्तकी न केवल राजनर्तकी ही रही वरन् साहित्य विदुशी , कवित्री एवं केशव की प्रिय शिष्या थी । रायप्रवीण का महल §चित्र सं0 19 § उसी के नाम से बनावाया गया था इस महल से ओरछा किले के अन्दर जाने का भी रास्ता बना है[3] । इसकी दीवालों एवं छतों पर सुन्दर चित्र §चित्र सं0 20 § बने हैं। इनमें रीतिचित्र ,प्रमुख हैं जो संगीत साहित्य से सम्बन्धित रागमाला के विषय पर आधारित हैं ।

1- सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 2-11-79 को वृन्दावन केयरटेकर जहांगीर महल द्वारा वर्णित ।

2- डा0 पी0 एन0 चोपडा"दि गजेटियर ओफ इण्डिया"खण्ड 2 पृष्ट 482

3- गोरेलाल तिवारी "बुन्देलखण्ड का इतिहास" पृष्ट 144-45

चित्रों में रागमाला , बारहमासा एवं नायक-नायिका स्वरूप का विषय अंकित हुआ है और आलेखन तो चतुर्भुज एवं लक्ष्मीनारायण मंदिर की भाँति ही आकारों में प्रस्तुत किये गये हैं । इस चित्रों में वारीकी अधिक है । स्त्री-पुरुषों , पशु-पक्षियों एवं प्रकृति के चित्रण में बुन्देलखण्डी प्रभव स्पष्ट झलकता है । पौराणिक , धार्मिक विषयों के चित्रण में भी चित्रकार ने इस शैली को ही अपनाया है जिससे इन चित्रों में क्षेत्रीय वातावरण भरा पडा है । बुन्देलखण्डी परिधान तत्कालीन वैभव की गाथा गाता हुआ प्रतीत होता है[1] ।

मालवा,राजस्थान,ग्वालियर और देहली आदि स्थान इनके पास होने के कारण इनमें उपर्युक्त प्रभाव किसी न किसी रूप में आ गये हैं लेकिन उसमें उसका स्वतन्त्र अस्तित्व ही विकसित हुआ है जो इन चित्रों की विशिष्टता कही जा सकती है । अलंकारिक आलेखनों का प्रयोग आलों , खम्भों , छतों , दीवालों , महरावों और अन्य खाली स्थानों में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि सारा वातावरण रंग में बदल जाता है ।

हंस का चित्रण भी यत्र-तत्र किया गया है । इन चित्रों में वैसी ताजगी नहीं है जैसे निर्माण के समय रही होगी फिर भी सजीवता दृष्टिगोचर होती है । समय के थपेडे और सुरक्षा की समुचित व्यवस्था न होने के कारण ये चित्र भी अब नष्ट हो रहे हैं यदि इन चित्रों की सुरक्षा न की गई तो अवशेष चित्रभी लुप्त हो जायेंगे । जो सुन्दरता एवं कलात्मकता का गुण उनमें प्राप्त है वह राजस्थानी , पहाडी और मुगल कला के भिति के चित्रों से आगे परिष्कृत होकर सामने आये है[2] ।

1- सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 2-11-79

2- मोहनलाल गुप्त "राजस्थान के भिति चित्र" पृष्ट 5,6

§ द § - सिद्ध खंगार गुफा :-

एक प्रचलित कथा, चतुर्भज मंदिर का कलश चुराने वाले को छमा कर दिये जाने पर पुरष्कार स्वरुप प्रायश्चित करने के लिये राजा मधुकरशाह द्वारा इसका निर्माण कराया गया था । इसके खम्भों और दीवारों पर भी आलेखन चित्रित हैं व कुछ खम्भों पर खडी स्त्रियां मोरछल लिये हुये चित्रित की गई हैं पर इसकी सुरक्षा न होने से समस्त वैभव नष्ट सेा हो गया है[1]।

§ य § - राम राजा भगवान का मंदिर :-

इस मंदिर का निर्माण मधुकरशाह की रानी गणेश कुंवर ने कराया था और अयोध्या से भगवान राम की मूर्ति लाकर यहां स्थापित की थी । यह मंदिर पहले महल था जिसे राजा भारतीचन्द्र ने बनवाया था[2] । रामनवमी के दिन इस मंदिर में स्थानीय जनसमूह उमड पडता है । इस मंदिर के अन्दर और बरामदों व खम्भों पर अंलकारिक आलेखनों का अनोखा स्वरुप प्रस्तुत किया गया है । इन आलेखनों में गहरा लाल , पीला एवं बादामी रंगों का प्रयोग हुआ है जो बहुत ही सुन्दर लगता है । सभी आलेखन अलंकारिक हैं इनमें मुगल प्रभाव स्पष्ट रुप से दिखाई देता है[3] ।

§ र § - चतुर्भुज मंदिर :-

महाराजा वीरसिंहजूदेव द्वारा निर्मित यह मंदिर ओरछा के ठीक पश्चिम दिशा में स्थित है । स्थापत्य मूर्ति और चित्रकला की दृष्टि से यह अनोखा उदाहरण है[4] ।

1- सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 3-11-79

2 से 4- गोरेलाल तिवारी "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ट 129-31

3- अम्बिकाप्रसाद वर्मा "ओरछा की चित्रकारी" पृष्ट 68-73

इसके पीछे युगलकिशोर जी का मंदिर है जो कृष्ण भक्त उपासकों का केन्द्र है । दीवालों पर आलेखनों के अतिरिक्त कुछ चित्रों के अवशेष जो अस्पष्ट एवं नष्ट से हो गये हैं , अल्प मात्रा में दृष्टिगोचर होते हैं । उनके ऊपर सफेद चूने से पुताई कर दी गई है यदि यह धरोहर संजोकर रखी जाती तो ओरछा केठिकान भित्ति चित्रण का योगदान कर एक नया इतिहास बताते । इस मंदिर की मूर्तियां एवं युगुलकिशोर की मूर्तियां पन्नाके मंदिर में स्थापित हैं जो तत्कालीन स्थापत्य एवं एवं मूर्तिकला के अद्भुत प्रतीक हैं[1] ।

ल - जहांगीर महल :-

जहांगीर महल का निर्माण महाराजा वीरसिंहजूदेव द्वारा अकबर के पुत्र जहांगीर के स्वागत एवं मित्रता की स्मृति के रूप में निर्मित कराया गया था । महल का यह भाग ओरछा के किले में स्थापत्य कला का एक अनोखा उदाहरण है । इसके अन्दर कक्षों एवं वरामदों में ईरानी प्रभाव के आलेखन चित्रित हैं इन ओलेखनों के रंग चटकीले , रेखायें बारीक जो ईरानी कला की विशेषतायें हैं , अंकित की गई हैं । कला का रंगों के चयन और रेखाओं के अंकन में ईरानी कलम की समता प्रस्तुत करते हुये उसका वैभव पूर्ण स्वरुप प्रस्तुत करता है । वीरसिंहदेव ओरछा के ऐसे कलाप्रिय शासक थे जिन्हो ने राजनैतिक दाव-पेंच के द्वारा जहांगीर से दोस्ती बढाकर एक मित्रता का भाव प्रस्तुत कर दिया था , यह उसी की देन है जिसमें तत्कालीन समन्वयता व मित्रता झलकती है । दरवाजे जिनपर सुराहियां , हंस जालीदार आलेखन अपने में एक उदाहरण हैं[2] ।

1= रामचरण हयारण मित्र "द्वितीय उन्मेश" पृष्ट 267-309

2= ए० क० कुमार स्वामी "ट्रान्फार्मेशन ओफ नेचर इन आर्ट" पृष्ट 46,47

त्रिकोण , त्रिभुज ,चतुर्भज , षठभुजाकार एवं अष्ठाकार आकारों में बने ये आलेखन अलंकारिकता स्वरुप विशिष्ट रुप से प्रस्तुत करने में सहा यक सिद्ध होते हैं । कभी - कभी तो यह भ्रम होता है कि इन आलेखनों की रचना मुगल कलाकारों द्वारा की गई होगी पर इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं प्राप्त होता है[1] ।

बुन्देलखण्डी चित्रकारों ने अन्य चित्रकारी की प्रतिष्ठानों में जहां भित्ति चित्र उपलब्ध हैं उनमें लगभग ऐसा ही चित्रण प्रस्तुत किया गया है कि तथा उनमें से कुशल चित्रकारों ने इसकी रचना की होगी[2] । गहरी पृष्टभूमि के अन्दर महीन रेखाओं और चटकीले रंगो से इसका चित्रण दर्शक को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है । अब सभी आलेखन प्राय: नष्ट से हो रहे हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि मुगल प्रभाव से मंडित मानव आकृतियो का चित्रणाइनमें हुआ होगा क्यों कि कुछ चित्रों (चित्र सं0 14,15,16) को छोडकर अधिकतर चित्र व उनके भाग पुताई हेा जाने के कारण नष्ट हो गये है । फल-फूलों के पौधे और वृक्ष पशु-पक्षियों के साथ-साथ ही अलंकारिक रुपों में चित्रित किये गये हैं जो शैली में अन्य मुगल इमारतों की चित्रकारी की भाँति ही हैं । हिन्दू और मुश्लिम मित्रता एवं एकता का प्रतीक इस महल का तत्कालीन वैभव अनो-खा रहा होगा इसीलिये इसको इतनी ख्याति मिली[3] ।

(व) - ओरछा का राज महल , रानी महल व दरवार हाल :-

बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य के संरक्षक राजावीरसिंह देव ने राजमहल का निर्माण कराने के पश्चात उसको अलंकृत करने के लिये चित्रकारों का आवाहन किया । चित्रकारों ने अपनी तूलिका से राजप्रासाद की भित्ति पर अपनी भावनाओं को उडेलकर कला बीथिका में बदल दिखा ।

1- आर0 ए0 अग्रवाल "मारवाड म्यूरल्स" पृष्ट 15,16
परसीब्राउन "इण्डियन पेटिंग्स" पृष्ट 51
2- गोपीकृष्ण कनोडिया "कलानिधी" अंक-1 पृष्ट 38
3- मार्ग 1958 "राजस्थानी पेन्टिग्स" पृष्ट 53-59

इस महल के विभिन्न भागों जैसे राजमहल , रानीमहल , दरवारहाल में चित्रित चित्रों में (चित्र सं0 6 से 18) विभिन्न विषयों जैसे जलविहार , नारी कुंजर , दशावतार ,संगीत एवं राग-मालाओं के चित्र , राजदरवार , उत्सव , नृत्य , पशु-पक्षी एवं अलंकारिक आलेखनों से भित्तियों को अलंकृत करने का श्रेय तत्कालीन चित्रकारों को है । नारी कुंजर के चित्र (चित्र सं0 7) अनेक स्थानों पर अंकित है । ऐसा लगता है कि अन्य विषयों की अपेक्षा इसको प्रमुखता प्रदान की गई है । स्त्रियों के विभिन्न रुप एवं भाव -भंगिमाओं में हाथी का स्वरुप प्रस्तुत कर ऐसी बुन्देली परम्परा प्रस्तुत की है जो उनकी शान , प्रतिष्ठा और गौरव का प्रतीक कही जा सकती है । जल विहार के चित्रों (चित्र सं0 6) प्राकृतिक सौन्दर्य मानव आकृतियों के साथ अपना अलग से संगीतमय वातावरण प्रस्तुत करता है । हाथी-घोडा , सारस-तोते , हंस-बगुला और मोर प्रकृति के साथ-साथ यत्र-तत्र चित्रित किये गये हैं जिससे वहां की नैसर्गिक सौन्दर्यता की अनुभूति होती है[1] ।

ओरछा ऐतिहासिक क्षेत्र होने के साथ - साथ धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत तीर्थ स्थल भी माना जाता है इसलिये इन स्थलों पर देवी-देवताओं के चित्र , राम और कृष्ण की बालक्रीडाओं तथा उनके जीवन की प्रमुख लीलाओं व उनसे सम्बन्धित अनेक चित्र (चित्र सं0 4,5,9,12,13,15) बुन्देली चित्रकार की तूलिका से अछूते नहीं रहे हैं । प्रत्येक चित्र में पृथक पैनल बनाये गये हैं । युद्धों , आखेटों और व्यक्ति चित्रों में चित्रकार ने बुन्देली परम्परा को निभाया है जिसमें उनका पहनावा विशेषकर पगडी, जामा , पाजामा और फर्से की आकार की मूछें , लम्बा मधुकरशाही तिलक अपनी शैली में एक स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है[2] ।

1-स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 3-11-79

2- स्वर्गीय मुंशीराम अजमेरी "टीट्रेल मधुकरशाह"-ओरछा" पृष्ट 29,30

चौगान और पोलो खेलती स्त्रियां (चित्र सं0 6) बडी स्वाभाविक एवं मार्मिक बनी है । साधु-सन्त ,सती-सावित्री और महाभारत से सम्बन्धित विषयों की भी यहाँ उपेक्षा नहीं हुई है । इइस खण्ड मेंवीरता के प्रतीक प्रसिद्ध पहलवानों का चित्रण भी किया गया है जो कि सौर्य और शक्ति का प्रदर्शन करते , पेड उखाडते तथा कही-कही पर मल्लयुद्ध करते हुये इस विषय को अधिक रोचकता प्रदान की गई है । कृष्ण और राम की भक्ति परम्परा से प्रभावित कथानकों को अत्यधिक महत्व दिया गया है । रागमाला चित्रण व रीति चित्रण कला की कडी का एक अंग बन गया है । ओरछा के राजमहल के इन चित्रों को देखकर दर्शक आश्चर्य में पड जाते हैं । कुछ कला विद्वानों ने इन चित्रों को राजस्थानी एवं पहाडी शैली का आधार माना है[1] ।

आगे चलकर मेवाड,मारवाड ,ढूढार और हडौती क्षेत्र में विकसित होकर जयपुर , कोटा , बूंदी , बीकानेर , जोधपुर , नाथद्वारा , किशनगढ आदि शैलियों के भित्ति चित्रों में स्पष्ट छाप अंकित प्रतीत होती है । जहाँ तक पहाडी शैलियों का प्रश्न है उनमें भी कांगडा,वासोली और गढवाला शैली इसके अपवाद नहीं हैं । इसीलिये इस महल का भिति चित्रण भित्ति चित्र परम्परा में बुन्देली शैली के प्रमुख प्रतिष्ठान के रूप में अत्यधिक उत्कृष्ट माना जाता है[2] ।

दतिया के-भित्ति चित्र :-

झाँसी-ग्वालियर मार्ग पर स्थित दतिया का महत्व बुन्देलखण्ड क्षेत्र में भित्ति चित्रण प्रतिष्ठानके रूप में सर्वमान्य हैं यहाँ के भित्ति चित्रण को बुन्देलखण्ड चित्रशैली परिम्परा के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है ।

1- डा0 आर0 ए0 अग्रवाल "मारवाड म्यूरल्स " पृष्ट 75,76

2- राममित्र चतुर्वेदी " ओरछा" पृष्ट 69-72

यह बात अवश्य है कि ओरछा की भाँति यहां के चित्रकला के प्रतिष्ठान संख्या में तो कम हैं पर उनके अन्दर पाये जाने वाली चित्रकारी अधिक सुदृढ व सुन्दर है और जिन्हें ओरछा की तुलना में कुछ श्रेष्ठ स्तर का कहा जा सकता है यह प्रतिष्ठान निम्नलिखित हैं :-

(अ) - राजमहल दतिया :-

बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध एवं प्रतापी शासक वीरसिंह देव ने इस महल (चित्र सं0 21) का निर्माण कराया था जिनका कि नाम आज भी बुन्देलखण्ड के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है । इस महल में स्थापत्य कला का स्वरूप फतेहपुर सीकरी के पंचमहल से मेल खाता है (चित्र सं0 21) इसकी छटा देखने में मनमोहक लगती है[1] । यह नौ खण्डों में बना है इसकी रचना चौकोर स्वरूप में हुई है इसके प्रत्येक आलों में , छतो व खम्भों पर अलंकारिक आलेखन अपना अपूर्व वैभव प्रस्तुत करते हैं । कहीं-कहीं पर हाथियों का भी चित्रांकन किया गया है । आलेखनों में सुराही, गुलदस्ते एवं हंस जैसे पक्षियों का कलात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है जिससे मुगल शैली का आभस मिलता है[2] ।

आठवें खण्ड में बुरजों के अन्दर रागमाला का अंकन हुआ है जो कि संगीत और नृत्य के भव्य स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं । इसकी छतपर गोलाकार रूप में तलवार नृत्य और मयूर नृत्य पर आधारित आलेखन अंकित हैं जिसके अन्दर योद्धाओं की तलवारों से वीर एवं पराक्रमी स्वरूप की अभिव्यक्ति होती है । हरमन गोयेज ने बताया है कि उसमें इतनी लयात्मक और गतिमान रेखायें हैं जिनसे वातावरण मनमोहक हो जाता है ।

1- गजेटियर ओफ इण्डिया (मध्यप्रदेश) पृष्ट 34,35

2- वाचस्पति गैरोला "भारतीय चित्रकला" पृष्ट 185-187

उसके अन्दर इसकी पैनल वृत्ताकार में मस्त मयूर की भाँति है जिसकी खुली हुई चौच, फैले हुये पंख और गतिशील गर्दन , कलाकार की भावनाओं का सही मूल्यांकन है[1] । (चित्र सं0 24)

अन्दर जो वृत्ताकार आलेखन बने है वह भी अपने में इतने उत्कृष्ट हैं कि जिनको देखकर कलाकार को दाद देनी पडती है । इस छत के आलेखनों को देखकर कला का समन्वयात्मक रुप ऐसा परिलक्षित होता है जिनमें क्षेत्रीय प्रभाव के साथ- साथ कलात्मक गुणों का भी समावेश हैं[2] । इस महल में कलम की बारीकी इतनी अधिक हैं जिससे चित्रों में स्वच्छता, सोफियानापन , मुखाकृति का स्वच्छ स्वरुप वस्तुओं में वरीकी एवं अस्त्र-शस्त्रों की स्वभाविकता इतनी स्पष्ट हो जाती कि दर्शक को आश्चर्यचकित कर देती है ।

इस महल के मुख्य दरवाजे के महरावों औरदरवाजों की मोटाई व दीवार पर अंकित घोडों व घुडसवारों आदि के चित्र इतने प्रभावित करते हैं क्यों कि उनमें राजपूतानी शान एवं वैभव स्पष्ट दिखाई देता है । महरावों के बीच गणेश का अंकन हैं आलेखनों में कही-कही चीन का प्रतीक ड्रेगन भी अंकित है ।

इस महल की बुर्ज भी मुख्य द्वार की तुलना में कम महत्वपूर्ण नहीं है उनमे मालवा कृतियों की भरमार के साथ - साथ राग-रागनियोंके राग माला एवं रीतिकालीन श्रंगारिक विषय मुख्यत: चित्रित हुये हैं । भित्ति चित्रण में इस राजमहल की चित्रकारी दतिया के महत्व को बढाने में पूर्णरुप से सहयोगी है[3]।

(ब) - राजा भगवान राव का मकरवा :-

दतिया ठिकाने के वीर एवं प्रतापी शासकों का मकरवा दतिया शासकीय मरघट स्थल पर स्थित है ।

1- हरमन गोयेज "इण्डियन पेन्टिग्स"इन दी मुस्लेम पीरियड"पृष्ट।9-4।

2- गिरिराजकिशोर अग्रवाल " कला और कलम" पृष्ट 115

3- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 5-11-79

मकरवा शव्द मुकरवा , मकवरा का अपभ्रंश है जिसको लोग समाधि के नाम से भी पुकारते हैं परन्तु बुन्देलखण्ड के लोक भाषा में इसेमुकरवा शव्द से पुकारा जाता है । यह परम्परा भारत के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में ही नहीं वरन जय पर में अरमेर और जोधपुर के राजघरानों में पायी जाती है । मण्डौर और आमेर आदि स्थल इसके साक्षात उदाहरण हैं मण्डौर में बादशाहों के स्तर के अनुसरर देवलथडा और छतरियों का भव्य रूप मूर्तियों एवं स्थापत्य के नमूनों के साथ गौरवमय गाथा की पूर्ण कहा नी दर्शकों को आज भी सुनाता है । इसीप्र कार जयपुर में आमेर के पास यहां के शासकों का मरघट जिसमें उनकी प्रसिद्ध छतरियों बनी है, सर्वविख्यात हैं । अलवर में भी राजमहल के पास मूसी महारानी और अन्य राजा एवं दीवानों के समाधि स्थल है[1] ।

इस प्रकार के भवनों एवं समाज स्थलों के निर्माण में उनकी यह भावना थी कि स्मृति एवं यादगार के स्मारक के साथ- साथ स्थापत्य चित्रकला एवं मूर्तिकला के प्रति उनका स्नेह जनमानस को काल - काल तक अवलोकित होता रहे । इसी भावना से राजा भग्वान राम के मकरवे के कमरे के अन्दर चबूतरे पर दोछतरी बनी है जिसमें राम और कृष्ण की लीलायें ,संगीत , नृत्य एवं दरवारी चित्रण , देवी-देवताओं से सम्बन्धित विषयों पर चित्रण हुआ है इन चित्रों में मुगल राजस्थानी और पहाडी शैली का किसी न किसी अंश में मिश्रण है । यह चित्र बुन्देल खण्ड के परिष्कृत एवं पुष्टशैली के द्योतक हैं । युद्ध और शिकार के चित्रों में सैनिकों की वेश-भूषा , अस्त्र-शास्त्रों एवं घोडे-हाथियों का सजीव चित्रण तत्कालीन चित्रशैली का सबल उदाहरण है । इन चित्रों में चित्र-कार ने अपपिण अपनी तूलिका से वारीक रेखायें,स्थानीय चटकीले रंग और सम्पूर्ण चित्र के संयोजन को बडी कार्यकुशलता के साथ दीवारों पर उतारा है ।

1- विंसेट स्मिथ "द आर्ट ओफइण्डिया एण्ड सीलोन" पृष्ट 245

समाधि छतरी के चारो ओर कुछ लोक कला के नमूने जिनमें रामायण , महाभारत एवं लोक कथानकों से सम्बन्धित विषय भी चित्रकार की तूलिका से अछूते नहीं बचे हैं हालांकि यह चित्र अधिक पुराने नहीं हैं इनमें प्रत्येक पेड पर पेड का नाम एवं रामायण की चौपाइयां चित्रों के विषयानुकूल लिख दी गई हैं । इनमें रेखायें मोटी व लोकचित्रकारों की खिची हुई उनके साधारण अभ्यास की द्योतक हैं । चित्रों में रंगों का प्रयोग सीधा देखा जा सकता है । समस्त चित्रों में वाह्य रेखायें काले रंग से बनाई गई हैं आज तक इन चितेरों के नाम ज्ञात न होने के कारण उनकी प्रामाणिकता सामने लाने में कठिनाई प्रतीत होती है । लोक मान्यताओं ,परम्पराओं एवं कहावतों के आधार पर ये बुन्देली लोक कला के अद्भुत नमूने हैं इस मकरवे की छतरी के अन्दर के चित्र बुन्देली चित्रकला में सास्त्रीय स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं । बाहरी बरामदों में बने चित्रों में दोनोंकला पक्षों को देखा जा सकता है[1] ।

§ स § - राजा पारीक्षत का मकरवा :-

राजा भगवानराव की समाधि स्थल के पास ही राजा पारीक्षत का मकरवा स्थित है इस मकरवे में भी राजा भगवानराव के मकरवे की भाँति दरवारी , शिकार , युद्ध , तथा धार्मिक एवं पौराणिक विषयों से सम्बन्धित चित्र §चित्र सं० 28 से 30 § अंकित हुये हैं। देवी-देवताओं के चित्रण में चित्रकार ने अपनी तूलिका से सराहनीय कार्य किया है । एक चित्र से दूसरे चित्र को प्रथक करने के लिये आलेखनों का प्रयोग किया गया है । जो कि चित्र के चौखटे §बार्डर§ का स्वरुप कहा जा सकता है । इसप्रकार इन चित्रों की शोभा इतनी अधिक हो गई है कि इन्हें चित्रकला के अद्भुत नमूने कहा जा सकता है ।

1- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 5-11-79

समाधि छतरी के चारो ओर लोक कला के अद्भुत नमूने बरामदों में बने हुये हैं । जिनमें तीज-त्योहारों , पर्वों एवं उत्सवों , रामव कृष्ण लीला , रामायण एवं महाभारत आदि से सम्बन्धित चित्रों की रचना ह हुई है । इन चित्रों से वहां की लोक कला का स्वरूप उभरकर सामने आया है । चित्रकार ने पशु-पक्षी जैसे - सारस,मोर,तोता ,हाथी,गाय पर्वत , वृक्ष आदि को चित्रों के साथ कथानक को एक भाग बनादिया है जिनमें जगह - जगह विषय से सम्बन्धित चौपाइयां ,पशु-पक्षियों तथा पेड पौधों के नाम लिख दिये हैं[1] । जो चित्रकार के उतावेलपन और सदगी के प्रतीक कहे जा सकते हैं । हो सकता है कि यह कार्य चित्रकारों से अलग अन्य मनुष्यों द्वारा किया गया हो । रंग भी अधिक चमकीले व स्थानीय हैं । इन चित्रों में रेखायें काले रंग से अंकित की गई है जो देखने में कुछ मोटी ल गती हैं । यह चित्र भी देखने में अधिक पुरान प्रती त नहीं होते हैं[2] ।

§ द § - राजा भवानीसींह का मकरवा :-

यह मकरवा भी उपरोक्त दोनो मकरवों के पास बना है इसकी छतरी के नीचे समाधि के रूप में एक बडा चबूतरा बना हुआ है । इसके अन्दर भी चारो ओर चित्रों की भरमार है जिसमें पौराणिक , धार्मिक , दरवारी,युद्ध,देवी देवताओं सम्बन्धी विषय अंकित हैं । शेष और बरामदों में लोकशैली के चित्र चारों ओर बनाये गये हैं । इनमें रेखायें मोटी हैं । मिट्टी के रंग एवं स्थानीय रंगों के माधयम से चित्रकारी होने के कारण इन्हें भी लोक कला की श्रेणी में रखा जा सकता है[3] ।

1= स्वयं सर्वेक्षण दिनांक 5-11-79

2= त्रिपथगा "चित्रकला विशेषांक" पृष्ट 36-38

3= स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 6-11-79

§ य § - गोविन्दसिंह का मकरवा :-

अन्य मकरवों के निकट स्थित इस मकरवे में चित्र तो नहीं है पर खम्भों एवं महरावों पर कुछ आलेखन अवश्य चित्रत हैं । इनमें अन्य मकरवों की भाँति चित्रकला का स्पष्ट स्वरुप प्रतीत नहीं होता जिससे इसे अधिक महत्व की श्रेणी में रखा जा सके[1] ।

§ र § - दतिया का किला :-

स्थापत्य कला के गौरव के प्रतीक दतिया का किला आज भी अपने अंचल में यहां की वीरता को छिपाये खडा है जो आज भी इसके अतीत की कहानी का द्योतक है । इस भव्य किले में चित्रकारी क नमूने लगभग नष्ट प्राय: से हो गये हैं । उसका कुछ भी स्वरुप देखने को नहीं मिलता है । कहीं - कहीं पर चित्रों के अवशेष यहा की चित्रशैली के उदाहरण के रुप में देखने को मिलते हैं । इस किले की खिडकियों, झरोखों और आलों में सुन्दर आलेखनों का आभास होता है पर वह भी विशेष स्पष्ट नहीं हैं । इन आलेखनों में सुराही , पशु-पक्षी एवं ज्योमितीय जाली को कटाव व धुमावदार रेखाओं के द्वारा प्रस्तुत किया गया है । यहां की सुरक्षा और रख-रखाव के कारण ये उपलब्ध चित्र भी दिन-प्रतिदिन नष्ट होते जा रहे हैं।

दतिया में स्थित उपरोक्त सभी भित्ति चित्रण के प्रतिष्ठान महत्वपूर्ण हैं उनमें यहां की शैली का उद्भव व विकास एवं उत्कर्ष देखने को मिलता है । यह बुन्देले शासकों की सांस्कृतिक गौरव एवं मान्यता-ओं को सबल बनाने में सहायक सिद्ध होता है । यहां की चित्रकला का यह ऐसा भाव सामने प्रस्तुत करते हैं जिससे उसकी विशेषतायें व महत्व सामने आ जाता है[2] ।

।ब 2- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 6-।।-79

झांसी :-

वीरता , साहस एवं शौर्य का प्रतीक स्वतन्त्रता संग्राम की अमर सैनानी महारानी लक्ष्मीवाई का यश कौन नहीं जानता। झांसी नगर के अंचल में आज भी उसकी गाथायें जनमानस के हृदय पर अंकित हैं । ऐसे ही ऐतिहासिक नगर झांसी के अन्दर न जाने कितनी चित्र बीथिकायें यहां के साहित्य,संस्कृत एवं लोकजीवन की यादगार के रूप में आज भी विद्यमान हैं । यहां के कुछ प्रमुख प्र तिष्ठान निम्नलिखित हैं:-

§ अ § - बाबूराम की बगिया में समाधि :-

राजकीय संग्रहालय के निकट बाबूराम की बगिया में स्थित खण्डहर के रूप में पडी समाधि अर्द्ध विक्षिप्त से पत्थरों पर उकेरे गये चित्र अपनी मूक भाषा में दर्शकों के मन को प्रभावित करते हैं । सुरक्षा की व्यवस्था न होने से ये चित्र लगभग नष्ट हो रहे हैं[1] ।

§ ब § - गंगाधर की समाधि :-

राव गंगाधर की समाधि पर तोडियों अन्दर लोक जीवन से सम्बन्धित चित्रों के साथ - साथ लक्ष्मी-ताल की ओर बना हुआ ऐक चित्र बुन्देलखण्ड चित्र शैली का उदाहरण कहा जा सकता है । चित्रकार ने चित्र तो आकार में छोटा बनाया पर उसकी रेखायें बारीक तथा हल्के बादामी एवं लाल-हरे रंगों से चित्र को सजीवता प्रदान की है[2] ।

। व 2- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 27-12-82

§ स § - सिद्धेश्वर का बगीचा व मंदिर :-

इस बगीचे के मध्य स्थित मंदिर की तोडियों में राम और कृष्ण लीलाओं के चित्र ,घुडसवार के चित्र,धार्मिक एवं पौराणिक चित्र रेखाओं में बारीकी ,रंगों में चटकीला पन लिये हुये तथा आकार में छोटे होते हुये भी बुन्देलखण्ड की चित्रशैली में अपना योगदान प्रस्तुत करते हैं[1] ।

§ द § - रानी महल झांसी :-

रानीमहल की दूसरी मंजिल के कमरों एवं बरामदों की दीवारों पर अलंकारिक आलेखन जिसमें हिरन तोता ,कबूतर , मोर आदि पक्षियों के साथ गमलों के रुप में वृक्षों का चित्रण बडा ही मनाहारी प्रतीत होता है । एक छोटे से कक्ष में अलंकारिक आलेखनों के मध्य मानव आकृतियों एवं घुडसवारों का चित्रण § चित्र सं0 31 § है रंगो में चटकीलापन लाल,हरे,नील,पीले रंगों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में तथा आलेखनों को उभारने के लिये सफेदरंग का भी प्रयोग किया गया है । यह आलेखन महरावों ,दीवारों , दरवाजों की तीन ओर तथा आलों को अलंकृत करने के दृष्टिकोण से चित्रित किये गये हैं ।

यह महल प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई से सम्बन्धित है । यह महल अठारहवीं शताब्दी के अंत मे निर्मित कराया गया था । महल के अन्त: एवं वाह्य दीवारों पर विभिन्न रंगों से चित्रित पत्र , पुष्पों तथा गुलदस्तों के दोनेा ओर मयूर , अन्य पक्षी , कृष्ण , मृग आदि के चित्रण नैनाभिराम हैं । यह चित्र बुन्देलखण्ड चित्रशैली के अन्तिम चरण के द्योतक हैं[2] ।

।व 2- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 26 एवं 27 दिसम्बर 82

§ य § - राजमन्दिर समथर :-

समथर के राजमंदिर जिसका निर्माण राजा श्री चतुर्भुजसिंहजूदेव ने कराया था , के अन्दर मंदिक के चारो ओर परकोटे की छत में कृष्णलीला , ब्रह्मा , ग्रज-ग्राह, महदेव-विष्णु, रामदरवार एवं रामायण के कुछ विषय चित्र एवं लक्ष्मीचौक में राजदरवार , घोडे , हाथी , रथ , ऋषि मुनियों एवं शिकार आदि §चित्र सं० 37 से 40 § के चित्रण हैं रंग चटकीले नीले, पीले, लाल रंगों का प्रयोग अधिक एवं रेखायें लयात्मक व सजीव प्रतीत होती हैं ये चित्र भी लगभग 200 वर्षे पुराने बताये जाते हैं[1] ।

§ र § - अमरागढ किला :-

दतिया के महाराज ने श्री-विशनदेव जी को यह किला उपहार स्वरूप दिया था यहाँ के किले में राजदरवार के चौक की दीवारों पर कुछ अलंकारिक पैनल्स तथा दक्षिण की दीवार पर कुछ चित्रकारी जिसमें मानव चित्रण भी है देखने को मिलते हैं हालांकि मानव चित्र अब नष्ट प्राय: से हो गये हैं[2] ।

§ ल § - राजमन्दिर अमरागढ :-

मंदिर के चौक की तोडियों में चारो ओर अलंकरण है तथा मंदिर गर्भग्रह के सामने के भाग में राधाकृष्ण रासलीला एवं चौक की तोडियों में चित्रण है §चित्र सं० 51 से 54 § मंदिर की ड्योढी में भी चित्र थे जो अब पुत गये हैं । चित्रों में नीले एवं स्लेटी तथा कत्थई रंग का प्रयोग अधिक किया गया है[3] ।

---

1 से 3 - स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 1-1-83 से 3-1-83 तक

§ व § - महाराजा विशनदेव सिंह का मकरवा अमरागढ :-

इस मकरवे का निर्माण श्री चतुर्सिह जूदेव ने महाराज वीरसिंहजूदेव की स्मृति में करवाया था । इसमें राम और कृष्ण की लीलाओं के अतिरिक्त राज-दरवार के शाही एवं शिकार आदि के चित्र §चित्र सं० 55 § चित्रित किये गये हैं[1] ।

§श § - टहरौली किला :-

झांसी जिले में स्थित बुन्देलखण्ड की अठकणियों में टहरौली के राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा बनवाये गये इस किले में दउआजू के डेरे में रामायण एवं धार्मिक विषयों पर आधारित चित्र § चित्र सं० 41 § अंकित है । रंग योजना गहरी जिसमें काला,पीला एवं कत्थई रंग का प्रयोग अधिक है[2] ।

§ क § - ठाकुर रामकुमार जी विराजमान मंदिर टहरौली :-

टहरौली में स्थित इस मंदिर में मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही चित्रों की भरमार एक अच्छी कला बीथिका का आभास कराती है । इसमें राम दरवार ,कृष्ण लीलायें , चौपड , हाथी-शेर आक्रमण एवं रामायण के कुछ विषयों पर चित्र आदि §चित्र सं० 42 से 45 § चित्रित किये गये हैं । ये चित्र मंदिर की चौक की तोडियों में , दरवाजों के ऊपर तथा गर्भ ग्रह के सामने वाले कक्ष में चित्रित हैं । चौक की कुछ दीवारों पर लाल पृष्टभूमि पर रेखाओं को उकेर कर भी चित्र बनाये गये हैं । अन्य चित्रों में लाल , काला ,नीला सफेद एवं पीले रंग का प्रयोग तथा रेखायें अधिक वारीक तो नहीं फिर भी उनमें गति और लय का पूर्ण आभास मिलता है[3] ।

---

1 से 3 - स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 1-1-83 से 3-1-83 तक

§ ख § - राम मन्दिर - गणेश गढ किला गुरसराय :-

स्वर्गीय गोविन्द राम जी खेर भू० पू० स्पीकर के पूर्वजों द्वारा निर्मित इस किले में गणेश जी का एवं राम का मंदिर स्थित हैं । गणेश जी का मंदिर अब पूर्णतय: नष्ट हो गया है केवल राम मंदिर के कुछ भाग में चित्र दर्शकों के लिये शेष रह गये हैं हालांकि इस मंदिर गर्भ ग्रह भी पूर्णतय: नष्ट हो चुका है । गर्भ ग्रह के सामने वाले बरामदे में रामायण , धार्मिक एवं देवी-देवताओं के चित्र अंकित हैं § चित्र सं० 46 से 50 § चित्र धूमिल पड गये हैं । रंग योजना गहरी होने के उपरान्त भी धुयें आदि के कारण अस्पष्ट प्रतीत होती है वैसे स्लेटी , कत्थई,पीले एवं काले रंग का प्रयोग अधिक किया गया है । कहीं - कहीं अल्प मात्रा में लाल रंग का प्रयोग भी किया गया है । चित्रों को एक साथ बना दिया है एक चित्र सेदूसरे चित्र को प्रथक करने के लिये कोई बार्डर या अलंकारिक आलेखन आदि नहीं बनाये गये हैं[1] ।

§ ग § - मन्दिर टैाडी फतेहपुर :-

गुसाइयों का यह किला जिसे बाद में बुन्देले शासक हिन्दसिंह ने प्राप्त कर लिये था इसी किले के किनारे भाग में §चित्र सं० 56 § दीवान हरप्रसाद ने मंदिर का निर्माण कराया जो स्थापत्य कला के साथचित्रकला की संस्कृति को अपने पूर्ण वैभव के रूप में प्रस्तुत करता है । मंदिर तीन खण्डों में बनाहै । नीचे के मंदिर के गर्भग्रह एवं उसके चारो ओर के बरामदों में कोई चित्र नहीं हैं जब कि स मंदिर के बाहरी भाग एवं मुख्य द्वार के बाई ओर की दीवार की तोडियों पर चित्रण है[2] ।

---

1 व 2 - स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 1-1-83 से 3-1-83 तक

मंदिर की बीच की मंजिल एवं सबसे ऊपरी मंजिल पर बुन्देलखण्ड बिशेली के राम और कृष्ण की लीलाओं , रामायण के चित्र , देवी-देवताओं के चित्र , राम दरवार , राज दरबार , सेना , ऋषि-मुनियों एवं नायक-नायिकाओं आदि (चित्र सं0 57 से 63) के चित्र बने हैं । इनकी रंग योजना चटकीली लाल,नील,पील, रंगों पर आधारित है । रेखायें वडरी क व गतिशील हैं ।

(घ) - विजना :-

विजना का किलाजिसका निर्माण राजा सामन्तसिंह ने कराया था चित्रकला के कु छ नमूने इसके अंचल में प्राप्त हो-ते हैं किले के अन्दर स्थित मंदिर के कुछ भाग में रथ यात्रा , शंकर बारात एवं हाथियों आदि का चित्रण है । रंग स्लेटी , कत्थई व काले तथा कही- कहीं लालक हरे रंग का प्रयोग अल्प मात्रा में किया गया है । रेखा कन काले रंग से ही अधिक किया गया है । अधिकतर चित्र नष्ट हो चुके हैं। [चित्र से. 64 से 66]

टीकमगढ :-

टीकमगढ जनपद भी चित्रकला ,मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला का उत्कृष्ट क्षेत्र रहा है । इसके उदाहरण स्वरूप अनेक ऐतिहासिक किले , महल , मंदिर एवं मकरवे इसके अन्तस्थल में भरे पडे हैं। औरछा का वैभव पहले ही वर्णित किया जा चुका है । ओरछा केअतिरिक्त यहां के निम्नलिखित प्रतिष्ठान बुन्देली चित्रकला के अच्छे केन्द्र हैं । ये प्रतिष्ठान निम्नलिखित हैं :-

---

।- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 3-1-83

§ अ § - भगवन्त क्लब टीकमगढ :-

वीरसिंह देव के पिता का नाम भगवन्तसिंह था । उन्ही के नाम पर इस भवन का नाम भगवन्त क्लब पडा । इसके मुख्य द्वार के दोनो ओर की ड्योढियोके एवं फाटक के पीछे वाले कमरों की छत पर मानव चित्रण जिमें अधिकतर कृष्ण लीलाओं के साथ अलंकारिक आलेखनों का चित्रण किया गया है §चित्र सं0 35 § चित्रकार ने अपनी भावनाओं का प्रस्तुतीकरण करने के लिये रेखाओं को तोड-मरोड कर रख दिया है जिससे उनमें अलंकारिकता एवं सजीवता आ गई हैं । रंग गहरे कत्थई ,लाल,नील, एवं पीले हैं । चित्र आकार में छोटे एवं विषयवस्तु में पूर्ण है[1] ।

§ ब § - हमीरसिंह देव एवं राजा धर्मपालसिंहदेव का मकरवा :-

यह दोनो मकरवे पास-पास ही बने हैं तथा दोनों स्थानों में चित्रकारी के उदाहरण देखने को मिलते हैं । इन मकरवों में शिशुमंदिर विद्यालय चल रहा है । दूसरे मकरवे के पास वैष्णव मंदिर है । दोनो मकरवों में ही रामलीला विषय सम्बन्धित चित्र , महिलाओं के श्रंगार करते चित्र एवं शिकार आदि के चित्र § चित्र सं0 36 § चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने माने जाते हैं । रंग योजना चटक , रेखाओं में वारीकी तथा चित्र कार ने विषयवस्तु से पूर्ण चित्रों में सजीवता लाने का पूर्ण प्रयास किया है[2] इसी प्रकार मोहनगढ के किले में स्कूल चल रहा है उसके कार्यालय कक्ष में कुछ चित्र कृष्ण लीला से सम्बन्धित अब भी देखने को प्राप्त होते हैं[3] ।

---

1 से 3 - स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 27-12-82 से 29-12-82 तक

ललितपुर :—

(अ) - किला बानपुर :-

यह किला बुन्देले राजा मर्दनसिंह द्वारा बनवाया गया था । इस किले के चौक के आंगन में चारो ओर तोता , मुर्गा एवं फूल-पत्तियों पर आधारित अलंकारिक आलेखन तथा आंगन के चारो ओर कमरों के आलों में चित्र थे जा अब नष्ट हो गये हैं केवल एक दीवारि पर आलेखन देखने को मिलते हैं जो लाल रंग की पृष्ट-भूमि पर रेखांकन के द्वाराउकेरे गये हैं । किले केपूर्वी खण्डहर वाली दीवा र पर तोते वाले पैटर्न तथा सैनिकों व जानवरों के चित्र थे जो अब धूमिल पड चुके हैं । किलेके एक सिरे पर बने बुर्ज पर गतिशील हाथियों का चि-त्रण वास्तव में चित्रकार की भावना को सजीवता प्रदान करता है । रंग योजना साधारण तथा रेखाओं में गम्भीरता झलकती है[1]।

(ब) - मदनपुर छोटी व बडी कचहरी :-

मदनपुर कस्बे से लगभग एक फर्लांग दूर पुराने समय के दो मंदिर जो शैली की दृष्टि से पूर्व मध्य कालीन प्रतीत होते हैं । इसको बुन्देलखण्ड में लोग आल्हा-उदल की बैठक भी कहते हैं । तथा पुरातत्व विभाग झांसी के विवरण में शिवमंदिर के नाम से अंकित है । मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला की दृष्टि से प्रमुख तो है ही परन्तु इसकी छत पर बने आलेखन जिसमें मोर ,कमल का चित्रण है तथा जिसके दोनो ओर मानव चित्रण भी अवलोकित होते हैं चित्र देखने में विशेष स्पष्ट नहीं हैं पर रेखाओं मे रंग तथा चेहरों की बनावट से यह चित्र जैन शैली से प्रभावित है[2] ।

---

1 व 2 - स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 27-12-82 से 29 - 12 - 82 तक सर्वेक्षण यात्रा के दौरान डा० आर० ए० अग्रवाल मेरठ साथ थे।

ललितपुर :--

==========

उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र के ललितपुर जनपद में भी कुछ स्थानों पर कला का प्रतिष्ठान कुछ स्थानों पर पाये जाते हैं जिनका कि इस शैली में अच्छा योगदान है । इसी जनपद के देवगढ में मूर्ति एवं स्थापत्य कला का अपार भण्डार भरा पडा है । चित्रकला की दृष्टि से तालवेहट का किला व नर्सिह मंदिर अपना महत्व रखते हैं ।

(क) - किला ताल वेहट :-

राजा मर्दन सिंह के पूर्वजों द्वारा निर्मित इस किले की ऊपर मंजिल के मानिक चौक के पूर्वी सिरे पर दो चित्र धार्मिक देवी-देवताओं के (चित्र सं0 32) हैं राक्षसों के युद्ध का भी चित्रण है किले के मुख्य द्वार को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि किले का निर्माण अधूरा रह गया शायद पूर्ण होने पर चित्रकला को और अधिक स्थान मिलता[1] ।

(ख) - नरसिंह मंदिर तालवेहट :-

किले के बाहरी भाग में स्थित इस मंदिर के प्रवेश कक्ष , हाल , तथा गर्भ ग्रह के दोनेा ओर बाहरी दीवारों में राम-कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित चित्र सूर्य और चन्द्र के रथ का चित्र , विजय यात्रा एवं नायक - नायिकाओं आदि का चित्रण (चित्र सं0 33, 34) हरे , लाल , नीले , पीले रंगो पर आधारित है । रेखाओं में बारीकी व गम्भीरता तथा भावों में विषय वस्तु की पूर्णता प्रदर्शित करने का चित्रकार ने पूर्ण प्रयास किया है[2] ।

---

1 व 2 - स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 28-12-82

धुवेला :-

चित्रकला , मूर्ति एवं स्थापत्यकला की दृष्टि से धुवेला एक महत्वपूर्ण स्थान है यहां पर पुरातत्व विभाग का एक संग्रहालय भी है जहां कि इस क्षेत्र के अपूर्व संग्रह दर्शकों का मन मोह लेते हैं । चित्रकला की दृष्टि से निम्नलिखित दो स्थानों पर बुन्देलखण्डी चित्र देखने को मिलते हैं ।

(अ) - छत्रसाल की समाधि धुवेला :-

राजा छत्रसाल की समाधि (मकरवा) केवल स्थापत्य कला (चित्र सं0 67) का ही उत्कृष्ट नमूना नहीं वरन चित्र कला में भी अपना स्थान रखता है । मानव आकृतियों के साथ - साथ पशु-पक्षियों का सजीव चित्रण (चित्र सं0 68,69) रेखाओं में बारीकी तथा रंग योजना सामान्य होते हुये भी दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं[1]।

(ब) - रानी कमला पत की सुरई :-

रानी कमलापत की सुरई में (चित्र सं0 70,71) हाथी-घोडो पर सवार योद्धओं के अतिरिक्त अलंकारिक आलेखन जिसमें पक्षियों का चित्रण (चित्र सं0 72,73) स्वतन्त्र रुप से किया गया है । रंग सपाट तथा रेखाओं को आकृति से उभार कर बुन्देलखण्ड कीचित्रशैली में एक अनोखा योगदान प्रस्तुत किया है स्थापत्य कला की दृष्टि से दोनेा भवन उत्कृष्ट हैं[2]।

---

1 व 2 - स्वयं सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 6-1-83

अपने सर्वेक्षण यात्राओं के द्वारा यथा सम्भव उन सभी स्थानों का भ्रमण एवं अवलोकन किया है जहाँ कि चित्र शैली के उत्कृष्ट प्रतीक चिन्ह उपलब्ध हैं । सर्वेक्षण के समय कुछ स्थान ऐसे भी मिले जो स्थापत्य एवं मूर्तिकला में सर्वविख्यात है और उनका भी योगदान बुन्देलखण्ड की ललित कलाओं के विकास में पूर्ण रूप से व्याप्तहोकर इस क्षेत्र को गौरव प्रदान करते हैं ।

बुन्देलखण्ड

चित्रकला की विशेषतायें :-

==========

बुन्देलखण्ड की वीरभूमि जिसने अनेक सूरवीरों को जन्म देकर भारत में एक पूज्य एवं वन्दनीय स्थान प्राप्त किया है , यहाँ की पवित्र भूमि पर राम जैसे चक्रवर्ती राजा ने अपने वनवास अवधि के कुछ वर्ष व्यतीत किये थे । यह वन्दनीय भूमि ही द्रोडाचार्य , वाल्मीक तथा व्यास जैसे ऋषियों की जन्म-भूमि रही है । गोस्वामी तुलसीदास , केशव और देव जैसे कवियों ने अपनी काव्य लहरी से इसी क्षेत्र के जनमानस को आनदित कर हिन्दी साहित्य में प्रमुख स्थान पाया है ।

यहीं की रण भूमि पर वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई एवं वीर सैनानी छत्रसाल जैसे देश , राष्ट्र एवं स्वतन्त्रता प्रेमी वीरों की कर्मभूमि रही है , जिन्होंने अपनी रणनीति एवं युद्ध कौशल से विरोधियों को नाकों चने चबवा दिये ।

प्राकृतिक वातावरण से परिपूण बुन्देलखण्ड भूमि जहां राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन में अपना विशेष महत्व रखती है वहीं खजुराहो , देवगढ व जरिया की देवी का मंदिर मूर्तिकला एवं वास्तुकला के क्षेत्र में बुन्देलखण्ड के लिये गौरव के प्रतीक हैं[1] ।

इस क्षेत्र ने मूर्ति कला के साथ - साथ चित्रकला के क्षेत्र में भी एक नई चेतना , एक नई दिशा और एक नई शैली को जन्म दिया है । यह यहाँ की अपनी एक विशेषता एवं उसकी स्वयं एक कल्पना थी , और चित्रकला की इस नयी शाखा को ही बुन्देलखण्ड चित्रशैली का नाम-करण किया गया ।

1- डा0 आर 0 ए0 अग्रवाल "कला और विलास" पृष्ट 82,83

वाचस्पति गैरोला "भारतीय चित्रकला " पृष्ट 181 - 185

बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत यहाँ की कुछ प्रमुख रियासतें जैसे -झांसी, टीकमगढ , ओरछा , दतिया , छतरपुर , ललितपुर आदि स्थानों में अपने पूर्ण वैभव के साथ राजनैतिक स्तर के अतिरिक्त चित्रकला को भी प्रमख स्थान दिया गया । यहाँ पर सत्रहवी एवं अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आधुनिक काल तक की चित्रकला में अपनी विशेष परम्परा को निभाया है । इसके लिये यहाँ के चित्रकार सर्वदा प्रशंसनीय रहेंगे[1] ।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में दतिया के राजा शत्रुजीतसिंह (1762 से 1801 ई0) कला प्रेमी शासक हुये । इनके समय में चित्रकला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी । इनके कुशल संरक्षण में मतिराम के "रसराज" और विहारी सत्सई एवं रागमालाओं के चित्र बने , इसके अलावा अनेक धार्मिक चित्र (चित्र सं0 23,28,30) भित्ति चित्र तथा उनके पारिवारिक चित्र बने । यह शैली समन्वयात्मक है[2] । इसका सम्बन्ध श्री एन0 सी0 मेहता के मतानुसार राजस्थानी है । आलेखनों में रंग विधान साधारण , रेखाओं में गतिहीनता एवं भावव्यंजनाओं का अभाव था । वस्त्रों को पारदर्शी बनाया गया है । स्त्रियों के मुखों पर अवश्य ही सुन्दर भाव मिलते हैं । कहीं - कहीं चित्रकार ने तत्कालीन स्त्रियों की सामाजिक दशा पर प्रभाव डालने केलिये केश-विन्यास में जूडा बांधने की परम्परा दर्शाई है । स्त्री के पहनावे में उनके घाघरे राजस्थानी शैली के प्रतीक हैं[3] ।

पुरुषों की गलमुच्छों चित्रण से ठकुरइसी का प्रतिबिम्ब दिखाई देता ह । सिर के ऊपर बंधी पगडी तत्कालीन पुरुषों की बांधी गई बुन्देली पगडी का सही और जागता रूप है । पुरुषेा की सजीवता व स्वाभाविकता के चित्रांकन में चित्रकार अधिक सफल नहीं रहे हैं ।

1- राममित्र चतुर्वेदी "ओरछा" पृष्ट 69,70

2- वाचस्पति गैरोला " भारतीय चित्रकला" पृष्ट 228

3- मार्ग लीव्ज फ्राम राजस्थान खण्ड 9 (1950) पृष्ट 49

पृष्टभूमि में भी कोई अधिक अलंकरण व कोई आकर्षण नहीं है कहने का तात्पर्य यह है कि दतिया में उपलव्ध चित्र कांगडा एवं मुगल शैली के चित्रों से भिन्न बुन्देलखण्ड शैली के चित्र हैं ।

ओरछा के राजा वीरसिंह देव ने ओरछा, झांसी, तालवेहट किलों के साथ - साथ भारत का उस समय प्रसिद्ध मथुरा का केशवराव मंदिर (जो उस समय तैंतीस लाख रुपयों की लागत से बना था) जिसे बाद में औरंगजेव ने तोडकर उसे मस्जिद के रूप में परिवर्तित कर दिया था । आदि को बनवाकर वास्तुकला प्रियता का परिचय दिया था । इनके साथ-साथ अनेक चित्रों का निर्माण हुआ और रसिक प्रिया के आधार पर निर्मित चित्र तो लगभग अकबर कालीन मुगल शैली के अनुरुप हैं । इसका कारण वीरसिंहजूदेव एवं जहांगीर की मित्रता ही माना जा सकता है । इन चित्रों में (चित्र सं0 14,15,16) रेखाओं में गति रंगों के संयोजन के साथ - साथ भावों की अनुपम व्यंजनायें भी कहीं - कहीं अति उत्तम दिखाई पडती हैं । राजापृथ्वीसिंह के समय में किले के दरवारे आम में भी चारो ओर छत के ऊपर अनेक चित्रों का चित्रांकन किया गया , जो समय के प्रभाव से बहुत ही धूमिल एवं लगभग नष्ट से हो गये हैं । इनमें मोरेा पर आधारित अलंकृत आलेखन बडे ही सुन्दर बने हैं ।

महाराजा पृथ्वीसिंह के काल में लक्ष्मीजी के मन्दिर में 1752 ई 0 में भित्तियों पर वृहदाकार में धार्मिक चित्रण (चित्र सं0 4,5) अधिक मात्रा में हुआ है इनमें चीर हरण , रामरावण युद्ध , शेषशाई , विष्णु , गणेश पूजा आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । मंदिर के द्वार पर दोनेा ओर कत्थई पृष्ठभूमि पर स्वेत रेखाओं से अलंकृत चित्र बने हैं जिसमें केशविन्यास करती नायिका का चित्र कचत्रकला की दृष्टि से उत्तम है[1] ।

1- डा0 सत्यप्रकाश "राजस्थान की लघु चित्र शैलियां" पृष्ठ 16-21

ओरछा के दुर्ग के दक्षिण भाग में मधुकरशाह के महल के पश्चिमी किनारे के दो कक्षों में ; जहां आजकल मध्य प्रदेश शासन द्वारा प्रशिक्षण विद्यालय खुला हुआ है ; भित्तियों पर चित्र बडे ही आकर्षक हैं । इन में अधिकतर चित्र कृष्ण लीला से सम्बन्धित हैं; चित्र सं0 9 ; लक्ष्मीजी के मंदिर में महारानी लक्ष्मीबाई का युद्ध चित्र को देखकर ऐसा लगता है कि इस मंदिर की कुछ भित्तियों पर उन्नीसवीं शताब्दी में भी कुछ चित्रों को चित्रित किया गया है[1] ।

बुन्देलखण्ड शैली की विशेषतायें :-

==========

इस शैली में चटकीले रंगों के प्रयोग के साथ - साथ रेखाओं की बारीकी , गति एवं लय पर विशेष ध्यान दिया गया है । कहीं-कही पर चित्रकार ने मानव चित्रण पर शारीरिक अनुपात का ध्यान नहीं रखा है वरन् अपने विचारों को स्वतन्त्रता पूर्वक भित्तियों पर प्रस्तुत किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं-कहीं शारीरिक अनुपात के चित्रों में पिछडे हुये हैं अथवा कलाकार को शारीरिक संरचना का पूर्ण ज्ञान नहीं था । अधिकांशत: चेहरे एक-चक्षमी तथा कही-कही डेढचक्षमी चेहरों का चित्रण करके विषयवस्तु के अनुसार भाव प्रदर्शित करने का प्रयास किया है । धार्मिक विषयों से सम्बन्धत , सामाजिक रीति-रिवाजों से तथा कुछ क्षेत्रों में व्यक्ति चित्रों की प्रधानता रही है ।

जहां एक ओर चित्रकार ने उपरोक्त विषयों पर चित्रण किया है वही पर अलंकारिक आलेखनों पर अपनी तूलिका चलाकर विभिन्न पशु-पक्षियों एवं फूल-पत्तियों को बडी सजीवता एवं स्वाभाविकता के साथ प्रदर्शित किया है । आलेखनों के प्रदर्शन में बनाई गई इकाइयों में समानता व रंगों में एकरुपता है ।

1- अम्बिकाप्रसाद वर्मा "ओरछा की चित्रकारी" पृष्ट 68-73

धार्मिक विषयों पर चित्रण करते समय तत्कालीन चित्रकार ने राजपूत एवं मुगल चित्र परम्परा का सहारा लिया है यहां तक कि कही-कही उनमें अन्तर ज्ञात करना कठिन प्रतीत होता है । रामकृष्ण के जीवन से सम्बन्धित तथा अन्य प्रकार के धार्मिक विषयों पर आधारित चित्रों को चित्रित करते समयरेखाओं पर बडा बल दिया है[1] । ऐसा प्रतीत होता है कि मानव चित्रकार ने रेखाओं के माधयम से चित्रों में प्राण-प्रतिष्ठा की हो । इसशैली के चित्रों में प्रदर्शित समस्त पात्रों की भाव-भंगिमाओं एवं शारीरिक अनुपात में एक रूपता व सजीवता है ।

इन चित्रों में अग्रभूमि एवं पृष्टभूमि के प्रदर्शन में चित्रकार ने कही भी भूल नहीं की है । विषयवस्तु के अनुरूप बातावरण एवं समय व स्थिति का ध्यान रखते हुये चित्रकार ने चित्रों को उभारने के लिये अग्र एवं पृष्ट-भूमि का सही चित्रांकन किया है । पृष्टभूमि में भी कहीं - कही मुगल शैली का प्रभाव पूर्ण रूप से दिखाई दे रहा है[2] ।

बुन्देलखण्ड की विभिन्न रियासतों के किलों , महलों , मंदिरों एवं मकरवों आदि के अवलोकनसे जो दतिया , ओरछा,तालवेहट ,झांसी गुरसराय , धुवेला , टहरौली , टोडीफतेहपुर , विजना,अमरागढ, समथर एवं टीकमगढ आदि स्थानों पर स्थित हैं , से ऐसा प्रतीत होता है कि सभी स्थानों की विषयवस्तु धार्मिक , सामाजिक एवं शाही दरवारी रही है । राम और कृष्ण इनके प्रमुख उपास्य तथा उनकी लीलायें चित्रण विषय रहे हैं । वीरभूमि में धार्मिक विषयवस्तु यहां की संस्कृति को निखार देती हैं तथा धार्मिक चित्रों के माध्यम से चित्रकार ने धर्म के प्रति अपना अनुराग प्रदर्शित किया है । साही चित्रण के माध्यम से तत्कालीन राजसी वैभव , राजाओं के पहनावे , वस्त्र-आभूषण आदि का चित्रण बडा ही सफल रहा है ।

1- डा0 मोतीचन्द्र "मेवाड पेन्टिग्स ललितकला एकादमी सीरीज-1959" पृष्ट 60

2- कार्ल खण्डेलवाल "लीव्ज फ्राम राजस्थान-आकृति" पृष्ट 15-25

मधुकरशाही तिलक बुन्देलखण्ड के शौर्य , धर्म व संस्कृति की सुदृढ स्थिति का प्रतीक है जिसकी गाथायें आज भी बुन्देलखण्ड में सर्वत्र गाई जाती हैं । शिकार एवं युद्ध के चित्रण के माध्यम से तत्कालीन जंगली जानवरों का चित्रण , जंगलों का चित्रण , सैनिकों में वीरता एवं साहसी भाव का प्रदर्शन , गतिशील घोडों - हाथियों का चित्रण एवं हथियारों के चित्रण में चित्रकार ने समस्त स्थितियों का सही अध्ययन करके वास्वविकता लाने का पूर्ण प्रयास किया है और इससे बुन्देलखण्डी चित्रशैली में सौर्यखण्ड को स्थान व महत्व दिया है ।

रेखाओं एवं रंगों के माध्यम से भाव प्रदर्शन करने में बुन्देलखण्डी चित्रकार पूर्ण सफल रहा ह् भले ही उसे राजस्थानी , मुगल एवं पहाडीशैली का किसी न किसी रुप में और कहीन कही सहारा लेना पडा है । यहा के प्राचीन चित्र भित्तियों के अतिरिक्त फोटोग्राफ के रुप में विभिन्न संग्रहालयों में संग्रहीत हैं और जो बुन्देलखण्ड गौरान्वित करते हैं[1] ।

1- रायकृष्णदास "भारतीय चित्रकला " पृष्ट 5-19

बुन्देलखण्ड के भित्ति चित्रों का महत्व :
एवं प्रमुख चित्रकार :----------

---------- बुन्देलखण्ड क्षेत्र में स्थित समस्त दुर्ग , महल , भवन , मंदिर एवं मकरवे आदि बुन्देलखण्डी चित्रशैली के प्रमुख केन्द्र रहे हैं । तत्कालीन शासकों ने उपरोक्त भवनों का निर्माण कराने के साथ-साथ उनमें चित्रण कराकर उनको अनुपम व कलात्मक बनाने का प्रयास किया था ।

स्थापत्य कला के साथ चित्रकला के माध्यम से बुन्देलखण्ड के वैभव अमर धरोहर के रुप में संजोकर रखे गये हैं । यह इस क्षेत्र के लिये सौभाग्य एवं गौरव की बात है अन्यथा इस प्रकार की भावना के अभाव में न तो यहां चित्रांकन ही होता और न ही यहां के सांस्कृतिक जीवन की झांकी आदि मानव समाज के समक्ष स्पष्ट अवलोकित हो पाती ।

इन स्थलों की भित्तियों पर सामाजिक ,धार्मिक , पौराणिक राजनैतिक एवं लोक कथानकों के विषय इतनी अधिक संख्या में चित्रित किये गये हैं जिससे कि तात्कालीन,मध्ययुगीय , धार्मिक वैष्णव परम्परा और रीति कालीन साहित्य केआधार पर रीति चित्र चित्रकार की तूलिका के प्रमुख विषय रहे हैं ।

बुन्देलखण्ड के कुछ भवनों में आला-गीला प्रणाली व कुछ भवनों के अन्दर आयरस प्रणाली से चित्रों को अंकन हुआ हैं । आयरस प्रणाली के अधिकतर चित्रों का वैभव प्राय: लुप्त एवं नष्ट सा होता जा रहा है रंग और रेखाओं पर मौसम का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है जो चित्र महलों,मंदिरों,किलों एवं मकरवों की अन्दर भित्तियों पर बने हैं वे आला-गीला प्रणाली के आधार पर बने हैं । सुरक्षित होने के कारण उन पर उपरोक्त प्रभाव कम पडा है जिससे वे नष्ट होने से बचे हैं इसी वजह से इन चित्रों पर प्रभाव वैसा का वैसा ही है[1] ।

1- डा0 आर0 ए0 अग्रवाल " मारवाड म्यूरल्स" पृष्ट 15-16

चित्रकार :-

--------- यह आश्चर्य की बात है कि किसी भी प्रसिद्ध चित्रकार का नाम प्रमाणिक रुप से नही मालूम पडता है या तो उनमें भेदभावना व्याप्त थी या फिर अपने व्यक्तित्व को उजागर करने के स्थान पर धार्मिक भावना से प्रेरित होकर अपने को गौड रखकर साधना पक्ष के नाम पर उनको चित्रित किया । यही कारण है कि बन्देलखण्ड क्षेत्र में प्राप्त सभी भित्ति चित्र एवं प्रतिष्ठान अपने गौरवमय थाती को सुरक्षित रखे हुये हैं ।

बुन्देलखण्ड के अनेक प्राचीन स्थानों में जो चित्र मिलते हैं उनमें ओरछा के पन्नालाल और झांसी के सुखलाल काछी का नाम यदा-कदा कुछ वर्णनों में एवं कभी-कभी सुनने में मिलता है [1] । ओरछा के जहांगीर महल को देखकर ऐसा आभास होता है कि मुगलशासक के सम्मान में बनाये गये इस खण्ड को अलंकृत करने के लिये अवश्य ही देहली से कुछ कलाकार बुलाये गये होंगे क्यों कि उन चित्रों पर मुगलकलम का प्रभाव अवलोकित होता है ।

इसी प्र कार बुन्देलखण्डी कलाकारों में कालीचरन जिन्हें कि आधुनिक बुन्देखण्ड का कलाकार कहा जा सकता है का नाम प्रमुखरुप से मिलता है । बुन्देलखण्ड की पावन बसुन्धरा ने एक कुशल चित्रकार को जन्म दिया जिनका नाम मास्टर रुद्रनारायण था। कालीचरण इन्ही के प्रिय शिष्यों मे से थे ।

इसप्रकार बुन्देलखण्ड के समस्त चित्रकला के प्रतिष्ठानों का इतना महत्व है कि जिससे वहां की संस्कृति, साहित्य और कला का स्वरुप उन के माध्यम से सबके सामने आता है और जो कला मरमग्यों के लिये एक महत्व का विषय ही नही वरन कला जगत को एक महान दन भी है[2] ।

1- रामचरण हयारण मित्र " उदय और विकास" पृष्ट 344

2- ब्रासिलग्रे "राजपूत पेन्टिग्स" (फेवर एण्ड फेवरलि0) पृष्ट 2-4

अध्याय-चतुर्थ

बुन्देल खंड के लघु चित्र एवं चित्रित ग्रन्थ

लघु चित्र, प्राप्य स्थान, सर्वेक्षण, प्रतिपाद विषय, प्रमुख कलाकार, चित्रशैली व सामग्री, विशेषतायें, महत्व अन्य पड़ोसी तत्कालीन शैलियों से भिन्नता।

भारतीय चित्रकला में चित्रकार ने अपने भावों को प्रदर्शित करने के लिये विभिन्न शैलियेां को अपनाया , जिनका अपना स्वन्त्र अस्तित्व रहा है । साहित्यकार की भाँति चित्रकार ने भी इन शैलियें के माध्यम से पुरुष एवं नारी को भिन्न - भिन्न , नख-शिख रुपों में चित्रित किया है । चाहे चित्रकार ने वृक्ष -लता , पशु-पक्षी का चित्रण किया हो और चाहे भवन एवं मानव के विभिन्न स्वरुपों का चित्रण किया हो सभी में रंग और रेखाओं के माध्यम से अपनी-अपनी सीमाओं को मर्यादित रखा है । यहां तक कि फूल-पत्ते , आभूषण एवं वस्त्रों के प्रकार तथा वेश-भूषा आदि को देखने से प्रत्येक कला मर्मज्ञ शैली का निर्धारण आसानी से कर सकता है । कुछ शैलियों की उपशैलियां भीइतनी प्रभावित व उनके समकक्ष होती हैं कि बडी गहन दृष्टि के बाद उनका अन्तर स्पष्ट हो पाता है[1]।

बुन्देलखण्ड चित्रशैली के स्वतन्त्र अस्तित्व हेतु उपरोक्त बातों की पहचान की आवश्यकता तो है ही पर उसके पीछे ऐसा इतिहास छिपा रहता है कि जिससे उसकी पूर्व परम्परा में दर्शन और धर्म उसके साथ परोक्ष रूप में कार्य करती हैं । मध्य प्रदेश के के पूर्वी भाग को एवं उत्तर प्रदेश के कुछ भाग को मिलाकर बुन्देलखण्ड कहा जाता है उसकी कई रियसतें एवं जनपद विशेषतय: दतिया , ओरछा (टीकमगढ) ,छतरपुर , झांसी , बांदा , हमीरपुर , जालौन , ललितपर आदि इसके केन्द्र बने हैं । वैसे तो बुन्देलखण्ड के विभिन्न अंचलों मे चित्रकला के प्रतिष्ठान इसके केन्द्र रहे हैं पर लगभग सभी केन्द्र दतिया और ओरछा चित्रशैली से प्रभावित हैं । इसके पास में पश्चिमी भाग मालवा जिसमें विशेषकर ग्वालियर , इन्दौर और मांडू आदि प्रमुख है , का प्रभाव भी इस शैली से परोक्ष रुप से जुडा हुआ है

1- मोतीचन्द्र खजांची " कैटलाग" (ललितकला अकादमी मिनियेचर पेन्टिग्स भूमिका 1960)

होसंग के नेतृत्व में खिलजी सल्तनत के उभरने पर मांडू को महत्व दिया गया है और वहां की चित्रकला से युक्त वहां के अवशेष उसके लिये वैभव की याद दिलाते हैं[1] । उसी युग में शेख सादी की गुलिस्ता और बुस्ता जो दोनेा ईरानी प्रभाव से मंडित हैं , उस युग के अच्छे चित्रकला के उदाहरण हैं लेकिन इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी अन्य क्षेत्रों में सामने आये हैं ।

मालवा की कला परम्परा में रसिक प्रिया , अमरुशतक , आदि जैसे ग्रन्थों का चित्रण कलाकारों की रुचि का कारण बना था । भगवत पुराण , दुर्गापाठ , रागमाला , कृष्ण लीला जैसे अन्य विषयों को भी यहां के चित्रकारों ने परिश्रम और लगन के साथ चित्रित किया है मालवा चित्रशैली मेवाड और मथुरा को हस्तान्तरित होने के बाद नाथ-द्वारा को प्रभावित करके उसका प्रभाव पडोसी होने के नाते बुन्देलखण्ड क्षेत्र पर भी पूर्ण रुप से पडा , यहां तक कि कुछ कलाकारों ने इस शैली को मालवा और राजस्थानी शैली का एक भाग बताया हैं ।

राजपूताना क्षेत्र जितना शूरवीरता के लिये प्रसिद्ध रहा उतना ही उनका हृदय कोमल तथा माधुर्य से परिपूर्ण मिलता है जहां रणक्षेत्र में उन्होंने तलवार से कीर्तिमान स्थापित किये है वहां अपने निवासों , महलों और हवेलियों में तूलिका और कलम का वैचित्र भी स्थापित किया है । उनके मंदिरों में भक्ति , संगीत और जीवन में काव्य का संचार इतना अधिकता से किया है कि सोलहवीं शताब्दी के आते-आते समस्त राजपूताना और बुन्देलखण्ड क्षेत्र उसका केन्द्र सेा बन गया लेकिन इन छोटे-छोटे सभी रजवाडों में आर्थिक , सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र का उन्नयन हो रहा था अपभ्रंश शैली के जैन चित्रों के द्वारा पुस्तिका चित्रित ग्रन्थ (पोथी चित्र) परम्परा को बल मिल रहा था तथा वास्तु एवं स्थापत्यका विकास भी इनकी भक्ति भावना का एक रुप था[2] ।

1- जगदीशसिंह गहलौत "राजपूताने का इतिहास भाग-3" पृष्ट 230-231

2- के0 एम0 पनीकर "दि फाउण्डेशन ओफ न्यू इण्डिया" पृष्ट 133

कबीर, नानक, देव , चैतन्य तथा वल्लभाचार्य ने भक्ति की ऐसी रसधारा बहाई जिसका प्रभाव समस्त भारत पर दिखाई दिया । उत्तर भारत में इसको और ऐसा अवसर भी मिला जिससे अन्य भागों की अपेक्षा कला और संगीत का अनुपम सम्बन्ध दिखाई दिया[1]। सूर और तुलसी के आराध्य राम और कृष्ण उनके उपासना भक्ति के स्वरुप तो थे ही पर उनकी क्रियाओं में भी उनके जीवन की झांकी दिखाई देती है। कृष्ण और राम की बालक्रीडाओं एवं लीलाओं के साथ ऐसा सम्मोहन सामने आया जिसमें भक्ति संगीत , भक्ति काव्य एवं भक्ति चित्रकला (चित्र सं० 87 से 91) भी विभिन्न उपरोक्त चित्रों का विषय बन गई चित्रकला में विशेष रुप से रंग और रेखाओं का मेल इनके संयोजनों में इस प्रकार उभर कर प्रस्तुत हुआ जो उनके भावानुकूल पवित्र व माधुर्य-युक्त था ।

विभिन्न संग्रहालयों में संग्रहीत लौरचन्दा , मृगावती , चौरपंचा , संग्रहणिका सूत्र एवं गीतगोविन्द जैसी कृतियां साहित्यकारों द्वारा रचित तथा चित्रकारों द्वारा चित्रित आज भी देखी जा सकती हैं[2] । इन कृतियों तत्कालीन भावनाओं की अभिवृद्धि तो है ही तथा साथ में कला का भी एक ऐसा पक्ष निहित है कि जिससे आगे की कला को आधार मिला है । मध्य प्रदेश के मालवा , बुन्देलखण्ड , ग्वालियर और दतिया क्षेत्रों में विकसित बुन्देलखण्ड चित्रकला इससे इतनी प्रभावित हुई है कि उसमें इसका पूर्ण समावेश है[3] ।

बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक परम्परायें सोलहवीं शताब्दी तक से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक राजपूत पठान और मुगलों के साथ सम्बन्धित होते हुये भी उनका अपना क्षेत्रीय अस्तित्व स्वतन्त्र रुप से सामने आया है ।

1- ए० पी० व्यास "राजस्थान की चित्रकला " राजस्थानी शोधसंस्थान जोधपुर पृष्ट 14, 15

2- राष्ट्रीय संगहालय नयी देहली में विशेष दृष्टव्य ।

3- हरमन गोयेज " लेख जयपुर, मार्ग राजस्थानी पेन्टिग्स" पृष्ट 59

सीमावर्ती प्रदेशों से निरन्तर सम्पर्क एवं आदान - पदान होने के करण गुजरात की जैन शैली ने पूरव मे अवध , जौनपुर तथा गोलकुण्डा व बीजापुर की शैलियों ने उत्तर में मेवाड की शैली ने और दक्षिण में खान प्रदेश तथा अहमद नगर की शैली ने बुन्देलखण्ड की चित्रशैली ने प्रभावित किया ।

यह भी कहा जा सकता है कि समस्त चित्रशैलियां बुन्देलखण्ड चित्रशैली में समाहित हो गई हैं , जिसकी पूर्व पीठिका इन्ही पर आधारित है । बुन्देलखण्ड की चित्रकला का इतिहास बाघ की गुफाओं से आरम्भ होकर दरवारी जीवन के वैभव और नृत्य संगीत , भक्ति और साहित्य का परिचायक है । इसी लिये ये चित्र शैली मध्यकालीन कला के उत्तरोत्तर विकास क्रम की देन रही है[1]।

मध्य युग में सर्वप्रथम ब्राह्मण धर्म , शैव धर्म और जैन धर्म के ग्रन्थ लिपिबद्ध किये गये हैं । उनमें कागज , कपडा तथा पत्र व भोजपत्र आदि का प्रयोग करके उन्ही से सम्बन्धित चित्र उनपर चित्रित किये गयेहै । इस युग की पाल व अपभ्रंश और जैनशैलियों की प्रख्यात कृतियों से जो प्रेरणा मिली वह यहां के चित्रों में समाहित हो गई और उसी के परिणाम स्वरुप बल्लभ सम्प्रदाय ने "सर्व खल्विदं ब्रम्ह" कहकर समस्त रुपों में भगवान की सत्ता को मानकर चित्रकला को भगवान के दर्शन का एक माध्यम प्रमाणित किया है[2]।

बुंन्देलखण्ड के चित्रकारों ने रीतिकालीन साहित्य और काव्य के आधार पर कल्पना के माध्यम से विभिन्न अलंकारिक रुपों को अपनी तूलिका से चित्रित किया है (चित्र सं0 76,82,84,85) साहित्य और चित्रकार अपने-अपने साधना के माध्यम से एक दूसरे के समक्ष तुलनात्मक स्वरुप में प्रस्तुत हुये हैं ।

1- मोतीचन्द्रे खजांची "मिनियेचर पेन्टिग्स केटलाग" पृष्ट 56

2- एन0 सी0 मेहता " इण्डियन पेन्टिग इन रिलेशन टू इण्डियन मिनियेचर " पृष्ठ 19

काव्य से चित्रकला और चित्रकला से काव्य प्रभावित होकर आगे बढते रहे । अहमदाबाद मेंरचित वसन्तविलास इसका एक प्रमुख उदाहरण है इसीलिये हम देखते हैं कि रुढिवादिता में फंसी चित्रकला स्वतन्त्र वातावरण में आ गई तथा उनके मौलिक पक्ष के विकास का मार्ग खुल गया । वसन्तविलास में प्रेम और वसन्त के सौन्दर्ययुक्त चित्रण सामने आया और इस प्रकार वैष्णव धर्म से सम्बन्धित विषयों के चित्रण की एक नई परम्परा का जन्म हुआ । लौकिक विषयों पर चित्रण के अतिरिक्त विल्लहन की चौरपंच्चासिका में धार्मिक भाव नगण्य के बराबर हैं । मुल्लादउद की लौरचन्द्रा में भी इसी प्रकार का भाव प्रदर्शित किया गया है । यहां तकि मृगावती आदि चित्रित ग्रन्थों की प्रतियां भी लौकिक विषय से ओत-प्रोत रहीं जिसका परिणाम यह हुआ कि दो चित्रण विषेयक परम्परायें भक्ति और रीति चित्रों के रूप में प्रचलित हो गई । भक्ति चित्रों में कृष्ण और वैष्णव धर्म सम्बन्धी विषयों का चित्रण (चित्र सं0 78,79,83) होता था जब कि रीति चित्रों में लौकिक विषयों को प्राथमिकता देकर नायक - नायिका भेद और हिन्दी के रीति काव्य वर्णनों को अनुरंजित किया गया है , यहां तक कि कुछ संस्कृतियों में संस्कृत ग्रन्थ जैसे अमरुशतक , गीतगोविन्द और रसमंजरी आदि ग्रन्थों में भी यही भावना चित्रित की गई है[1] ।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड की आरम्भिक प्रेरणा का श्रोत भक्ति व रीति काव्य ही कहा जा सकता है[2] । क्यों कि आरम्भ से उनकी चित्रकला के विषय राधा-कृष्ण की लीलायें , रामायण के चित्र , शिव पुराण तथा महाभारत एवं भागवत आदि रहे हैं । साहित्य के प्रेरणा से नायक - नायिका भेद , राग-रागिनी बारहमासा, ऋतु अंकन , नृत्य क्रिया एवं रागमाला आदि विषयों पर चित्रण (चित्र सं0 83) किया गया है । नायक-नायिका चित्रण के लिये रीतिकालीन कवि आचार्य केशव, देव , विहारी , एवं मतिराम की कृतियों ने अच्छी भूमिका निभाई है ।

1- डा0 आनन्दकृष्ण " भारतीय चित्रकला की कतिपय प्रमुखशैलियां" पृ063-65
2- गोरेलाल तिवारी "बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ट 5

माननी अभिसारिका , उत्कण्ठिका , स्वाधीनपतिका , सुकिया , प्रौढा एवं मुगधा आदि नायिकाओं के विभिन्न स्वरुप वर्णित एवं चित्रित हुये हैं । बारहमासा चित्रों में फागुन , चैत , बैसाख , जेठ , असाढ एवं सावन आदि महीनो के प्राकतिक सौन्दर्य से सुखी व दुखी नायिका के मानसिक भावों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है[1]। गीत गोविन्द व भागवत के अनेकचित्र भी बने , किशनगढ जोधपुर, बूदी और जयपुर के महाराजाओं ने पासदानों के साथ अपने सबबन्धों को राधा-माधव युगल लीला की संज्ञा देना आरम्भ कर दी थी । बल्लभ सम्प्रदाय के पुष्टिमार्गीय भक्ति परम्परा के अन्तर्गत चित्र , संगीत , काव्यकलाओं को त्रिवेणी के योग के कारण ही सम्भव हो सका । राजस्थान के अन्य क्षेत्रों में श्रीनाथ जी की अनेक लीलायें कृष्ण लीलायें, दानलीला , नागदमन , मुरलीधर, रासलीला चीरहरण , बाकासुर और पूतनावध आदि चित्रकारों के प्रिय विषय बन गये । राम दरबार , राम-रावणयुद्ध , पंचवटी , गणेश-लक्ष्मी आदि (चित्रसं0 82) के साथ-साथ जैन तीर्थाकरों की कथायें भी अंकित हुई तथा साथ में लोकविषय भी आगे बढता चला जिसमें तीज-त्योहारों , लोक कथानकों एवं देवीदेवताओं आदि के चित्र (चित्र सं0 84,85) बनाये जाने लगे[2]।

इन छोटे - छोटे रजवाडों में दरबारों के अन्दर संगीत की उन्नति , हवेली संगीत परम्परा तथा जनमानस में संगीत के प्रति रुचि ने भी राग-रागनियों का चित्रण (चित्र सं0 83) भी बारह-मासा के प्रतीकात्मक रुपों की तरह प्रत्येक राग के पढने वाले मानसिक प्रभावों को नायक - नायिका के माध्यम से दर्शाया तथा राग के अनुरुप भी प्रकृति वेश का चयन किया गया है ।

1- कुंवर संग्रामसिंह "लेख जयपुर्स यूनीक कन्ट्रीव्यूसन टू राजस्थान" वार्षिकी 1963 पृष्ट 26-30

2- कलानिधि अंक - 1 " भारतकला भवन वाराणसी" पृष्ट 32

रागमल्हार में मेघों का रूप , रागभैरव में सूर्यदेव की लालिमा व टटेडी रागनी में वीणालिये हिरन के साथ नायिका चित्रित मिलती है । शिकार के चित्रों में हाथियों की लडाई , नारीकुंजर , शिकार करती स्त्रियां , कबूतर व पतंग उडाती स्त्रियां तथा होली आदि विषयों में जनजीवन की उमंगों के सच्चे स्वभाव को प्रगट किया है । यह निश्चय ही है कि बुन्देलखण्ड की वीर प्रवासिनी भूमि में अन्य भारतीय चित्रशैलियोंके प्रभाव को आत्मसात करते हुये उसने अपने निजस्व को ठेस नहीं पहुंचने दी । इसमें यहां की प्राकृतिक सुषमा ,वीरों के प्रसंग व संस्कृति अपने रंगारंग उत्साह और उल्लास के साथ सामने आयी । धन्य है यह भूमि पहां पर शासक तथा चित्रकार जनजीवन में व्याप्त सुवास को चित्रों को संजोकर उनका समन्वय प्रस्तुत कर यहां की संस्कृति को सदा के लिये अमर बना दिया है[1] ।

लघुचित्र एवं चित्रित ग्रन्थ व उनके प्राप्त प्रतिष्ठान :-

बुन्देलखण्ड क्षेत्र को यह गौरव प्राप्त है कि यहां पर केशव , मतिराम , देव , विहारी और तुलसीदास जैसे कवियों की जन्म स्थली एवं कर्मस्थली रही है । इनका योगदान भक्ति एवं श्रंगार को जन-जीवन में प्रवाहित करने के रूप में सर्वविख्यात है[2] । रीतिकालीन नये आयाम जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करने का श्रेय इन्ही कवियों के काव्य रचना एवं कल्पनाशक्ति को मिलता है । इन्होंने जीवन में एसी मधुर लहरों का संचार किया जिसमें श्रंगार से ओत-प्रोत कोमल भावनायें उच्चता को छूने लगी[3] ।

1- गजेटियर आफ दतिया "मध्यप्रदेश" 1977 पृष्ट 19,20

2- गोरेलाल तिवारी " बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ठ 76

3- डा0 आर0सी0 शर्मा निदेशक राजकीय संग्रहालय लखनऊ द्वारा विशेष टिप्पणी ।

देव का अष्टयाम ग्रन्थ व आधारित चित्रों(चित्र सं0 93 से 98) को आज भी राजकीय संग्रहालय लखनऊ में अवलोकित किया जा सकता है । इन चित्रों से उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि होती है । इन चित्रों मे दिन से लेकर रात्रि तक के आठो याम (एक याम("पहर(= तीन घण्टे(को नायक - नायिकाओं की भावनाओं एवं अनुभूतियों के साथ सामयिक प्रभाव से प्रस्तुत किया गया है जिसमें प्रकृति के बदलते हुये स्वरुप को दर्शाकर मानवकृतियों की भाव-भंगिमायें उसमें प्रमुख रुप से हैं । टीकमगढ में रहने वाले रामदयाल खेरा और सुखलाल काछी दरबारी कलाकारों के रुप में थे जो यहां के राजा उद्दतसिंह के शासन काल में अच्छी और परिस्कृत कृतियों को चित्रित करते थे इन कृतियों में छतरपुरी ,टीकमगढी और कालपी का बना हुआ कागज प्रयोग में लोते थे जिसे ठर्रा कागज भी कहते हैं । इस कागज को कडा करने के लिये दो या तीन पर्त एक साथ चिपका लेते थे फिर कागज को चिकना करने के लिये सफेदा का उसपर कोट करते थे[1] ।

महाराजा शंत्रुजीतसिंह के समय के प्रसिद्ध चित्रकार पं0 केशरी सिंह दीवान द्वारा चित्रित अष्टयाम भी उल्लेखनीय हैं । जिनकी तीसरी पीढी के वंशज तक इस कार्य में लगे रहे[2] । दतिया के श्री महेश जी के पास रस राज के चित्र आज भी प्राप्त हैं जो तत्कालीन कलाकृतियों की ऐसी रुपरेखा प्रस्तुत करते हैं जिससे इनके अपूर्व योगदान की सभी लोग विशेष सराहना करते है । चित्रों में रंग ,रेखा,सन्तुलन संयोजन व कला के तत्वों का समावेश प्रकृति एवं स्थापत्य के आकारों के साथ इतने सुन्दरता के रुप में हुआ है जिससे कि कोई भी तत्कालीन राजस्थानी व पहाडी शैली की भांति इनकी विशेषताओं को अलग किया जा सकता है या यों कहें कि इनका वैचित्र भी अपने में अलग है[3]।

1- रामचरण हयारण मिश्र "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य" पृ0255

2- बी0 ए0 अग्रवाल "दतिया दर्शन" पृष्ट 17-18

3- मिनियेचर पेन्टिग्स ललित कला अकादमी नई देहली पृष्ट 14-18

विहारी सत्सई मेवाड से अधिक जुडी है तत्कालीन परिस्थियां समस्त उत्तर भारत में साहित्य और कला के लिये इस प्रकार की थीं कि उसे चौमुखी सहयोग प्राप्त हो रहा था । सभी रजवाडों और ठिकानों पर रामयण , दुर्गासप्तसती , महाभारत , गीतगोविन्द , रागमाला , बारहमासा एवं नख-शिख वर्णन आदि विषयों की भरमार थी । इतना सब होते हुये भी इनठिकानों एवं रजवाडों में शैलीगत भिन्नता रही है ।

राजकीय संग्रहालय झांसी में लगभग अठारहवी शताब्दी का एक हस्तलिखित एवं चित्रित ग्रन्थ उत्तम चरित्र (दुर्गासप्तसती) संग्रहीत है उसे बुन्देलखण्डीकलम के प्रतीक के रूप में माना जा सकता है उसमें इस शैली के ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये गये है जो कि तत्कालीन शैली को प्रभावित करते है (चित्र सं0 87, 88) अन्य संग्रहीत ग्रन्थों से इसमें रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता अधिक है । डा0 एस0 डी0 त्रिवेदी निदेशक राजकीय संग्रहालय झांसी की विशेष कृपा से मुझे यह ग्रन्थ देखने का अवसर प्राप्त हुआ । इस ग्रन्थ में प्राकृतिक सौन्दर्यता एवं वातावरण के साथ - साथ तत्कालीन मान्यतायें , परम्परायें एवं पौराणिक कथानको से सम्बन्धित विषयों को लिखित एवं चित्रित रूप दिया गया है । सुनहरे रंगों में हांसिये के अन्दर देवनागरी लिपि में लिखा गया है । चित्रों की रचना अत्यन्त सूक्ष्म आकार में तथा चटक रंगों व आकृतियोका अच्छा संयोजन किया है इसमें विभिन्न कथानकों को लेकर 33 चित्र चित्रितकिये गये हैं जो बुन्देलखण्डी कलम का एक अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं[1] ।

वीरता , शौर्य एवं भगवान राम के अनन्य भक्त पवनपुत्र हनुमान् को विभिन्न स्वरूपों में उनकी शक्ति एवं भावनाओं का सजीव प्रस्तुतीकरण चित्रकार ने अहिरावण चित्रावली में किया है । इसमें उसने शास्त्रीय एवं लोकपक्ष दोनों को प्रस्तुत करने में तनिक भी भूल नहीं की है ।

1- सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 26-12-82 को राजकीय संग्रहालय झांसी में डा0 एस0 डी0 त्रिवेदी से विशेष दृष्टव्य ।

दतिया में यह चित्रावली इतनी प्रमुख है कि चित्रकार इस अनोखे विषय को प्रमुखता प्रदानकर इसका सफल चित्रांकन करता हुआ चमडे पर लिखे चित्र " हाफिश दि दिवान गन्थ" वीरसिंह देव के समय का एक अनुपम ग्रन्थ है जिसमें ईरानी और मुगल प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है , शेखशादी , गुलिश्ता व बोस्ता की तरह अंकन हुआ है[1]। इसमें रेखायें तो विशेष महीन व वारीकी से नहीं बनाई गई हैं पर चित्रकार ने रेखाओं को सुदृढ एवं कलात्म रुप देने में कोई कसर नहीं छोडी है । इस चित्रण परंपरा में बुन्देली शैली का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है[2] ।

बुन्देली चित्रकारों ने जहां एक ओर भित्ति एवं लघु चित्रों को अपनी तुलिका से सजीव रुप दिया है वहीं दूसरी ओर व्यक्ति चित्र भी (चित्र सं0 97) उसकी तूलिका से अछूते नहीं रहे हैं राजाओं - महाराजाओं , दीवानों व प्रमुख धार्मिक विभूतियों के चित्र भी मुख्यत: देखने को मिलते हैं जिनका चित्रण यहां के कलाकारों द्वारा किया गया है । महाराजा शत्रुजीतसिंह जी , वीरसिंहजूदेव और राजा परिक्षित के चित्र बुन्देली शैली के ही बने हैं । इन चित्रों में शाही पहनावा , ढाल-तलवार के साथ - साथ बुन्देले वाने का सफल प्रदर्शन किया गया है ये चित्र अधिकतर एक चश्मी हैं वस्त्र आभूषण , मालायें , कलिगी आदि के माध्यम से उनकी सौर्यता को प्रमुखता प्रदान की गई है मुखाकृति को महीन रेखाओं के द्वारा बना कर चित्रों के पहचान कराने में चित्रकार ने विशेषता प्राप्त की है[3]। व्यक्ति चित्रण की प्रथा विशेष रुप से सामान्य लोगों के लिये प्रचलित नहीं थी वरन विशिष्ट लोगों केगौरव व उनकी मर्यादाओं से प्रभावित होकर चित्रकार ने उन्हें अपनी तूलिका का विषय बनाया ।

1- अलवर-राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर पृष्ट 617

2- टी0 एच0 डेन्डले "अलवर एण्ड इट्स आर्ट्स ट्रेजर्स " अंक-2 पृष्ट 3

3- गोपीकृष्ण कनौडिया "कलानिधि अंक+ ।" पृष्ट 32
डा0 जैसिंह नीरज"अलवर अंक" पृष्ट 153

यहां के चित्रकार ने अपनी तूलिका के माध्यम से बुन्देलखण्ड के विशेष उत्सव , पहलवानी , अलंकारिक , तुलसी का चित्र , राम और कृष्ण के चित्र , वादक स्त्रियों के चित्र , रागमाला , बारहमासो पर आधारित चित्रों (चित्र सं0 83) को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है इनमें से कुछ चित्र सुनार परिवारों द्वारा उरेहे गये हैं इससे यहां के जनमानस का चित्रकला के प्रति उनका विशेष अनुराग स्पष्ट दिखाई देता है । बुन्देले चित्रकारों ने अपनी कला के माध्यम से यहां के वैभव को अपनी तूलिका में समाहित करके जनमानस के समक्ष उडेल दिया है जिससे यहां की संस्कृति पर प्रकाश पडता है । समय के साथ - साथ अन्य प्रभावों से प्रभावित होकर व्यक्ति चित्र एवं जन जीवन से सम्बन्धित साधारण चित्रों का चित्रण तेल रंगों में भी होने लगा , जिसका श्रेय मुन्शी मुहम्मद पहलवी , हास्मी याशदानी ऐसे मुगल चित्रकारों को है जिन्होंने इस शैली में कार्य किया और इनका संकलन टीकमगढ में देखा जा सकता है[1] ।

इस प्रकार के चित्रण में चित्रकार ने एकसी संगत वाले रंग जो आपस में एक दूसरे से मेल खाते हैं , का प्रयोगकर बारीक रेखाओं के माध्यम से आकृतियों में सुडौलता व विषयवस्तु के अनुरूप चित्रणकर साधनापक्ष को सामने ला दिया है इस प्रकार के चित्रों में जहां केशव के काव्य का प्रभाव है वहीं दूसरी ओर चित्रकार की तूलिका पीछे नहीं रही । प्राकृतिक दृश्यों में रागात्मक वृत्ति अधिक न होकर मानवा प्रतियों में कल्पना को प्रधानता दी गई[2] ।

टीकमगढ में उपलब्ध केशव के चित्र की प्रति का अवलोकन करने से ऐसा आभास होता है कि यहा चित्रकारों का जमघट रहा होगा जिन्होंने तत्कालीन भावनाओं के अनुरूप कार्य करके उनको चित्रित किया होगा ।

1- सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 27-12-82 से 29-12-82 के दौरान स्थानीय लोगो से प्राप्त जानकारी एवं दृष्टव्य ।

2- अम्बिकाप्रसाद वर्मा " ओरछा की चित्रकारी" पृष्ट 69-70

इन पोथी चित्रों (चित्र सं087ब91) के रंगों में सुन्दरता इतनी अधिक है कि वह अष्टयाम के चित्रों (चित्र सं0 93ब95) से बडी एवं सुधरी हुई लगती है। भारतकला भावन वाराणसी में भी इनकी कुछ मौलिक कृतियां है इनको देखकर चित्रों का गरिमायुक्त मूल्यांकन किया जा सकता है[1]। यह कलाकृतियां जितनी ही बुन्देली चित्रशैली को प्रमुखता प्रदान करती है उतनी ही यहां के काव्य को भी महत्व प्राप्त है। रसिक प्रिया और कविप्रिया की चित्रावली तत्कालीन चित्रों की प्रतिष्ठा बढानेमें अपनप पूर्ण येगदान समर्पित करती है जिससे इस क्षेत्र का एक चारित्रिक वैभव अवलोकन करने का सौभाग्य मिलता है। स्त्री पुरुषों के लम्बे कद, पतले शरीर एवं आभूषण आदि का मोह इसमें अधिक सहायक हुये हैं। पृकृति के वैभव की रूप रेखा भी आकृतियों के साथ गौड रूप में रहते हुये भी विशेष योगदान करती है[2]।

यहां की साहित्यिक प्रेरणा के श्रोत में कवि मतिराम कृत रसराज भी एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें धार्मिकता होते हुये भी श्रांगारिक भावनाओं से परिपूर्ण विषय को महत्व दिया गया है। राम-कृष्ण की लीलाओ, राधा=गोपियों और कृष्ण की क्रीडाओं व अन्य प्रकार के श्रंगारिक विषयों को लेकर जहां मतिराम ने उनके नृत्यलीलाओं गोचारण, दुग्ध दोहन, माखनचोरी, कालीदमन आदि विषयों को भी लौकिक होते हुये भी उनहें अलौकिता की ओर प्रस्तुत करने की विशेष चाह रही है। इन चित्रों में रस और अलंकार का चित्र की सुन्दरता के साथ जुडा हुआ है जिसे चित्रकला की विशेष उपलब्धि कहा जा सकता है। रसराज में राधा-कृष्ण का नायक-नायिका के रूप में सफल चित्रण है। जिसमें उनकी समस्त क्रियाकलापों को प्रस्तुतकियागयाहै।

1- कलाभवन बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में विशेष दृष्टव्य।

2- पेनोरमा औफ इण्डियन पेटिग(पब्लिकेशनडिवीजन) पृष्ट 19,20
वाचस्पति गैरोला " भारतीय चित्रकला " पृष्ट 29।

कृष्ण के वेणी गुन्थन , दुग्ध दोहन आदि विषयों को चित्रकार ने वडी योग्ता के साथ चित्रित किया है । इन कृतियों में देव और केशव की भाति आधारित चित्र कुछ अलग हैं क्यों कि इनमें लीलाओं नायक-नायिकाओं , बारहमासा और रागमाला आदि के विषय भी सामने आये है । साहित्यकार दिन - प्रतिदिन ग्रन्थ रचकर ऐसी पृष्टभूमि तैयार कर रहे थे जिससे चित्रकार प्रेरित ही नही वरन उनको अपनी कला साधना का आधार मान बैठे थे । बुन्देलखण्ड शैली का यह समय कला के क्षेत्र में उन्मेश का समय था जब कि इन कृतियों की रचना हुई थी । इन चित्रों मे मुंह लम्बा , आंखें कमल जैसी , नासिका नुकीली , आम जैसा चेहरा इन चित्रों की विशेषता है[1] ।

महाराजा वीरसिंह , शात्रुजीतसिंह और राजा परिक्षत के सहयोग से ही इस शैली को प्रोत्साहन मिला था यदि इन लोगोंका आकर्षण , साहित्य और चित्रकला के प्रति न होता तो शायद इस प्रकार की ग्रन्थावली के चित्र बनने मुश्किल हो जाते । प्रतापगढ दुर्ग में कुतुबखाना जो दतिया राजाओं का ग्रन्थालय था इसका जीता जागता उदाहरण है[2] ।

चित्रकारों की तूलिका प्रसिद्ध कवि विहारीकृत , विहारी-सत्सई पर आधारित विषयों पर भी चली है । इसमें नीति पर आधारित दोहों पर चित्रकार ने अपनी तूलिका से चित्रण किया है । भक्ति व प्रकृति के अंकन का अच्छा स्वरूप इसमें प्रस्तुत किया गया है । इसकी भी पांच प्रतियां तैयार कराई गई है । केशव और मतिराम के ग्रन्थों के समकक्षे इनकी चित्रावली भी अपना विशेष स्थान रखती है[3] । रागमाला विषय तथा कविदेव के अष्टयाम के पर आधारित चित्रावली जो राजकीय संग्रहालय लखनउ में अपने मूलरूप में है यहां की एक अमल्य धरोहर है[4]।

1- राममित्र चतर्वेदी " ओरछा का अतीत" पृष्ट 15
2- ठाकुर लक्ष्मणसिंह गौर " ओरछा का इतिहास" पृष्ट 68
3- महेन्द्रकुमार "मानव"- ओरछा का सन्देश" पृष्ट 20
4- राजकीय संग्रहालय लखनउ में श्री नकवी साहव से विशेष दृष्टव्य ।

इन चित्रों में नायक-नायिकाओं के विभन्न स्वरूपों, अनुभूतियों एवं क्रियाओं का एक ऐसा अंकन है कि वह चित्र "कविता चित्र" के श्रेणी में रखकर समझा जाये तो उन चित्रों के प्रति स्पष्ट मत प्रकट हो सकता है। प्रत्येक चित्र में सूर्योदय से पूर्व ही नायिका, नायक के प्रति किस भावना से प्रेरित है तथा वह अपनी भावनाओं के अनुरूप उपरोक्त भाव ना का प्रदर्शन पोषाक के माधयम से प्रकट करती है। यह उसका एक ऐसा पक्ष है कि जो सभी आठो यामों में नायक के प्रति उमडी भावना ओं में बहुसंयोग, वियोग, मिलन, पतीक्षा आदि के उपक्रमो मे व्यस्त रहकर भावनाओं का प्रदर्शन करती है इन चित्रों में (चित्र सं0 १३से १९) घर-आंगन, सेज-सज्जा, श्रंगार, आभूषण, पक्षी पेड आदिका भी चित्रण भावनाओं की सहायतार्थ दर्शाया गया है[1]।

चित्रकार ने साहित्यिक भावनाओं से प्रेरित होकर तत्कालीन रीति-साहित्य के प्रतीक अष्टयामी चित्रों को अपनी कल्पना का रुप देकर एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है। कवि देव की लेखनी और चित्रकार की तूलिका मे प्रगाढ सम्बन्ध प्रतीत होता है क्यों कि दोनों में ही अपने - अपने पक्ष को इस प्रकार से प्रस्तुत किया है कि चित्र और शव्द का भेद एक सा प्रतीत होता है। इन चित्रों की रंग योजना तो चटक है साथ ही बुन्देलखण्डी वेशभूषा में सजित नायक- नायिकाओं को बारीक रेखाओं से चित्रित कर सौन्दर्यता का सफल प्रस्तुतीकरण किया है। स्थापत्य का प्रदर्शन चित्र के अन्दर राजपूत और मुगल की भाँति की है। देहली पास में होने के कारण तथा मुगलों के आधिपत्य होने के कारण उनका प्रभाव इन पर दृष्टिगोचर होता है[2]। हालाँकि रंग सपाट हैं पर उनकी रंग योजना उपर्युक्त प्रभाव से इतना मेल खाती है कि उसमें ईरानी और मुगल स्वभाव झलकता है।

1- हरमन गोयेज "मार्ग-राजस्थानी पेन्टिंग खण्ड ।।" पृष्ट 49

2--~~अम्बिकाप्रसाद दिव्य "ओरछा की चि-~~

2- श्री आनन्दीलाल पोद्दार "स्मृतिपुष्पी" पृष्ट 265

नायक की आकृति राजपूतानी वेशभूषा के साथ जिसमें पगडी जामा , पाजामा ,दुपट्टा,यहां के पहनावे की एक रुपरेखा कही जा सकती है । नायिका के वस्त्रों में लंहगा , चुनरी,ब्लाउज और कहीं - कहीं अंगरखा और सलवार तथा जामा और पाजामा भी चित्रित हुआ है । चित्रकार ने स्त्री-पुरुष दोनेा कोपूर्ण आभूषण से युक्त ही चित्रित किया है[1]।

वस्त्रों की पहरान , सलवटें और घुमावदार स्वरुप ऐसा है कि जिसमें रीति कालीन श्रंगार का कल्पना प्रदान स्वरुप अधिक मुख रित हुआ है । चित्रकार की तूलिका ने सूक्ष्म से सूक्ष्मतम भावों को भी उरेह दिया है । धवल रंग में चित्रित महल , हवेलियां और विभिन्न चटकीले रंगों से युक्त परधान के माध्यम से नायकनायिकायें दर्शक के ऊपर अच्छा प्रभाव छोडती हैं । प्रकृति का अंकन भी इस बात का द्योतक है कि स्थानीय प्रभाव भावानुकूलचित्रकार की प्रेरणा का श्रोतबना है । इन चित्रों में बुन्देलखण्ड के चित्रण विधान का स्वतन्त्र अस्तित्व तो है ही पर तत्कालीन रीति साहित्य की भावनाओं को इसके माध्यम से प्रदर्शित करने की भावना भी बेजोड है । ग्रन्थ चित्रा वली के अन्तर्गत इन चित्रों का स्वरुप इतना स्वतन्त्र है किसभी कला समीक्षक इसमें विकसित चित्रकला की विशिष्ट प्रणाली के और कला तत्वों के आधार पर उत्कृष्ठम माने गये है[2] ।

चित्रकारों को प्रेरणा देकर उत्साहित करने का श्रेय बुन्देलखण्ड के तत कालीन प्रसिद्ध श्रंगारिक रीति कालीन कवि केशव व उनेके द्वारा रचित रसिक प्रिया ,कविप्रिया ,रामचन्द्रिका छन्दमाला , नखशिख वर्णन , रतन वावनी ,वीरसिंह देव चरित्र ,जहांगीर जस चन्द्रिका तथा विज्ञान गीता आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं ।

+-स्वयं सर्वेक्षण के समय आभूषणों एवं पोषाकों का अध्ययन ।

2-अम्बिकाप्रसाद दिव्य " ओरछा कीचित्रकारी " पृष्ट 69-72

रसिकप्रिया और कविप्रिया ग्रन्थों की चित्रावली दतिया की एक अनुपम भेंट है । इनकी पाँच-पाँच प्रतियां तैयार कराई गई जिनके माध्यम से कला का रीतिकालीन वैभव साहित्य के साथ जनमानस के सामने आया । इनके प्रस्तुत करने में बहुत श्रम करना पडा[1] । कविप्रिया के चित्रों में रेखाचित्रों की अधिकता है , प्रत्येक चित्र की आकृति और नाम में साम्य स्थापित करने का चित्रकार ने सफल प्रयास किया है जिनमें सबसे प्रमाणिक और सुन्दर चित्र काशीराज के पुस्तकालय में हस्तलेखों में है[2] ।

बुन्देलखण्ड शैली के कुछचित्र जिनका चित्रण बहियों (लेखाजोखा-रजिस्टर) के आवरण के पीछे वाले पृष्ट पर चित्रकार ने राम और कृष्ण को आधार मानकर उनकी लीलाओं का तथा उनसे सम्बन्धित घटनाओं का चित्रण किया है । चित्र , आकार में छोटे , सपाट रंग तथा चटकीली रंग योजना के साथ-साथ रेखाओं में बारीकी तथा विषयवस्तु की पूर्णता उसमें स्पष्ट झलकती है (चित्र सं0 75 से 8८) यह चित्र महोवा के श्री नरेन्द्रजैन के पास आज भी सुरक्षित रखे हैं[3] । बुन्देलखण्ड में ऐसे प्रतिष्ठित ठिकाने हैं जिसमें ओरछा ने कला को आधार देकर उसकी परम्परा को आगे बढाने में अपना अपूर्व योगदान दिया है । दतिया ठिकाना यहां की शैली का उन्मेश प्रस्तुत करता है जिससे इसका स्वतन्त्र अस्तित्व उभर कर सामने आता है । बुन्देलखण्ड से प्राप्त चित्र आज भी अपने गौरव के प्रतीक के रुप में देश-विदेश के विभिन्न संग्रहालयो में संग्रहीत हैं , जिनमें से कुछ प्रमुखतय: रायल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन , राजकीयसंग्रहालय झांसी , राष्ट्रीय संग्रहालय नईदिल्ली[4], म्यूजिम ओफ फाइन आर्ट्स , बोस्टन , ग्वालियर म्यूजियम व भारतकला भवन वाराणसी आदि में उपलव्ध हैं । रसिक प्रिया के चित्र तो बोस्टन के म्यूजियम ओफ फाइनआर्ट्स में संग्रहीत हैं जो कि यहां की अपूर्व धरोहर मानी जाती है ।

1- अम्बिकाप्रसाद दिव्य " ओरछा की चित्रकारी " पृष्ट 71-72
2- काशी नरेश के पुस्तकालय में विशेष दृष्टव्य चित्र
3- सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 7-1-83 को श्री नरेन्द्रजैन से विशेष दृष्टव्य
4- संग्रहालयों में दतिया चित्रावली के आधार पर विशेष दृष्टव्य

तत्कालीन शैलियों में भिन्नता :-

बुन्देलखण्ड , पहाडी व समस्त राजस्थान की विभिन्न शैलियों की यदि विषयवस्तु मिलाकर देखी जाये तथा उनका तुलनात्मक अध्ययन व समीक्षा की जाये तो बुन्देल खण्ड शैली में बहुतकुछ विषय ऐसे चित्रित हुये हैं जो अन्य समस्त शैलियों से से मिलते हैं[1] । देहली और राजस्थान का कुछभाग इसके निकट होने के कारण तो इस शैली के लघु चित्रों में इनका प्रभाव इतना अधिक आ गया है कि उनको समझने तक में कठिनाई होती है । बुन्देलखण्डी चित्रकला का उद्भव व विकास कई अन्य शैलियों की भाँति न तो एक स्थान में हुआ और न कुछ एक कलाकारों द्वारा , वरन् धारमिक प्रतिष्ठानों , रियासती निवासों में ही ये शैलियों और उपशैलियों के रूप में विकसित होती रही हैं[2] ।

मेवाड़शैली (चित्र सं० 99,100) में विषय की साम्यता यदि देखी जाये तो वहां प्रारम्भ में जैन ग्रन्थों तथा राग-रागनी की बाहुल्यता रही है तथा उसके बाद राधा-कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित लघु चित्रण प्रकाश में आया । कृष्ण के समानान्तर रामभक्ति का चित्रण सम्भवत: किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक आग्रह से मेवाड शैली में समाहित हुआ है तथा बाद में तो धार्मिक पर्यावरण के साथ कलाप्रेम भी उपेक्षणीय नहीं रहा है[3] । ढोलामारु और बारहमासा विषय को अत्यन्त ही लोकप्रिय रहे हैं । बालकृष्ण , गोपालकृष्ण , श्रंगारी कृष्ण , बाललीला , रासलीला और गौचारण आदि विषय मेवाड़शैली में बहुत ही चित्रित किये गये हैं[4]।

1- कार्ल खण्डेलवाल "लीव्ज फ्राम राजस्थान"मार्ग - 4 खण्ड 3 पृष्ट 16

2- एन० सी० मेहता "इण्डियन पेन्टिंग इन रिलेशन ओ इण्डियन मिनियेचर" पृष्ट 18,19

3- मोतीचन्द्र "मेवाड पेन्टिंग - ललितकला एकादमी" पृष्ट 3,4

4- हरमन गोयेज " मेवाड मार्ग 1958 " पृष्ट 3,4,38-40

इसीप्रकार अलवर शैली के लघुचित्रों में राम और कृष्ण सम्बन्धी भक्ति व धार्मिक चित्रण की साम्यता अवलोकित होती है , बूंदीशैली में भी राग-रागनी, नायिका-भेद , ऋतु वर्णन , बारहमासा , कृष्णलीला दरवार , शिकार , हाथियों की लडाई और उत्सवों आदि विषयों को चित्रित किया गया है[1] । इसप्रकार अलवर शैली के लघु चित्रों में बूंदी शैली के बहुत से विषयों का स्वरूप आया है ।

कोटाशैली के लघुचित्रों का विषय भी कृष्ण भक्ति (वल्लभ सम्प्रदाय) और शिकार के चित्रों से भरा पडा है[2] । प्राकृतिक परिवेश में जंगली जानवरों का शिकार नेत्रों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है[3]। परन्तु यहां के चित्रों की विषय सामग्री में कृष्णभक्ति धारा सदैव दिखाई देती है तथा चित्रकार ने उसको सच्ची भक्ति भावना से प्रभावित होकर ही अंकित किया जिसके उदाहरण " बल्लभोत्सव-चन्द्रिका" तथा "गीत पंचमेल" कलात्मक ग्रन्थों के रूप में हमारे सामने आते हैं[4] । राजस्थान की प्रमुख मारवाड शैली में भी नाथों , कृष्णभक्ति और ढोलामारु जैसे विषयों को महत्व दिया गया है[5] । जो कही-कहीं अलवर शैली की प्राचीन छतरियों में भी मिलता है[6] । नाथपंथी विषयधारा समस्त राजस्थान में फैली हुई थी जिसे चित्रकारों ने अपने चित्रों में दर्शाया है[7] ।

किशानगढशैली में भी विषय की दृष्टि से बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण अधिकतर राजाओं के समय में राधाकृष्ण की प्रेम लीलाओं का चित्रण ही अधिक हुआ है ।

1- मोतीचन्द्र "बूंदी-मार्ग 1958 विशेषांक" पृष्ट 50-52
2- वाचस्पति गैरोला "भारतीय चित्रकला" पृष्ट 164,165
3- डा0 आर0 पी0 तिवारी"भारतीय चित्रकला और उसके मूल तत्व" पृष्ट 57
4- कला अंक हिन्दी साहित्स सम्मेलन प्रयाग पृष्ट 123,124
5- सुन्दर मोहनस्वरूप भटनागर"मारवाड तथा जोधपुरशैली"पृष्ट 46
6- राजस्थान की लघुशैलियां "ललितकला एकादमी" पृष्ट 60-62
7- पद्मजा शर्मा "महाराजा मानसिंह एण्ड इट्स टाइम" पृष्ट 150-158

भागवत् पुराण , गीतगोविन्द , रसिकप्रिया तथा नागरीदास के पदों में श्रंगारी भावना उभरकर सामने आयी है पर शिकार , उत्सव , होली दीपावली एवं दरवार आदि के चित्रण के प्रति उदासीनता नहीं पाई जाती है[1] । "बडी-ठणी" के रस सौन्दर्य का चित्रांकन बडा ही आकर्षित करता है लेकिन राग-रागनी का चित्रण किशनगढ शैली में अनुपलव्ध है[2] ।

बीकानेर शैली में भी यहां के किले , महल , लालगढ महल , आदि के चित्रों तथा कलात्मक कपाटों पर भी राधाकृष्ण की छवि का अंकन हुआ है[3] । रसिकप्रिया , राग-रागनी , बारहमासा , कृष्णलीला आदि से सम्बन्धित चित्रांकन इन्ही कलाकारों की देन है[4] । जयपुरशैली (कछवा या अम्बरशैली) में भी राधा-कृष्ण की लीलाओं , नायिकाभेद, राग-रागिनी , ऋतुवर्णन आदि से सम्बन्धित चित्रांकन विशेष रुप से हुये हैं जिनमें राजा और रानियों के आदमकद चित्र तथा भागवत् पुराण , दुर्गा सप्तसती , कृष्ण लीला आदि के अनेक चित्रोंतथा भागवत् पुरार्ण , दुर्गासिप्तसती ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है । गोवर्धन धारण और रास-मण्डल जैसे विषयों को लेकर भी चित्रकारों ने तूलिका चलाई है[5] ।

विभिन्न शासकों के संरक्षण में तत्कालीन परिस्थियों के अनुसार कला अपना रुप परिवर्तित करती रही[6] । यह निर्विवाद सत्य है कि समस्त राजस्थान में कृष्ण-भक्ति व रामभक्ति भावना प्रवल रही है तथा वहां की समस्त शैलियों में किसी न किसी रुप में सामने आयी है ।

1- एरिकडिंसन"किशनगढ-मार्ग 1958" पृष्ट 60,61

2- डा0 जयसिंह नीरज "रिसर्चर रा0 ल0 क0 अकादमी"जयपुर-राजस्थानी चित्रकला

3- ए0 पी0 व्यास "राजस्थानी चित्रकला राज0शोध संस्थान जोधपुर"पृष्ट 14,15,31-33

4- वार्शिकी-63"राजस्थानी ललितकला अकादमी" पृष्ट 33

5- कुं0 संग्रामसिंह "वार्षिकी-63 जयपुर्स यूनीक कन्ट्रव्यूसन टू राजस्थान पृष्ट 26-29

6- डा0 जयसिंह नीरज "अलवर शैली की चित्रकला और वास्तियों का व्यापार" कादम्बनी जनवरी 1976 पृष्ट 69-72

कलाओं में यह भक्ति प्रेम उभर कर प्रस्फुटित हुआ है , विषयसामग्री के आधारपर इस उपरोक्त भावना से अलग राजसी विषय , आखेट , राग-रागनी आदि भी प्रमुख रहे हैं उनमें लोकभावना का जीता-जागता स्वरुप सामने आया है । इस प्रकार लघुचित्रों का विषय बडा ही व्यापक रहा है । बुन्देलीशैली में भी उपरोक्त सभी विषय जैसा स्वरुप झलकता है जिससे उसकी व्यापकता सिध्द हो जाती है ।

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पहाडी , राजस्थानी एवं मुगल चित्रशैली का प्रभाव बुन्देलखण्ड की चित्रशैली पर किसी न किसी रूप में अवश्य पडा है[1] । विषय वस्तु का आधार एक ही है , रंग योजना तथा चित्रणशैली भी कहीं न कहीं आपस में मेल रखती है इसका कारण इन क्षेत्रों का एक दूसरे से निकट होना तथा राजाओं का आपस में एक दूसरे की संस्कृति के प्रति प्रभाव व आकर्षण होना भी किसी सीमा तक माना जा सकता है ।

।- रामचरण शर्मा " व्याकुल" "राजस्थान की लघुचित्र शैलियां-कोटाशैली" पृष्ट 63

अध्याय-पंचम

बुन्देल खंड की कला के लोककला पक्ष व अन्य चित्रित सामग्री

लोक कला पक्ष, कला सामग्री व अन्य शिल्प प्रतिपाद्य,प्रमुख शैली में योगदान, महत्व, विशेषतायें व अन्य कलात्मक सामग्री।

अध्याय पंचम :-

बुन्देलखण्ड की कला के लोक कला पक्ष :--

किसी भी देश का लोक साहित्य उस देश के जनमानस का प्रतिविम्ब है । लोकसाहित्य में जनमानस के जीवन का , उसके हास्यविलास का , उसकी कृतियों और अनुभूतियों का यथार्थ और सरल अंकन होता है[1] । लोक संस्कृति में जहां लोक मूल्यों और लोक संस्कारों का महत्व है वहां लोक साहित्य और लोक कला का भी है[2] ।

1- भगवतीशरणसिंह "उत्तर प्रदेश के लोकगीत॥सूचनाविभाग उ0प्र0॥"पृष्ट ।
2- मामुलिया "त्रैमासिक पत्रिका अंक 6" पृष्ट 7

लोक कला मानव सभ्यता के साथ-साथ प्रकाश में आयी । पुरातनकाल से ही मनुष्य अपने हृदय की भावनाओं को रंग और रेखा को माध्यम मानकर कला के रूप में उन्हें साकार करतारहा है । इसप्रकार मानव जाति के इतिहास की पृष्टभूमि में कलाओं का अपना विशिष्ट स्थान रहा है । श्रद्धा , प्रेम , शक्ति एवं भय की प्रेरणा से अभिभूत हो कर मानव ने देवी-देवताओं को विभिन्न स्वरूपों व संस्कार सम्बन्धी क्रियाओं को थोडा सुस्कृति होते हुये भी अपने हृदय में उतार लिया , और जैसे ही उसको अवसर मिला विभिन्न स्वरूपों में उसे प्रस्तुत कर दिया इस प्रकार लोककला , लोक जीवन के समझने के लिये दर्पण की भाँति कार्य करती रही है । लोककला , कला की सुदीर्घ परम्परा को पार करती हुई लोक जीवन में ऐसे सरल व स्वाभाविक ढंग से घुल-मिल गई है कि उससे बचकर लोक जीवन चल ही नहीं सकता है इसके जीवन में धार्मिक , सामाजिक कार्यक्रमों में जो चित्रकारी , साज-सज्जा व वस्तुओं आदि पर रंगों के माध्यम से कलात्मक स्वरूप उचेरा जाता है वह संस्कार,धर्म और दैनिक जीवन की धरोहर कही जा सकती है ।

मानव मस्तिष्क एवं सामाजिक परिस्थितियों के साथविकसित होकर लोक संस्कृति पुष्पित एवं पल्लवित होती चली आई है । लोक-संस्कृति में समसामयिक बोध की एक - एक रेखाओं के दर्शन होते हैं[1] । मानव सुलभ भावना में मानसिक चेतना व बौद्धिक विकास आदि के चित्र भी लोक साहित्य के प्राण तत्व हैं[2] । लोक कला का स्वरूप विभिन्न होते हुये भी यह मनुष्य को ऐश्वर्यशाली व संस्कारों के प्रति मोह उत्पन्न करने वाली कला है इसके ऊपर भौगोलिक प्रभाव तो परिलक्षित होते ही हैं पर उनकी आत्मा में जनमानस की आत्मा प्रत्येक कृति के अन्दर प्रवाहित रहती है । आदि काल से आज तक इस धारा का श्रोत बहता चला आ या है ।

1- डा० मुल्कराज आनन्द "एलवम् ओफ इण्डियन पेन्टिंग" पृष्ट 102

2- डा० श्रीमती विनोद तिवारी "बुन्देलखण्डी एवं बघेलखण्डी लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन" पृष्ट 4

किसी भी देश की संस्कृति और सभ्यता के दर्शन इसी के माध्यम से सम्भव हो पाते हैं। भारत की संस्कृत बहुत प्राचीन है, इसलिये यह भी उतनी ही प्राचीन कहे जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। परम्परा, रीति रिवाज इसके कलेवर में रीढ की हड्डी की भाँति अपनी प्रतिष्ठा व महत्व को चरितार्थ करते हैं जिससे इसका लोक तत्व परिस्कृत रूप में प्रस्तुत होता है। मांगलिक और अमांगलिक अवसरों पर रंग व रेखाओं के माध्यम से प्रतीकात्मक चित्र बनाये जाते हैं और वही इसकी मूलत: विषय सामग्री बनती है। कुछ मनोविनोदार्थ और अलंकारिक स्वरूप भी जैसे खिलौना, पात्रों व हस्तशिल्पों के रूप में उभरकर उपरोक्त भावना को व्यक्त करते हैं, तो उसी क्षेत्र का दर्शन उसमें आ जाता है।

जैसा विदित है कि बुन्देलखण्ड भारत का ऐसा मध्य भाग है जो यहां का हृदय कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी[1]। यहां तक कि भूगोल शास्त्रियों ने विन्ध्याचल को हिमालय से भी पुरातन माना है। इसकी तलहटी में ऐसी बहुत सी सम्पदा एवं संस्कृत के अवशेष दबे पडे हैं जिससे अतीत के इतिहास का रहस्य कभी भी खुल सकता है। ऋषि अगस्त्य, अंगिरा, विश्वामित्र आदि ऋषियों की यह तपोभूमि थी इसके साथ-साथ यह वीरभूमि, कविभूमि और प्राकृतिक छटा से सुसज्जित मनोमुग्धहारी क्षेत्र रहा है यहां का साहित्य इसका जीता-जागता उदाहरण है। कविवर रहीम खानखाना ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। आचार्य केशवदास ने बुन्देलखण्ड को अपनी कविता व प्रतिभा से अमर कर दिया है। तुलसी की रामचरित मानस में बुन्देलखण्ड क्षेत्र का वर्णन आया है। इस प्रकार एक नहीं अनेक कवि एवं साहित्यकारों ने इस क्षेत्र के लिये अपनी लेखनी चलाई है जिनमें यहां की गौरवमयी गाथा परिलक्षित होती है। यहां की नदियां, वन-उपवन एवं वक्षस्थल खजुराहो तो आज विश्व का आकर्षण बना है[2]।

1- डा0श्रीमती विनोद तिवारी"बुन्देलखण्डी एवं बघेलखण्डी लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन" पृष्ट 3,4

2- रामचरण हयारण मित्र"बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य"पृष्ट269

बुन्देलखण्ड अनादिकाल से वन-उपवनों से आछादित क्षेत्र रहा है प्रसिद्ध राजा वीरसिंह जू देव प्रथम व दीवान हरदौल सिंह यहां के इतिहास में अपूर्व योगदान रखते हैं[1] । धर्म , भक्ति प्रेरणा केश्रोत बुन्देलखण्ड के ओरछा नगर में राम राजा मंदिर , चतुर्भुज नाथ का मंदिर , लक्ष्मी-नारायण मंदिर (चित्र सं0 3) इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं । यहां के अन्य प्र तिष्ठानों में जहांगीर महल , केशव भवन , राजमहल और राय प्रवीण का महल भी यहां की संस्कृति के प्रतिरूप कहे जा सकते हैं ।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र का दूसरा प्रमुख नगर दतिया आज भी महाराजा वीरसिंहजूदेव के सौर्य और गौरव का गुणगान कर रहा है[2] । चारो-ओर सरोवरों से घिरा नगर यहां की शोभा में वृद्धि करता है । लाला का ताल , बंदरिया का ताल , और करन सागर आदि यहां के गौरव के प्रतीक हैं । यहां का सात मंजिला पुराना महल (चित्र सं0 21) ऐतिहासिकता का जीता-जागता उदाहरण है । यहां की भूमि अपने अंचल में धार्मिक स्थलों को भी स्थान दिये है । यहां के बख्शी के महावीर , भैरव पहाडी , उडनौ की टोरियां , पीताम्बरापीठ एवं गोविन्द जी का मंदिर आदि लोगों की भक्तिभावना को आकर्षित कर ती है इससे यहां की लोगों की भक्ति भावना का आभास होता है । शक्ति के परीक्षण हेतु मल्ल युद्धों का आयोजन यहां कम महत्वपूर्ण नहीं रहा है । गामा जैसे पहलवान की जन्म एवं यज्ञ भूमि के रूप में आज भी सर्व-विख्या त है । लोकजीवन में अपना विशेष महत्व रखने में यहां का संगी-तमय वातावरण अपना सदैव योगदान देता रहा है । बुन्देलखण्ड के अन्य लोक संस्कृति के प्रतीक खजुराहो , चन्देरी , महोवा , कालिंजर , देव-गढ , कुण्डेश्वर आदि जनमानस को अपने वैभव एवं उपलब्धियों से आकर्षित करते हैं जो पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण माने जाते हैं ।

1- राममित्र चतुर्वेदी "ओरछा" पृष्ट 2

2- एम0 सी0 राय चौधरी "पालिटिकल हिस्ट्री औफ एन्सिएण्ट इण्डिया"

बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध स्थलों , धार्मिक भक्ति भावना एवं साहित्य की प्रेरणा को देखकर यहां के लोक पक्ष का महत्व इतना अधिक हो जाता है कि यहां की रूढियां , परम्परायें , मान्यतायें अपना अलग से महत्व रखते हैं[1] । तीज-त्योहारों , उत्सवों , पर्वों आदि के माध्यम से यहा की लोक रंजित भावनायें वहां की वस्त्रों , आभूषणों एवं अन्य कलात्मक वस्तुओं एवं शिल्प पर अपनी छाप छोड देती हैं । मंदिरों एवं मकरवों (चित्र सं0 3,37, 67,70) में लोक चित्रकला का पक्ष खुलकर सामने आया है । मकरवों चित्रित लोकचित्रकला ऐक ऐसे पक्ष को प्रस्तुत करने में सहायक हुई है जिसको देखकर दर्शक भावविभोर हो जाता है । यहां के लोगों की दिनचर्या में कला का पक्ष जुडा रहता है । लोकगीतों जिनमें कृषि , स्वास्थ्य एवं मांगलिक अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों पर हृदय स्पर्शी भावनायें इस प्रकार उभरती हैं जिसप्रकार राजस्थान के फड पढने वाले एक विशेष पौराणिक एवं वीरगाथाओं को गाकर वहां की लोक संस्कृति को आज भी लोक जीवन में बिखेरते हैं ।

बुन्देलखण्ड के प्रत्येक क्षेत्र वहां के लोकपक्ष का स्वरूप उनकी उपरोक्त सभी बातों में इतना झलकता है कि वह स्वतन्त्र रूप से कलापक्ष का एक उदारण बन जाता है । मौसमानुकूल ऋतुओं में गाये जाने वालेगीत उनकी विभिन्न दशाओं व मानव जीवन में उनके प्रभावों को ऐसे सहजरूपों में व्यक्त किया जाता है कि उनका जोकपक्ष हृदय की अनुभूतियों के पवित्रतम रूप को सामने रख देता है[2] ।

बुन्देलखण्डी लोकगीत , लोक रागनी और तडाका इसके ऐसे उदाहरण हैं जिनसे चित्रकारों को असंख्य विषय मिले हैं । विजावर ,छतरपुर मऊरानीपुर , टीकमगढ , झासी और कालपीतक इसका प्रभाव है । गीतों मेंटिप्पे भी लोक भावनाओं का एक स्वरूप है ।

1- डा0 आनन्दकृष्ण "सर्वे ओफ राजस्थानी पेन्टिंग" (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) अध्याय 2

2- कलानिधि भाग - । अंक 32,33

यहां के लोकपक्ष में सूक्ति साहित्य एवं ज्योतिष साहित्य भी मिलता है । लौकिक भक्तिभावना से प्रेरित श्रीमद् भागवतगीता ,रामचरितमानस , जनभावनाओं का प्रतीक बन गई है । राम और कृष्ण से सम्बन्धित भक्तिभावना इतनी प्रचलित है कि वह यहां के प्रत्येक उपक्रम में सामने आती है । यहां के प्रत्येकपूजाग्रहों में इन विषयों को चित्रकार ने अपनी तूलिका से चित्रित किया है[1] । इसके साथ इन विषयों पर आधारित लोकगीतों और लोकनृत्यों के माध्यम से ऐसा माधुर्य प्रस्तुत कर दिया जाता है कि जिससे साक्षात राम और कृष्ण लीला जैसा स्वभाविक रूप सामने उभरने लगता है[2]। चित्र के माध्यम से विषय को स्पष्ट करने में मानव सत्य की अनुभूति प्राप्त करता है इसी से मानवजीवन में ईर्ष्या, ग्लानि ,वीरता और प्रेम आदि भावों का प्रस्फुटन चित्रकार की तूलिका द्वाराप्रभावोत्पादक शैली में दर्शित होता है, जिससे क्षैत्रिय धरातल के अन्तस पर उसकी झांकी प्रतिबिम्बित रहती है ।

यह तो सर्वविदित है कि बुन्देली चित्रकला का श्रोत भित्तिचित्रों में है परन्तु लोक साहित्य उसका एक ऐसा आधार बना है जिसके महत्व को स्वीकारना ही पडेगा । चित्रकला का इतिहास उसी समय से प्रारम्भ हो जाता है जब कि मनुष्य गुफाओं में रहता था और विशेष सामग्री न होते हुये भी स्थानी रंगों एवं उपलब्ध सामग्री को ही अपना साधन मानता था उस समय मनुष्य कुछ करते हुये भी इस बातसे अनभिग्य था कि वह क्या कर रहा है । अपने विचारों में आयी टेढी-मेढी रेखाओं को उसने खींचकर तत्कालीन परिस्थितियों से अवगत कराने का पूर्ण प्रयास किया है । आज भी रेखाचित्र हमलोगों के लिये ही नहीं वरन् चित्रकला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं[3] ।

1- डा० आर०पी०तिवारी"भारतीय चित्रकला और उसके मूलतत्व"पृष्ट 25

2- मंदिरों में चित्रित लोकचित्र विशेष दृष्टव्य

3- डा० जगदीश गुप्त "भारत की प्रागैतिहासिक चित्रकला" पृष्ट 203-211

उस काल से लेकर आजतक मानव अपने जीवन को सुलभ बनाने के प्रयोजन से इस स्थिति तक पहुंचा है कि जहां उसके अन्दर स्वाभाविकता से हटकर कृत्रमता , प्रकृति से हटकर बनावट , प्राचीनता से हटकर नवीनता उसका लक्ष्य बन गया है जिससे लोकपक्ष को आधात हुआ है ।

लोकजीवन का श्रंगारिक पक्ष भी कम महत्वपूर्ण नहीं है उसमें क्षेत्रिय लालित्य छिपा रहता है[1] । बुन्देलखण्ड के जीवन का यह पक्ष वहां के सभी उत्सवों एवं मांगलिक कार्यक्रमों में सामने आता रहता है । स्त्रियों के श्रंगार से सम्बन्धित सभी उपादान जिनमें वस्त्र , आभूषण , मेंहदी , लीला गोदना , महावर केशसज्जा आदि ऐसे उपादान है जिनमें उनकी विशेषता आज भी दर्शक को आकर्षित करती है । घरों के दरवाजों , खिडकियों एवं दीवारों पर तीज-त्योहारों पर अलंकारिक रूप प्रस्तुत करके यहां की मातायें एवं बहिने लोक जीवन में आनन्दमय रसधारा प्रवाहित करती हैं । पट्टों , पर्दों एवं आंगनों में भी इसका महत्वपूर्ण रुप प्रदर्शित होता है[2] । यह उल्लेखनीय बात है कि लोग परम्परावादी हैं जिससे उन की संस्कृति की छाप समस्त लोकजीवन पर अवलोकित होती है । यहां के जनमानस पर लोक संस्कृति का पूर्ण प्रभाव है तथा जन्म से मृत्यु तक पालकी से शव यात्रा तक एवं सामाजिक धार्मिक घटनाक्रमों में लोकजीवन का अवलोकन किया जा सकता है । शादीविवाह के अवसरों पर भवनों के मुख्य-द्वारोंके , दीवारों को अलंकृत करने की एक विशेष परम्परा यहां पर अवलोकित होती है कन्या पक्षवाले वर पक्ष के स्वागत में गीतों की पंक्तियों को दीवारों पर अंकित करने के साथ-साथ गणेश , महादेव , एवं अन्य देवी देवताओं के चित्र चित्रित कर अलंकारिक रूप प्रदान करते हैं ।

1- गोरेलालतिवारी"बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ट 130-132

2- रामगोपाल विजयवर्गीय"राजस्थान की चित्रकला" पृष्ट 26

भित्ति चित्रों में लोकपक्ष :-

बुन्देलखण्ड के प्रतिष्ठानों में जिनमें वहां के प्रमुख मंदिरों को ही धार्मिक लोकभावना के पक्ष को चित्रित करने का स्थल बनाया गया है सभी वैष्णव व धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत भक्तिभावना इन चित्रों में है । ओरछाका रामराजा मंदि , चतुर्भुजमंदिर और लक्ष्मीनारायण का मंदिर (चित्र सं0 3) जिनमें कृष्ण लीलाओं रामलीलाओं एवं समस्त देवीदेवताओं के लोक कथानकों के सम्बन्धित विषयों एवं पशु-पक्षियों का अंकन प्रस्तुत किया गया है । भित्ति चित्रण इसका एक ऐसा उदाहरण है जिसमें यहां की लोक भावनायें बिखरी पडी हैं । यहाँ के चित्रों में विषय भक्तिभावना के तो हैं ही पर उनका स्वरूप नितान्त ऐसा है कि जो परम्परागत रूप से इस क्षेत्र को प्रभावित करता आया है[1]

स्त्रियों के लम्बे कद , सपाट स्थानीय रंगों का प्रयोग , मोटी वाह्य रेखाओं व आभूषणों और अलंकरण का प्रभाव इन आकृतियों में लोक पक्षीय गरिमा को प्रस्तुत करता है[2] । वृक्षों , पशु-पक्षियों का अंकन करते समय चित्रकार ने उन्हें अलग-अलग बतोने के लिये चित्रों के नीचे कुछ लिख भी दिया है । चौपाइयों एवं दोहों के माध्यम से चित्रों के कथानकों को चित्रकार ने प्रदर्शित करने का पूर्ण एवं सफल प्रयास किया है । बुन्देलखण्ड की प्रमुख पोशाकों प्रस्तुतीकरण में चित्रकार ने कहीं भी भूल नहीं की है । स्त्रियों की पोशाक में ओढनी , लहंगा , ब्लाउज तथा पुरुषों के साथ साफा , चुन्नटदार कुर्ता और कुछ चुस्त पाजामा व कमर में पटका प्रमुख रूप से चित्रों में देखे जा सकते हैं । यहां की यह वेश-भूषा लोक पक्ष की पुष्टि करती है (चित्र सं0 5,9,57,58) चित्रकार ने इनकी कहीं भी अवहेलना नहीं की है बल्कि वह इतना सजग रहा है कि पुरुषों की आकृतियों में मधुकरशाही तिलक , फर्रे जैसी मूछे (चित्र सं0 96) अनायास ही उसकी सजगता का आभास करा देती है[3]।

1- डा0 रामअौतार अग्रवाल"मारवाडी म्यूरल्स" पृष्ट 60,61
2- अम्बिकाप्रसाद वर्मा "ओरछा की चित्रकारी" पृष्ट 69-72
3- ऐतिहासिक कथानक के आधार पर आधारित चित्रआकृतियों व पुरुषों का स्वरूप विशेष दृष्टव्य

बुन्देलखण्ड में दतिया भी एक ऐसा स्थान है जहां कि बहुत से ऐसे प्रतिष्ठान हैंजिनमें लोकपक्ष की चित्रकारी का और भी विकसित रूप देखने को मिलता है । यहां के शासकों की मरु भूमि पर स्थित मकबरा आदि ऐसे उदाहरण हैं जिनमें भित्ति चित्रण परम्परा के तत्कालीन अद्भुत नमूने (चित्र सं0 28 से 30) उपलब्ध हैं[1] । मकरवों के छतरी की छत में अन्दर की ओर जहां की शास्त्रीय प्रणाली के अनुरुप स्वतन्त्र दतिया शैली के भित्ति चित्र बने हैं । आज भी अपने उत्कर्ष की याद दिलाते हैं पर जहां तक इन चार मकरवों के के वाह्य वरामदों के चित्रों का प्रश्न है उनमें लोकचित्रकारी हुई है जो अधिक प्राचीन भी नहीं है । लोकपक्ष को प्रस्तुत करते हुये यहां की चित्रकारी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है उन में चित्रित विषय यहां की धार्मिक भावना के द्योतक हैं । राम और कृष्ण के जीवन पर आधारित चित्र (चित्र सं0 28,30) बडे ही श्रद्धा-भाव से बनाये गये हैं तथा देवी-देवताओं के अंकन में भी चित्रकार नेइसी भावना को महत्व देते हुये अपनी तूलिका का विषय बनाया है । मानव आकृतियां भी भक्ति और प्रेम के प्रतीक बन गई हैं लेकिन उनमें लोकपक्ष इतना उभरा हुआ है कि कलाविज्ञ उनको देखकर आनन्दित हो उठते है[2] ।

यही नही चित्रकार ने पशु-पक्षियों के चित्रण में अलंकारिकता को अधिक महत्व दिया जिससे उसकी सूझ-बूझ की दाद देनी पडती है । बुन्देलखण्डी चित्रकार ने मानव चित्रण से परे पेड-पौधों , फल-फूलों आदि को चित्रितकर लोककला पक्ष को प्रकृति के योगदान से और सबल बना दिया है भित्ति चित्रण के ये अनोखे नमूने लोक चित्रकला के प्रति चित्रकार का यह अनुराग एवं उसकी भावनाओं के प्रस्तुतीकरण में अपूर्व योगदान देते हैं इनसे अलग अन्य छोट- छोटे ग्रामों और नगरों के देव स्थलों पर इसप्रकार के चित्रों की भरमार देखने को मिलती है ।

1- स्वयं सर्वेक्षण के समय विशेष दृष्टव्य

2- मायारानी शील "यशस्वी ओरछा" पृष्ट 83

बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों में ऐसी चित्रकारी रही है कि जहां का प्रत्येक स्त्री-पुरुष उससे सम्बन्धित है । उनमें जनभावना इतनी व्याप्त है कि धार्मिक भावना से अलग जादू-टोना , तन्त्र-मंत्र और झारना-फूकना भी लोक जीवन का एक पक्ष बन गया है । बीमारियों , अपशकुनों आदि पर इनसे बचने हेतु ऐसे कार्य या उपक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं जिनसे उनका निदान किया जा सके । कहीं- कहीं पर प्रतीक के रूप में जलती लकडी , काला रंग , घडा , जूता , गेरु , खडिया , दीपक , रोली और चावल आदि का प्रयोग कर उनसे अनिष्ट होने के निदान से मुक्ति हेतु रूप देकर जीवन को सुखी बनाने की कामना की जाती है । कभी - कभी स्त्रियां इस प्रकार की वस्तुयेंकिसी तिराहे या चौराहे पर रखकर जादू-टोना एवं टुटकों को सम्पन्न करती हैं । यह भी यहां के जीवन का एक ऐसा पक्ष है जो लोक भावनाओं का रहस्य प्रस्तुत करता है[1]

प्राय: लोककला में परिवर्तन यदा-कदा अवलोकित होता है[2] । बुन्देलखण्ड की लोककला में भी परिवर्तन बहुत कम हैं । उन सभी देवी-देवताओं , पशु-पक्षियों एवं अन्य विषयों को उसी रूप में चित्रित किया जाता है जैसा कि परम्परानुसार पहले से किया जाता रहा है । मेंहदी और लीला गोदना यहां के लिये इतना महत्वपूर्ण और लोकप्रिय श्रंगार हैं जिसमें स्त्रियां विभिन्न मान्यताओंके अनुसार प्रतीकात्म , अलंकारिक एवं श्रंगारिक भावना से इसको करती हैं । उनका अनुष्ठानिक महत्व तो है ही पर मनाविनोदार्थ भावना भी कहीं न कहीं उसमें छिपी रहती है । बुन्देलखण्ड के भित्ति चित्रों में उपरोक्त स्वरूप भी दशाये जाते हैं जो यहां की विशेषता है ।

1- डा0 लक्ष्मीनारायण भावसार"मालवा की लोकचित्रकला" अप्रकाशितशोध प्रबन्ध पृष्ट 210,211

2- डा0 गिरिराजकिशोर अग्रवाल "कला और कलम" पृष्ट 117

अमरागढ , गुरसराय , टहरौली , टोडीफतेहपुर , समथर एवं विजना के मंदिरों आदि के भित्ति चित्रों में भी लोक कला केनमूने दर्शनीय हैं । इसी प्रकार का इन स्थानों एवं टीकमगढ के मकरवों के भित्ति चित्रों में (चित्र सं0 36) लोक संस्कृति का प्रभाव दिखता है इस प्रकार बुन्देलखण्ड के भित्ति चित्रों में जहा एक ओर शास्त्रीय प्रणाली के चित्र अवलोकित हैं वहीं दूसरी ओर लोक चित्रकला उनसे अछूती नहीं रही है औरसर्वत्र इसका प्रभाव देखा जा सकता हैजिससे बुन्देलखण्ड कीचित्रकला को एक विशेष गौरव प्राप्त है ।

बुन्देलखण्ड में तो अबभी चित्रकला के कुछ ऐसे रूप प्रचलित मिलते हैं जिनका रूप किसी कलाकार के उर्वर मस्तिष्क की कल्पना से आविर्भूत हुआ ज्ञात नहीं होता और यह भी पता नहीं चलता कि यह कितने काल से प्रचलित चले आ रहे हैं जैसे कि सुरातू (सरतर) का चित्र है । दीपावली के दिन इसकी पूजा होती है । यह भित्ति पर चित्रित किया जाता है[1] । दूसरा चित्र वटवृक्ष का मिलता है दीपावली के दूसरे दिन चिरैया गोर की पूजा होती है इसमें वट का एक वृक्ष चित्रित कर उसपर चिडिया बैठाई जाती हैं । तीसरा चित्र नमे का है इसकी पूजा नवमी के दिन श्रावणमास में होती है यह स्त्री का चित्र है जिसके नीचे चौखाना खींचा जाता है जो कि वस्त्रों द्योतक है । चाथा चित्र तोता का मिलता है इसकी कल्पना भी निराली है[2] ।

बुन्देलखण्ड में ऐसे कितने ही चित्र प्रचलित हैं जिनकी कल्पना को लोककला को प्रभावित मानना पडेगा । ये धर्म की शरण पाकर अबतक जीवित चले आ रहे हैं इसका अभिप्राय यह नहीं कि सूत्रपात बुन्देलखण्ड में ही हुआ पर इतना निश्चित है कि इसका प्रचलन बुन्देलखण्ड से आदिकाल से चला आ रहा है ।

1- डा0 एस0पी0ग्रोवर"अवध की लोक चित्रकला(अप्रकाशित शोधप्रबन्ध)पृष्ट 113

2- रामचरण हयारण मित्र"बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य"पृष्ट 252

चित्रकला में लोककला एक अनुपम आदर्श अंक है । चित्रों के माध्यम से विश्व को मानव सत्य की अनुभूति कराई जाती है[1] । मानव जीवन में ईर्ष्या , ग्लानि , वीरता और प्रेम आदि भावों का प्रस्फुटन चित्रकार की तूलिका से लोक जीवन में प्रवाहित होता है । भारतीय चित्रकला में लोक चित्रकला का अपना महत्वपूर्ण योगदान है क्यों कि इसके अन्तस में क्षेत्रीय धरातल की वाह्य झांकी झांकती रहती है जिसका उदय समय-समय पर होता रहता है । बुन्देली चित्रकला में यहां के लोकपक्ष का बहुविधि प्रभावों में अंकन किया गया है ।

बुन्देलखण्ड के लघुचित्रों में लोक चित्रकला का पक्ष :-

सर-सरिताओं , वन-उपवन एवं विन्ध्याचल पर्वत श्रंखलाओं से घिरे बुन्देलखण्ड निवासी चाहे वे धनी हों या निर्धन , ग्रामवासी हों या नगरवासी , श्रमिक हो या असाध्य सभी अपने - अपने जीवन के अमूल्य समय में से कुछ छण लोक जीवन की क्रिया-कलापों में विभिन्न माध्यमों से उल्लासपूर्ण वातावरण के साथ व्यतीत करते हैं । ईसुरी के फाग , आल्हा-ऊदल के शौर्य एवं वीरतापूर्ण गीत यदि उनके मन को आनन्दित करते हैं तो दूसरी ओर देवी-देवताओं एवं पौराणिक कथानकों के आधार पर बनाये गये चित्रों(चित्र सं0 75,77,82,84,85) एवं गीतों की रचना लोकपक्ष के स्वरुप को प्रस्तुत करती है । इन चित्रों के अवलोकन एवं गीतों के श्रवण से हिन्दूधर्म के प्रति प्रगाढ आस्था , धार्मिक भावना एवं रीति-रिवाजों का स्वरुप सामने आ जाता है जिनके प्रति हर व्यक्ति का श्रद्धा होना स्वाभाविक है ।

1- डा0 आर 0 ए0 अग्रवाल "कला-विलास" पृष्ट 96,97

इनके माध्यम से चंगुलचिडिया , गामा पहलवान , सतीअनुसुइया , अहि-रावण , महाभारत की द्रोपती , राम-लक्ष्मण-सीता और स्थानीय जीव-जन्तुओं के अंकन का स्वरूप सामने आया है । लोकपक्ष को सबल बनाने में वैष्णव धर्म से प्रभावित देवी-देवताओं की आकृतियों का चित्रण (चित्र सं0७८,७8, ८५, ८८) तथा प्रतीकात्मक चित्रों का चित्रण का विशेष योगदान है[1] ।

अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कला की यह अनुपम धरोहर दो आधारों का सहारा लेकर आगे बढी जिसमें से एक है सास्त्री य तथा दूसरा लोकपक्ष । सास्त्रीय कला के संरक्षकों का इतिहास अवलो-कनार्थ उपलब्ध है परन्तु लोकपक्ष अपने इतिहास और अपनी ख्याति की अपेक्षा किये बिना ही लोक जीवन के परिवारिक , सांस्कृतिक एवं धार्मिक परम्पराओं के साथ मानव भावनाओं को स्पर्श करती सदैव आगे बढती रही यही लोकपक्ष का सबल स्वरूप हम सबके सामने प्रस्तुत होता है[2] ।

भारत की जनता के अन्तस में एक आत्मास्वरूप यह लोककला न जाने अतीत की किस स्वर्णिम बेला में हमारे उल्लास में समाहित होकर म मानवजीवन की अनुगामिनी बनकर चली आ रही है । इसमें किसी का अवलम्बन , आश्रय , प्रोत्साहन और प्रलोभन नहीं बल्कि यह स्वतन्त्र , स्वछन्द और सौम्य गति से निरन्तर आगे बढती रही । इतना अवश्य निश्चित है कि इसका स्थान मानव के परिवारिक जीवन एवं उसके आंगनों में है और इसी कारण घरेलू सम्बन्धों के साथ संस्कारों का अटूट स्वरूप इन में विद्यमान रहा है[3] ।

लोककला पक्ष को आगे बढाने में अधिकतर श्रेय बुन्देलखण्ड की ग्रामी ण जनता को है जिसने प्रभुत्वशाली वर्ग की पकड से उसकी रक्षा की और इसी कारण प्राचीन संस्कृति और कला की यह विरासत के रूप में यह लोक पक्ष बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जीवित रहसका[4] ।

1- श्रीमती कुसुम"मालवा की लोकचित्रकला" पृष्ट 189
2- एम0 एल0 गुप्ता"फ्रेस्कोज एण्ड वोल पेन्टिंग ऑफ राजस्थान"पृष्ट 6,7
3- शोध पत्रिका राजस्थान सरकार पृष्ट 40,41
4- रामचरण हयारणमित्र"शौर्य खण्ड" पृष्ट 49-55

परम्परागत हमारी लोक रुचियों को जीवित रखने के लिये विज्ञान दर्शन की दृष्टि से उसकी तुलना नहीं की जा सकती है । हमारे अज्ञात लोककलाकारों ने जिसमें नारियों की प्रमुखता रही है इस धरती के प्रति अपनी पवित्र निष्ठा को , अपने हृदय की भावनाओं कोइसके माध्यम से प्रस्तुत किया जिससे समस्त राष्ट्र चेतना आज तक प्रभावित है[1] ।

विभिन्न प्रदेशों में महाराष्ट्र की रंगोली , गुजरात में साँझिया राजस्थान में मांडने , उत्तर प्रदेश में चौक पूरना और बंगाल में अल्पना बनाना इसके साक्षात उदाहरण हैं । बुन्देलखण्ड क्षेत्र मेंराजस्थान , उत्त रप्रदेश व मध्यप्रदेशके मिले-जुले प्रभाव सामने आते हैं । वीरों की वीरोचि त गाथाओं एवं पहलवानों की मल्लयुद्ध की क्रीडाओं को लोकचित्रों में भली भाँति प्रदर्शित किया गया है । जिन्हें इस धरती के प्रतीकात्मक स्वरूप के साथ जनमानस के प्रमुखविषयों के रूप में मान्यता प्राप्त है ।

जहां एक ओर यहां पर लोककला का स्वरूप भित्ति चित्रों, पट्टों एवे खेल-खिलौनों व्यक्त किया गया है वहीं दूसरी ओर कागज व कपडों पर इसका चित्रण किया गया है । कहीं-कहीं पर भोजपत्रों , चम-णों व ताडपत्र आदि पर भी इनको अंकित किया गया है । कागजों में विशेषकर छतरपुरी कागज प्रयुक्त किया गया है जिसकी दो-तीन परतों को मिलाकर मोटा कर लिया जाता था । रंगों की पूर्ति में स्थानी मिट्टी व वनस्पति से प्राप्त रंग उनमें विशेष रूप से प्रयोग में लाये गये हैं । रेखा-ओं के अंकन में स्त्रियों ने सींक में रुई लपेटकर यह कार्य करती थीं या किसी लकडी को कूटकर महीन ब्रुश का रूप प्रदानकर उनको प्रयोग में लाया गया है । तालवेहट के किले एवं मंदिर का सर्वेक्षण करते समय कुछ लोगों ने इस बात की पुष्टि की कि पहले लोग छेवला (जिसे साधारण भाषा मे ढाक कहते है) की जड को कूटकर कूंची के रूप में प्रयोग करते थे[2] । इस प्रकार की हस्तनिर्मित कूंचियों का प्रयोग रंग भरने एवं रेखाओं के अंकन में किया जाता है ।

1-डा0 श्रीमती विनोदतिवारी"बुन्देलखण्डी एवं बघेलखण्डी लोकगीतों कातुल नात्मक अध्ययन" पृष्ट 3

2- सर्वेक्षण यात्रा दिनांक 27-12-82 केयर टेकर श्री रामनाथमिश्रा से प्राप्त

इसप्रकार के चित्रित एवं अंकित चित्र यहां की भक्तिभावना के पवित्रतम नमूने हैं । अधिकतर स्त्रियां इसी भावना से प्रेरित हो आभूषणों , मेंहदी , महावर , लीला गोदना और शृंगार करना आदि क्रियाओं के कार्यान्वयन को लोककला पक्ष कहा जा सकता है । लघुचित्रों में आकृतियों के अंकन में यह भावना स्पष्ट परिलक्षित हो जाती है । संख स्वास्तिक , आभूषण , ग्रहकुण्डलियां , चक्र , कलश आदि प्रतीकों का भी अंकन एवं चित्रण किया गया है । इसलिये भारतीय चित्रकला का इतिहास यहां के लोककला पक्ष के बिना अपूर्ण है[1] ।

यहाँ की लोककला विभिन्न नगरों एवं जातियों में अनेक तरह से सम्पादित एवं सम्मानित होकर आज भी हमारे लोकजीवन के साथ अभिन्न रुप से सम्बन्धित हैं । इस प्रकार हमारी लोक कला प्राचीनकाल से अनवरत रुप से अपने पूर्ण वैभव के साथ अपनी प्रतिष्ठा को स्थापित किये चली आ रही है । समय और राजनीति तथा विदेशी एवं निधर्मी शासकों के कारण यह विषय उपक्षित सा रहा था परन्तु इसकी जडें इतनी गहरी हैं कि किसी न किसी रुप में आज भी यह जनमानस के समक्ष जीवित है । बुन्देलखण्ड के लघुचित्रण में लोकपक्ष की इन भावनाओं से प्रेरणा मिलती रही है । उनमें इस धरती की महक एवं परम्परा का स्वरुप यत्र-तत्र अवश्य झलकता है । देवी-देवताओं के अंकन में यह भावपक्ष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचा है । चित्रकार ने लघुचित्रों के ऊपर लिखकर उनको और भी जनप्रिय कर दिया है यहां तक कि फल-फुलों से लदे वृक्षों के नाम भी उनपर लिख दिये गये हैं । इन चित्रों की पवित्रता धार्मिक भावना से इतनी अधिक जुडी है कि वे इतनी प्रचलित मालूम पडती है जो स्वत: ही उनके कार्यों में आ जाती हैं । भित्ति चित्रों से लघुचित्र संख्या में कम अवश्य हैं पर उनकी महत्ता लोकजीवन में उतनी ही बनी हुई है जितनी भित्ति चित्रों की ।

1- डा0 श्यामचरण दुबे "लोकगीतों के मान्य तत्व" पृष्ट 166-169

बुन्देली संस्कृति में गौरवमय स्वरूप को परिलक्षित करना चित्रकार ने अपना परम् कर्तव्य समझा है । व्यक्ति चित्रों के अतिरिक्त छोट-छोटे पट्टों एवं वस्तुओं आदि पर भी लोकभाव का प्रदर्शन यहां हुआ है । सर्वेक्षण यात्रा के दौरान विभिन्न स्थानों पर दर्शनीय मिट्टी के बर्तन जैसे घडा , पटका , सुराही आदि चित्रित एवं रंगविरंगी रेखाओं से अंकित देखने को मिलते हैं । चित्रकूट (बांदा) में मिलने वाले लकडी के पात्र व खिलौने बहुरंगों में चित्रित किये जाते हैं जिनको देखकर प्रत्येक प्राणी आनन्दित हो उठता है । इस प्रकार के वस्तुओं के प्रदर्शन से इनका सांस्कृतिक पक्ष प्रस्तुत हो जाता है[1] ।

1- वार्षिकी 62"ललितकला एकादमी राजस्थान" पृष्ट 5,6

बुन्देलखण्ड की
लोक चित्रकला में
प्रयुक्त सामग्र व विशेषतायें :--
==========

चित्रकला के किसी भी स्वरुप को चाहे वह सास्त्रीय हो या लोकपक्ष , प्रस्तुत करने में साधक को अपनी साधना के प्रस्तुतीकरण के लिये किसी न किसी वस्तु को माध्यम बनाना पडता है । बुन्देलखण्ड के लोक चित्रों में रंगों व रेखाओं को मौलिकता प्रदान करते हुये अपने माध्यम को चित्रकार ने आभाषित करा दिया है ।

यहां के लोकचित्रों में पृष्टभूमि के अनुसार ही रंगों का प्रयोग किया जाता है जिसमें सफदे , हरे एवं नीले रंग कीअधिकता होती है , कही-कहीं पर लाल जामुनी एवं काला रंग बहुतायत के साथ प्रयोग में लाया गया है । प्राय: अधिकतर चित्रों की पृष्टभूमि सफेद ही छोड दी जाती है । आकृतियों में रंग भरकर उनको रेखाओं के माध्यम से उभार कर बनाया जाता है । वाह्य रेखाओं के अंकन में काला या कोई अन्य गहरे रंग का प्रयोग किया जाता है । कुछ चित्रों को देखने से प्रतीत होता है कि उसके अग्र एवं पृष्टभूमि में रंग भरकर विषय को प्रमुखता देने के लिये अत्यधिक चटकीले रंग प्रयोंग में लाये जाते हैं ।

आकृतियों की स्वाभाविकता को ध्यान में न रखकर श्रृंगार एवें अलंकरण का भाव विशेष दृष्टिगत होता है । दीवारों पर चित्रकार ने स्थानीय मिट्टी के रंगों का अधिक प्रयोगकर अपनी भावनाओं को चित्रित किया है । महलो , हवेलियों और दुर्गों तथा मकरवों में इस प्रकार का चित्रण स्वतन्त्र रुप से किया गया है । कहीं-कही चित्रकार ने अपनी कुशलता का प्रदर्शन लोककला से युक्त अच्छे चित्रों का चित्रण कर किया है जिससे उनकी कुशलता की सराहना करनी पडती है ।

बुन्देली वेश-भूषा एवं वहाँ का प्राकृतिक परिवेश उनके साथ इस प्रकार सामने आता है कि क्षेत्रीय स्वरुप आँखों के सामने नाचने लगता है[1] लघु चित्रों में देवी-देवताओं का अंकन और परिस्कृत होकर सामने आया है। रंगों का सपाट स्वरूप व रेखाओं का मोटापन इनके सौन्दर्य को कम नहीं करता बल्कि जनसाधारण को इतना प्रभावित करता है कि कोई भी चित्र बिना आकर्षित किये नहीं रहता है। यहाँ की प्रचलित राग-रागनी एवं वाद्य यन्त्रों के प्रयोगों जिनमें ढोलक, मंजीरों के स्वरों का समावेश होता है और जिससे सभी प्रभावित होने लगते हैं।

चित्रकारों की तूलिका से परे परिवारों में विशेष अवसर पर बनाये जाने वाले अनुष्ठानिक प्रतीक चिन्हों का माध्यम रंगों से हटकर हल्दी-चूना, चावल का एपन तथा सूखे आटे आदि के द्वारा महिलायें अपने भावों का प्रदर्शन करती हैं[2]। कुछ विशेष अवसरों पर दीवार पर गोबर आदि का लेप कर चावल के एपन से या कारोच से भी चित्रण किया जाता है। बच्चों के जन्म के समय मिट्टी के बर्तन पर गोबर से रेखांकन कर उनपर जौ - चावल आदि लगाकर सुख-शान्ति व सौभाग्य के प्रतीक चिन्ह बनाये जाते हैं।

लोककला पक्ष के अंकन में प्रयुक्त सामग्री के अन्तर्गत बनी तूलिकायें जो कि प्राय: सींक के ऊपर या कभी अंगुलियों, तिनकों या लकड़ियों के मुंह को छेदकर या उनपर रुई लपेटकर वारीककरके तैयार की जाती है[3]। चित्रकार ने अच्छे चित्रण के लिये बालों की तूलिका का प्रयोग किया है। लघुचित्रों एवं महलों और किलो में जो चित्र सास्त्रीय पद्धति पर बने हैं उनमें जितनी बारीकी और रंगों स्वच्छता है उसी प्रकार की कलात्मक व लोक भावात्मकता का पक्ष भी चित्रकार ने हर समय स्मरण रखा है।

1- सूचना व प्रसारण विभाग "विन्ध्यप्रदेश-ओरछा" पृष्ट 12

2- प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर "ढोलामारु, मधुमालती कथा" पृष्ट 34-45

3- डा0 जयसिंह नीरज "राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य" पृष्ट 54

बुन्देलखण्ड की चित्रकला ने लोक भावना की अभिवृद्धि वहां के सामाजिक , सांस्कृतिक , धार्मिक और दैनिक विषयों हुई है[1] । चित्र कार लोकपक्ष से इतना प्रभावित व संचालित हो गया कि उसने अपनी भावनाओं का प्रदर्शन आकृतियों के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया । मानव आकृतियों के साथ पशु-पक्षियों के चित्रण न विषयवस्तु को और उभार दिया । पशुओं में गाय , बैल , हाथी , घोडा प्रमुखता के साथ चित्रि त किये गये हैं जबकि पक्षियों में हंस , मोर , तोता एवं बगुले आदि का अंकन चित्रों के आकर्षण को बढा देता है । इसप्रकार की विषयवस्तु लोक पक्ष के अनुरुप ही कुछ स्त्रियों के अनुसार चित्रों में रखे जाते हैं । सबसे बडी बातयह है कि समय सही ज्ञान कराने में चित्रकार नेतनिक भी भूल नहीं की है । दिन और रात्रि का अलग-अलग आभास कराने के लिये चांद-तारे को दिखलाकर सही भेद प्रस्तुत करने मे यहां का चित्रकार पूर्ण सफल रहा है । झांसी , टीकमगढ , ओरछा आदि स्थानों तथा उसके आस-पास तो लोक चित्रकला का व्यापक रूप बीज-त्योहारों ,पर्वों एवं वृतों के अवसर पर देखा जा सकता है जिसे चित्रकारों ने रंग और तूलिका के माध्यम से चित्रित कर प्रस्तुत किया है ।

यह विशेष गौरव की बात है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र सदैव से अपने सांस्कृतिक विकास व उसकी उन्नति के प्रति जागरूक रहा है । यदि हम यहां के जनजीवन का विस्तार से अध्ययन करें तो पायेगे कि यहां जन्म से लेकर मृत्यु तक तथा अन्य विशेष उत्सवों व पर्वों के अवसर पर धार्मिक अनु-ष्ठान एवं पूजन आदि की क्रियायें बडे ही विधि-विधान के साथ सम्पन्न की जाती हैं इसका श्रेय बुन्देले नरेशों को भी दिया जाय तो अतिशयोक्ति न होगी । क्यों कि इनके संरक्षण से चित्रकार को सदैव बल व प्रोत्साहन मिला है और इसीलिये बुन्देलखण्ड का यह गौरवशाली पक्ष आज भी यत्र-तत्र बिखरा पडा है ।

1- डा0 श्रीमती विनोद तिवारी"बुन्देलखण्डी एवं बघेलखण्डी लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन" पृष्ट 193,194

बुन्देलखण्ड विभिन्न नगर व रियासतें आज भी अपने अंचल में यहां परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों को संजाये हुये हैं । यहां के महलों, किलों तथा मंदिरों के चित्रकारी के विषयों में लोकभाव पक्ष की लेशमात्र भी अवहेलना नहीं की गई है[1] । यहां के जनजीवन की झांकी रीति एव श्रंगार के विषयों को भी इनके अन्दर समाहित किया गया है । लोकपक्ष से उपरोक्त विषय अछूते नहीं रहे हैं और न ही ये अपवाद के विषय रहे हैं वरन् इससे यहां की संस्कृति की झांकी स्पष्ट अवलोकित हो जाती है । इसप्रकार की विषय वस्तुओं में मानव आकृतियों के स्वरूप पहनावा, आभूषण आदि भी लोक भावना से मण्डित हैं ।

चित्रकार भिति एवं लघु चित्रण में समान रूप से लोक पक्ष के प्रति जागरूक है[2] । यह अन्तर राजस्थान एवं पहाडी विभिन्न शैलियों के चित्रों को देखकर आसानी से समझा जा सकता है । यहां की चित्रकला की समीक्षा कलामर्मज्ञों द्वारा तभी सम्भव है जबकि वह यहां के प्रत्येक स्थान का सर्वेक्षण करें । यहां का चित्रकला का इतिहास इस बात का द्योतक है कि यहां की कला का स्वरूप आदिकाल से लेकर आजतक लोक भावना का प्रेरक एवं मूल श्रोत रहा है । इसको सबल बनाने में यहां का साहित्यिक पक्ष भी पूर्ण सहयोगी रहा है । यहां का साहित्य इस पक्ष को और भी अधिक जागृत कर देता है । यह सत्य है कि चित्रकार ने अपने अंकन में कल्पना को अधिक महत्व व स्थान दिया है । तथा उसके साथ लोककला पक्ष को किसी न किसी अंश में जोड दिया है । यह बुन्देलखण्ड की चित्रकला के लिये गौरव की बात है । यहां के चित्रकार ने लोककला पक्ष को महत्व देते हुये उसे भित्ति एवं लघु चित्रपेंज्ञ में यथोचित स्थान दिया है ।

1- प्राचीन अवशेष विशेष दृष्टव्य

2- रामचरण हयारण मित्र"बुन्देलखण्डी चित्रकला{बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य}" पृष्ट 254,255

यहां की प्रचलित लोकचित्रित परम्परा में इसको भुलाया नहीं जा सकता । बुन्देलखण्ड की शैली में तो उसका शास्त्रीय स्वरूप प्रस्तुत हुआ ही है साथ ही लोकपक्ष उसके उद्दीपन के रूप में सहायक सिद्ध हुआ है और इस पक्ष के आ जाने से चित्रों का माधुर्य बढा है[1] । उनके वाह्य रूप विशेषकर ओरछा के चित्रों को देखकर ऐसा लगता है कि यहां कोई परिष्कृत शैली नहीं थी जिससे लोककला पक्ष भी पनप रही थी परन्तु दतिया में इसका उत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत हुआ है । इस शैली का आधार ही लोकपक्ष एवं साहित्यिक पक्ष के रूप पर टिका हैजिसे इस क्षेत्र की एक विशिष्ट शैली के रूप में जाना जाने लगा है[2] ।

1- गोरेलाल तिवारी"बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास" पृष्ट 129,130

2- कलानिधि भाग - 1 पृष्ट 32

बुन्देलखण्ड की कला में लोक कला पक्ष का महत्व :-

बुन्देलखण्ड की कला में लोक कला पक्ष यहां की संस्कृतिक मर्यादा है जिससे मर्यादा के अनुरुप अपने मूलरुप में एक ही भावना कार्य करती रही है जो कि केवल यहां के लिये ही नही वरन् समस्त राष्ट्रीय महत्व को बढावा देती है । इस सांस्कृतिक भाव-भूमि कोआभीसित करके जिसप्रकार इसको धरोहर का रुप दिया है वह अति ही महत्वपूर्ण है । परम्परा ने इसको बल देकर जनजीवन में समाहित करके धर्म एवं कर्म की भावना से इसे जोड दिया है इसी लिये इसको महत्वपूर्ण स्थान दिलाने में यहां की सामाजिक एवं धार्मिक भावनायें अग्रगणी हैं ।

यह सत्य है कि जहां एक ओर बुन्देलखण्ड के महलों एवं किलों में बने चित्र गौरव एवं प्रतिष्ठा के प्रतीक हो सकते हैं वहीं दूसरी ओर मंदिरों और मकबरों में बने चित्र इस भावना से अलग हटकर लोकजीवन की झांकी को प्रस्तुत करने में पूर्ण सार्थक है । जब यहां की शैली अपने चर्मोत्कृष्ट पर थी तो साहित्य के विकास से रीति और श्रंगारिक विषय भी चित्रकारों के प्रिय विषय बने थे । भागवत पुराण , गीतगोविन्द , रसिकप्रिया , रसराज , विहारी सतसई आदि ग्रन्थों के आधार पर चित्रों की रचना इस श्रंखला की एक प्रमुख कडी है लेकित यह गौरव का विषय है कि उनमें लोकपक्ष की अवहेलना नहीं हुई बल्कि उसके प्रति चित्रकार सदैव सजग रहा है । महाराजा शत्रुजीतसिंह , वीरसिंहदेव और महाराज पारिक्षित के शासनकाल में इसका स्वरुप और भी परिस्कृत हो गया । इस पक्ष को सबल बनाने में संगीत का पक्ष भी सहायक सिद्ध हुआ है । राग माला , बारहमासा , चित्रावली में यह और भी महत्वपूर्ण हो गया है । छोटी-छोटी भावनाओं ने हृदयस्पर्शी बात कहकर यहां के लोग गागर में सागर कहावत को चरितार्थ कर देते हैं जिसे चित्रों में भी देखा जा सकता है ।

इसप्रकार यहां के चित्रों से दर्शन एवं अध्यात्म का भी ज्ञान होता है । यहां के प्रतापगढ दुर्ग में जो कुतबखाना था वह दतिया राजाओं का ग्रन्थालय जिसमें लगभग 2387 हस्तलिखित ग्रन्थ व चित्रित सामग्री थी[1] । यह ग्रन्थ नुमाइशी वस्त्रों में ‘लाल कपडों’ बांधकर रखे जाते थे इनका सांस्कृतिक परम्परा के प्रति अटूट प्रेम इस ग्रन्थालय से स्पष्ट हो जाता है साहित्यिक और धार्मिक पृष्टभूमि में निर्मित यहां के चित्र लोकभाव पक्ष के जीते-जागते उदाहरण हैं । उनको महत्व की दृष्टि से आंकते समय उनमें प्रयुक्त सामग्री , विषय एवं परिस्थिति आदि को ध्यानमें रखना आवश्यक है । आज भी जो चित्र विभिन्न संग्रहालयों में संग्रहीत हैं उनको देखने से इस बात की पुष्टि होती है कि बुन्देलखण्ड की भूमि के कण-कण से लोक-भाव को प्रेरणा मिलती रही है[2] ।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के प्रमुख प्रतिष्ठानों का सर्वेक्षण करने से ज्ञात हुआ कि इस क्षेत्र के चित्र धीरे-धीरे नष्ट होते जा रहे है । राजा - महाराजा अपनी - अपनी रियसतों को छोडकर नगरों में बस गये तथा उनके महलों , किलों एवं मंदिरों के सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहोने के कारण उनके वैभव के साथ - साथ उसमें चिचित चित्रकला के नमूने धीरे-धीरे नष्ट होते जा रहे हैं । राजा - महाराजाओं ने इस ओर से अपना ध्यान बिल्कुल हटा लिया है । सुसंस्कृत से परिपूर्ण स्थानों पर मानवजीवन का निवास न होकर जानवरों की या चरागाह बन गई है या खण्डहर होने के कारण वे बदमाशों केअड्डे बन गये हैं । इसे क्षेत्र के लिये दुर्भाग्य हिही कहा जा सकता है । यहां का जनजीवन भी इससे परे है । वह स्वयं भी इसको किसी प्रकार सुरक्षित रखने मे सक्रिय नहीं है । सरकार की उपेक्षा से बुन्देलखण्ड क्षेत्र की यह अमर धरोहर जो कभी अपने गौरव से जनमानस को प्रभावित करती थी आज सुरक्षा की दृष्टि से वंचित है ।

1- एडविन टी एट किशन "बुन्देलखण्ड-डेसक्रिप्टिव एण्ड हिस्टोरिकलएकाउन्ट ओफ दी नार्थ वैस्टर्न प्रोविसिज" पृष्ट 559

2- वाचस्पति गैरोला "भारतीय चित्रकला " पृष्ट 228

धीरे-धीरे यह विलीन सी होती जा रही है । इस क्षेत्र की इस सुसंस्कृति को सुरक्षित रखने के लिये हम सभी को इस ओर प्रयास करना चाहिये । उसके प्रति किसी भी प्रकार का कोई उपेक्षा का भाव नहीं होना चाहिये और तभी इसकी गौरवमयी गाथा को जो सदैव प्रेरणा का स्रोत रही है जन-मानस के समक्ष प्रस्तुत कर सकें गे ।

अध्याय-षष्ठम

बुन्देल खंड चित्रशैली का तुलनात्मक स्वरूप

बुन्देल खण्ड कलम का अन्य कला शैलियों के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक महत्व व योगदान ।

अध्याय षष्ठम :-

बुन्देलखण्ड चित्रशैली का तुलनात्मक स्वरूप :--

कला मानव सभ्यता के साथ-साथ प्रकाश में आयी । पुरातनकाल से ही मनुष्य अपने हृदय की भावनाओं को रंग और रेखा के माध्यम द्वारा चित्रकला के रूप में उन्हें साकार करतारहा है । इस प्रकार मानव जात के इतिहास की पृष्टिभूमि में कलाओं का अपना विशिष्ट स्थान रहा है । आदि काल से आज तक इस धारा का श्रोत बहता चला आया है जिससे किसी भी देश की काल व संस्कृति एवं सभ्यता के दर्शन इसी के माध्यम से हो पाते हैं[1] ।

1- किशोरीलावैद्य -ओमचन्द्र हांडा"पहाडी चित्रकला " पृष्ट 109

प्रत्येक जाति का गौरव उसके इतिहास में छिपा रहता है तथा इस गौरव की रक्षा करना प्रत्येक मानव व जाति का पुनीत कर्तव्य है । भारत के किसी अन्य प्रदेश का इतिहास बुन्देलखण्ड के साथ तुलना नहीं क कर सकता है । वैदिक कालीन संस्कृति , साहित्य और इतिहास से लेक र पौराणिक , बौद्ध , जैन , मौर्य , हूण , चन्देल तथा आधुनिक साहि त्य व इतिहास में इसके नगरों व नागरिकों का वर्णन मिलता है ।

यहां की लाल माटी अमरशहीदों , साहित्यकारों , कवियों , एवं संगीतज्ञों की कर्मभूमि है । यही कारण है कि भारत का हृदय बुन्दे- लखण्ड अपनी वीरता , पराक्रम एवं शौर्य के कारण विश्व में अपना स्थान रखता है । इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहां के बुन्देलेशासक अप ने देश , जाति व जनता के सुख के लिये अपने सुख और वैभव का परित्या ग करते हुये प्रजा भक्ति का परिचय देते रहे हैं[1] । इस क्षेत्र को प्राचीन काल में दशार्ण तथा चन्देली राज्य कहा जाता था । चन्देलवंश के अन्ति म राजा परिमल चन्देल ने बुन्देलखण्ड के आठ किलों पर यशकीर्ति पताका फैराकर इसके गौरव को बढाया ।

महाराजा रुद्रप्रताप , मधुकरशाह ,वीरसिंहदेव , चम्पतराय , छत्रसाल जैसे वीरों के वरोचित लीलाओं केइतिहास की रंगभूमि का यही प्रदेश , झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के वीरगाथाओं से ओत-प्रोत है । उपर्युक्त बुन्देले शासक अपनी न्यायप्रियता , बुद्धिकौशल तथा वीरता के लिये बहुत प्रसिद्ध तो थे ही साथ ही इन्ही लोगों के शासनकाल में शिल्प संगीत , चित्रकला तथा साहित्य एवं व्यापार अपने पूर्ण यौवन पर था । अत: बुंन्देलखण्ड का यह युग स्वर्ण युग कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी बुन्देलखण्ड में अनेको ऐसे ठिकाने हैं जो उपर्युक्त परम्पराओं की जन्मस्थली हैं जिसमें कलाओं का समुचित विकास हुआ है ।

1- ईस्टर्न स्टेटस (बुन्देलखण्ड) गजेटियर पृष्ट 19 व 109

बुन्देलखण्ड की स्थापना के साथ - साथ यहां के शासक स्थापत्य मूर्ति शिल्प तथा चित्रकला के प्रति सदैव जागरूक रहे । यहां के महलों , मंदिरों , किलों , स्मारकों तथा अनेक भवनों में चित्रित कला का स्वरूप इतना भव्य व सुन्दर तथा अनुपम है जिससे इस क्षेत्र का गौरव बढ जाता है । प्राकृतिक एवं सास्कृतिक परिवेश मे बुन्देलखण्ड को विन्ध्यपर्वत माला की मान्यता एवं ऐतिहासिक महत्व में इसे भारतवर्ष का वक्षस्थल म माना गया है । इस क्षेत्र के विकास में इनका सहयोग पूर्ण सहायक सिद्ध हुआ है जिससे यहां की संस्कृति में परिपक्वता आ गई है । कलात्मक अभिरुचि का स्वरुप भिन्न - भिन्न चित्रों में एवं लघुचित्रों में इतना उभर कर सामने आया है कि इससे बुन्देलखण्ड शैली का अस्तित्व स्वतन्त्र शैली के रूप में दृष्टिगोचर होता है ।

बुन्देलखण्ड के प्रमुख ठिकाने ओरछा का किला ,और लक्ष्मीनारायण के मंदिर के भित्ति चित्रों में चित्रकला के अनुपम उदाहरण हैं इनमें राजा-रानी के व्यक्ति चित्र , लोक कथानकों से सम्बन्धित चित्र , दरबारी चित्र तथा युद्ध व शिकार आदि के चित्र चित्रित (चित्र सं0 ५ से 18) किये गये हैं । किले के दूसरे खण्ड के दो कक्षों में जो चित्र बने हैं वह विशेष दर्शनीय हैं (चित्र सं0 6 से 18) उनमें मृग-पक्षी , रानी , फल-फूल एवं मानव आकृतियों का स्पष्ट अंकन हुआ है । गायक,मोर, चंगुलचिडिया एवं पोलो खेलती स्त्रियां तत्कालीन स्थिति का सही आभास कराती हैं (चित्र सं0 6,11) ये चित्र लगभग 24 है । इसी प्रकार ओरछा के राजमहल में भी बुन्देलखण्ड शैली की बाइस कला बीथियां हैं इनमें चित्रकार ने विभिन्न विषयों पर चित्रण किया है[1] । इन चित्रों में चित्रशैली का स्वरुप स्पष्ट है । आकृतियों का स्वरूप भाव-भंगिमाओं के अनुसार मुखाकृति का चित्रण चित्रकार की अपनी विशेषता है जिनको देखते ही दर्शक ओरछा में स्थित मानवस्वरुप की स्पष्ट झलक देखलेता है ।

1- अम्बिकाप्रसाद दिव्य"ओरछा की चित्रकारी" पृष्ट 69,70

बुन्देलखण्ड के चित्रों को देखकर ऐसा आभास होता है कि यहां के चित्रों में अजन्ता के समान रेखाओं का अंकन किया गया है तथा रेखाओं में स्वभाविकता लाने का प्रयास करता हुआ चित्रकार दिखाई पडता है। एक क्रम चेहरों के अंकन के साथ रंगों की जमावट पूर्णत: समतल - तथा अलंकृत है[1]। आकृतियों के चित्रण में चित्रकार ने शारीरिक अनुपात का पूर्ण ध्यान रखा है परन्तु फिर भी कुछ आकृतियां छोटे कद में चित्रित की गई हैं। इन प्रतिष्ठानों के कमरों एवं दालानों जो कथरे बने हैं उनके रंगों में विशेषकर सिन्दूरी, गहरा बादमी, नीला और लाल रंग का अधिक प्रयोग किया गया है। आकाश को हल्के सपाट नीले रंग में दर्शाया गया है प्रकृति का रंग भी नीला रहा है जिससे समस्त चित्रों की रंगावली कुछ चटकीली प्रतीत होती है इन चित्रों के आधार पर ओरछा के भित्ति चित्र (चित्र सं० ५ से २०) बुन्देलखण्ड चित्रशैली में एक विशिष्ट पक्ष प्रस्तुत करते हैं। पशु-पक्षियों आदि के अंकन में भी चित्रकार ने बडी कुशलता के साथ अपनी तूलिका को चढाया है। रंगों को हल्का व गहरा प्रदर्शित करने के लिये प्रकाश व छाया दर्शाने की भांति रंगों में शेडिंग प्रक्रिया को अपनाया है जिससे चित्रों में सजीवता उभर आती है। इसप्रकार के चित्रों को ओरछा शैली के ही चित्र कहें तो गलत न होगा क्यों कि यह चित्र बुन्देलखण्ड की प्राचीन शैली के प्रतीक हैं।

इसीप्रकार ओरछा के ही लक्ष्मीनारायण मंदिर में आयरस प्रणाली पद आधारित भित्ति चित्र बने हैं जिनमें श्रंगार करती स्त्री जिसके सामने दूसरी स्त्री दर्पण लिये है। युवतियों की केश-भूषा और आभूषण क्षेत्रीय विशेषताओं से परिपूर्ण है इसके अतिरिक्त कृष्ण लीला, रामकथा, राज दरवार, फिरंगियों पर हमला तथा कुछ चित्र अपने मौलिक वैभव के साथ अंकित किये गये हैं। विषय वस्तु के अनुसार साज-सज्जा एवं गणवेश पर पूरा ध्यान चित्रकार ने दिया है[2]।

1- कलानिधि भाग - । पृष्ट 32

2- स्वयं सर्वेक्षण के दौरान विशेष दृष्टव्य

जैसे फिरंगियों के डेरों में मदिरा पान , नाच-गाना आदि का चित्रण तत्कालीन परिस्थिति से अवगत कराता है परन्तु इन चित्रो में इससे पूर्व के चित्रों की भाँति कला वह चित्र तो नहीं है पर तत्कालीन परिस्थितियों के चित्रों में चित्रण में चित्रकार सफल रहा है । इनके अतिरिक्त साही सवारी शिकार आदि के चित्रों का भी सफल अंकन है जिसमें तत्कालीन शाही वैभव , चित्रों अंकित वेश-भूषा , गणवेश एवं साज-सज्जा के माध्यम से स्पष्ट प्रस्तुत किया गया है । साधु-सन्यासी एवं प्रकृतिक दृश्य भी चित्रकार की तूलिका के विषय बने हैं[1] । राम और कृष्ण की लीलाओं के चित्रण में चित्रकार पीछे नहीं रहा वरन् इस प्रकार की विषय वस्तुओं को महत्व देकर अन्य विषयों को गौण रूप देकर स्थनों को भर दिया है इससे ओरछा के चित्रों की विषयवस्तु व्यापक हो जाती है लेकिन ओरछा की चित्रशैली में बुन्देलखण्डी कलम का उन्नयन नहीं है जितना कि दतिया के चित्रों में मिलता है[2] ।

ओरछा के बाद बुन्देलखण्ड का दूसरा प्रमुख प्रतिष्ठान दतिया महत्वपूर्ण है जहां पर दतिया चित्रशैली के रूप में यहां की चित्रकला ने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व प्राप्त किया है । दतिया के महाराज वीरसिंहजूदेव के राजमहल और मकरवों के चित्र इतने अच्छे बने हैं कि उसमें ओरछा के चित्रों से हटकर नयापन व रंग-रेखाओं की सुन्दरता व कुशलता का आभास होता है[2] । यहां के चित्रों के रेखांकन में बारीकी अधिक है जिसपर मुगल व राजपूत कलम का प्रभाव प्रदर्शित होता है यहां के चित्रों में स्थापत्य का स्वरूप भी अच्छा बनाया गया है जिसमें सफेद रंग की अधिकता है । यहां के मकरवों और राजमहल के चित्रों में मानव चित्रण में सुडौलता आंखे व भौंहे धनुषाकार , तनी हुई मूंछ तथा स्थानीय वेश=भूषा का प्रदर्शन पूर्ण कुशलता के साथ चित्रकार ने किया है ।

1- मायारानी शील "यशस्वी ओरछा" पृष्ट 44-83

2- मध्यप्रदेश गजेटियर "दतिया" पृष्ट 267

इनको देखकर ऐसा आभास होता है कि यहां के चित्रकार ने विभिन्नशैलियेा को आत्मसात कर रागमाला , बारहमासा , पहलवानी , उत्सव ,संगीत एवं अन्य अलंकारिक विषयों को बडे अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है । यहां के चित्रों की आकृतियों में चेहरा लम्बा , आखें कमल जैसी , नासिका नुकीली तथा रंग-रूप में चोकलेटी रंगका प्रयोग अपने में विशिष्टता प्रस्तुत करता है । जिसे राजपूत और मुगल कलम दोनों से हटकर अलग से पहचानाजा सकता है । कविवर मतिराम , विहारी आदि प्रसिद्ध कवियों के ग्रन्थों से प्रेरित साहित्यक प्रेरणा इन चित्रों में समा गई है[1] ।

पहाडी शैली में महाराजा संसार चन्द्र व सिख शैली में महाराजा रणजीतसिंह का जो स्थान है वही स्थान यहां की कला के विकास हेतु दतिया के महाराजा वीरसिंहदेव तथा ओरछा के महाराजा पारिक्षत का है । इनके प्रयासों से कला का परिपूर्ण विकास हुआ है । इस शैली के प्रसिद्ध चित्रकारों में टीकमगढ के रहने वाले रामदयाल खेरा और सुखदेव का नाम सर्वज्ञात है । दतिया की शैली ओरछा से अधिक साहित्यक , अलंकारिक व परिस्कृत है । क्यों कि इसमें लोकतत्वों के साथ - साथ साहित्य को अधिक आधार मिला । यहां के व्यक्ति चित्रों के अंकन में मुगलप्रभाव अधिक स्पष्ट झलकता है (चित्र सं0 97) परन्तु गामा , तुलसी , एवं उत्सव सम्बन्धी चित्रों में लोक तत्व की अवहेलना नहीं हुई है ।

दतिया चित्रशैली में आरम्भिक प्रभाव किसी न किसी रूप में चीनी यात्री आने के कारण पडा है । पर यह इसकी विशेषता है कि उसे दतिया शैली का रूप देकर चित्रकार ने अपनी सिद्ध कला काउदाहरण एवं प्रमाण प्रस्तुत किया है । दतिया में रचित बहुत से ग्रन्थ जिनमें रसराज,विहारी, सत्सई,भागवत,रसिकप्रिया आदि ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें नायक-नायिकाओं के स्वरूपों ,क्रियाओं एवं भावनाओं का सफल अंकन है ।

1- राममित्र चतुर्वेदी "ओरछा" पृष्ट 69,70

मौसमानुकूल विषयवस्तु को प्रमुखता प्रदानकर अधिक कल्पनाशील बनादिया है । मुग्धा , प्रौढा , सुखिया , परिकीयानायिका , अष्टयाम चित्रावली में कहानी कहती हुई प्रतीत होती है[1] । चित्रण से उनके हृदय की भावनाओं को चेहरे की भंगिमाओंके माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । आभूषणों के रूप में करधनी , कंगन , बिछुये एवं लच्छे आदि का चित्रण किया गया है ।

टीकमगढी तथा कालपी के बादमी कागजों पर चित्रों में नीति के दोहों पर आधारित भक्ति व प्रकृति के अंकन को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है जो अन्य शैलियों में कम दृष्टिगोचर होता है । इसप्रकार दतिया चित्रशैली का स्वरूप व अस्तित्व पूर्ण स्वतन्त्र है उसपर विभिन्न प्रभावों के साथ-साथ अपना निजस्व भी पूर्ण विकसित पाया जाता है[2]। इस शैली के बहुत से चित्र व्यक्तिगत संग्रहों व संग्रहालयों में बिखरे पडे है जिनके प्राप्त होने पर शैली की प्रमुखता और भी बढजायेगी । यहां के कलाकारों ने अनुपम कौशल प्रस्तुत करके इसके अस्तित्व को प्रमाणित कर दिया है ।

बुन्देलखण्ड के अन्य ठिकानों में टीकमगढ व बानपुर दो ऐसे उपठिकाने हैं जिनपर दतिया चित्रशैली का प्रभाव मिलता है वहां के व्यक्ति चित्रों व रंग-रेखाओं का समन्वय दतिया की भांति दर्शक को देखते ही नही मिलता जिसप्रकार दतिया के चित्रों में झलकता है इसीप्रकार बुन्देलखण्ड की अठकडियां जहाँ पर बुन्देले शासकों ने अपनी वीरता एवं शौर्य के साथ - साथ संस्कृति व साहित्य के प्रति भी अपना प्रेम व अनुराग प्रदर्शित किया है । यह आठ स्थान हैं टहरौली, चिरगांव , कर्री, दुरवई, विजना, बंका-पहाडी, टोडीफतेहपुर एवं पसरई ।

1- रायकृष्णदास "भारतीय चित्रकला " पृष्ट 5-19

2- ब्रासिलग्रे "राजपूत पेन्टिग" पृष्ट 2-4

इन स्थानों में से कुछ में संस्कृति व चित्रकला के अनुपम उदाहरण आज भी उनके दुर्ग , महलों व मंदिरों में देखने को मिलते हैं[1] । टहरौली के किले में दाउ आजू (दऊआजू) के डेरे में (चित्र सं० ५१) एवं मंदिर श्री ठाकुर रामजी विराजमान के अन्दर राम व कृष्ण की लीलाओं (चित्र सं० ५२ से ५८) शिकार व साही सेना आदि का अच्छा चित्रण है इसीप्रकार विजना के किले के अन्दर बने मंदिर में शिव-बारात (चित्र सं० ६५ से ६६) एवं हाथियों का सुन्दर चित्रण है ।

बोडीफतेहपुर के किले के एक सिरे पर बने तीन मंजिले मंदिर के ऊपरी दोनो खण्डों पर रामायण पर आधारित विविध चित्र तथा कृष्ण लीला के चित्र (चित्र सं० 57 से ६३) धार्मिक स्थलों के साथ-साथ ऋषि मुनियों का भी चित्रण किया गया है । इस प्रकार इन अठकडियों में भी अधिकतर चित्रण धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत है । रंग गहरे स्लेटी, कत्थई , लाल एवं कहीं - कही नीले-पीले रंगों का भी प्रयोग किया गया है । रेखायें बारीक तथा अधिकतर चेहरे एक रुखी अंकित किये गये हैं ।

इसी प्रकार झांसी के विभिन्न ठिकानों में रानीमहल के अन्दर बने लाल, हरे , पीले ,नीले चटेक रंगों में चित्रित अलंकारिक आलेखनों के साथ - साथ मानव आकृतियों एवं पशु-पक्षियों (चित्र सं० 31) के चित्रण में चित्रकार ने तूलिका के माध्यम से बारीक रेखाये खीचकर अपनी कुशलता का परिचय दिया है । यह चित्र संयोजन की एक अच्छी शैली प्रदर्शित करते हैं। झांसी के ही विभिन्न क्षेत्रों में अमरागढ के चित्र (चित्र सं० 51 से 55) समथर के चित्र (चित्र सं० 37 से ५०) गुरसराय के चित्र (चित्र सं० ५६ से 50) आदि प्रमुख ठिकाने भी बुन्देली शैली के प्रतीक चित्रों के अपार भण्डार के साथ आज भी अपना गौरव पदर्शित कर रहे हैं । इनके विषयवस्तु रंग योजना एवं चित्रों का संयोजन अठकडियों की भाँति ही है ।

1- स्वयं सर्वेक्षण यात्रा के दौरान श्री रामकुमार पाठक टहरौली एवं डा० रामअौतारअग्रवाल मेरठ व डा० एस०डी० त्रिवेदी झांसी से विशेषजानकारी व दृष्टव्य ।

इसप्रकार बुन्देलखण्ड चित्रशैली में जहां एक ओर लोक भावना व्याप्त है वहां दूसरी ओर साहित्यक आधार मानकर भी चित्रकार ने अपनी तूलिका को प्रवाहित किया है। जिससे राजपूत, मुगल व पहाडी शैलियों की भांति उसके स्वरूप में अपना अस्तित्व निखर उठा है। बुन्देलखण्ड की यह एक ऐसी प्रमुख शैली है जिसको अन्य ठिकानों के कलावैभव से अलग रखकर ही आंका जा सकता है और उसके महत्व को अवलोकित किया जा सकता है[1]।

कला को संस्कृति की अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण माध्यम माना जाता है यह मानव तथा समाज के नैतिक मूल्यों के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान करती है तथा एक ऐसे आदर्श नैतिक सिद्धान्त के निर्माण में सहायक होती है जिसके द्वारा आगे चलकर कला की एक शैली का एक नया रूप प्राप्त होता है। इसप्रकार की कला शैली तत्कालीन वातावरण, परिस्थितियों और मानवीय नैतिक सिद्धान्तों से प्रभावित होती है और इन्ही के प्रभावों से नयी चित्रशैली का जन्म होता है। चित्रकला के इतिहास से इस बात की पुष्टि होती है कि प्राचीनकाल से ही उपर्युक्त भावनाओं और अनुभूतियों का विकास चित्रकला के विकास के साथ ही देखने को मिलता है। विशेषकर ललितकलाओं में चित्रकला की गहनता और विषय प्रसार सर्वाधिक है[2,1] और ये दोनो तत्व संस्कृत अथवा कालपरिधि में चित्रकार के प्रयोजन पर निर्भर करते हैं। चित्रकला में होने वाले परिवर्तन उन सब सम्भावनाओं के उद्घाटन मात्र हैं जिनके द्वारा मनुष्य की रहस्यमयी भावनायें और अनुभूतियां रंग-रेखाओं और स्वरूप के माध्यम द्वारा प्रगट की जाती है। भारतीय चित्रकारों ने अध्यात्मिक और धार्मिक अनुभूति की सत्ता तथा प्रसन्नता को अभिव्यक्ति दी व इसमें आकार व रूप का सम्मिलन और समन्वय इतना उत्तम हुआ कि कलाकार के अनुभव लगन और साधना की सराहना करनी पडती है[3]।

1- मोतीचन्द्र खजांची "कैटलॉग ललितकला एकादमी। 960 भूमिका
2- डा0 बी0 एल0 कपूर "हिमांचल इतिहास और परम्परा" पृष्ट 67
3- मार्ग "राजस्थानी पेन्टिग मार्च 1958 " पृष्ट 2,3

विभिन्नता में एकरूपता , स्वरूपीकरण विश्रंखलता में व्यवस्था , समूहीकरण और विभेदीकरण इन सब के सिद्धान्त के वल वस्तु जगत में ही चरितार्थ नहीं होते अपितु वे कलात्मक दृष्टिकोण में निहित मानवीय प्रयोजनों और अनुभवों में भी परिलक्षित होते हैं इस प्रकार भारत में कला के स्वरूप का विकास रूप और रंग , संकेत और ध्वनि , प्रयोजन और - मूल्य , प्रकृति और मानव के भावनात्मक जीवन की पृष्टभूमि में विशिष्ट संतुलन परिलक्षित होता है व इसमें अन्तर और वाह्य का अभूतपूर्व सम्मिलन व्यक्तिगत और सामान्य सौन्दर्यात्मक अनुभवों के रूप भी अपनी अमिट छाप छोडते हैं[1] ।

भारतीय चित्रों का इतिहास अति प्राचीन है । इस महान देश में सभ्यता के उदय से आज तक चित्रकला अपने माध्यम से जन-जन की भावनाओं को मुखरित करती रही है । इस प्रकार चित्रकला का इतिहास प्राचीनकाल से चला आ रहा है । भारतीय चित्रकला पर भिन्न-भिन्न कालों में सामाजिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का प्रभाव पडता रहा तद्नुसार चित्रकला का स्वरूप भी बदलता रहा । दूसरी ओर इस देश की विशालता के कारण समय - समय पर क्षेत्रीय शैलियों का भी उदय हुआ[2]।

भारतीय चित्रकला के इतिहास में देश और काल के अनुसार ऐतिहासिक विभाजन सम्भव है जिससे इन समस्त भारतीय चित्रशैलियों का क्षेत्रीय रूप और उनकी सार्वभौमिकता सामने आ जाती है । प्राय: सभी कालों में एक सार्वदेशिक चित्रशैली अवश्य थी तथा क्षेत्रीय विभेद उसी में प्रस्फुटित होते रहे । इन चित्र शैलियों के केवल वाह्य रूप -रंग के देखने सेही नही वरन उनकी प्रवृत्तियां , उनके स्वभाव और उनकी आत्मा में भी एकसूत्रता अवलोकित होती है[3]।

1- त्रिपथगा पृष्ट 83-86

2- शान्तीस्वरूप "आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान"पृष्ट155

3- डा0 रामनाथ "मध्यकालीन भारतीय कलायें एवं उनका विकास" पृष्ट 8-11

भारतीय चित्रशैलियों के विभाजन में यह प्रवृत्तियां ही आधार प्रस्तुत करती हैं। भारत के अजन्ता में जगतप्रसिद्ध भित्ति चित्र इस कला की अमर धरोहर हैं। बौद्ध और जैन कलाओं तथा पाल, गुजरात, अपभ्रंश, बुन्देलखण्डी, राजस्थानी, मुगल और पहाडी आदि शैलियों ने भारतीय चित्रकला के गौरव को ईसापूर्व दूसरी सती से आजतक सुरक्षित रखा है। चित्रकला की श्रंखला में अजन्ता की परम्परा को निभानेवाली राजस्थानी चित्रकला का अपना निजी सांस्कृतिक परिवेश और इतिहास है। सम्राट औरंगजेब की नीति के कारण कलाकार राजपूताने के रजवाडों में आश्रय पाकर चित्रकला की साधना में जुट गये लेकिन यह काल भारत में चित्रकला का प्रारम्भिक काल नहीं था। राजस्थान में तो चित्रकला का प्रारम्भ उससे पहले ही हो चुका था।

यों तो राजस्थानी चित्रकला के नामकरण पर ही विद्वानों के - विभिन्न मत है। राजपूत और राजस्थानी चित्रकला का नाम देकर बहुत से तर्क और वितर्क सामने आते हैं[1]। लेकिन राजस्थानी चित्रकला का सबसे पहला मनोवैज्ञानिक विभाजन स्व0 आनन्दकुमार स्वामी ने राजपूत पेन्टिग नामक पुस्तक में सन् 1916 में किया, उनके अनुसार राजपूतचित्रकला का विषय राजपूताना और पहाडी (पंजाब की पहाडी रियासतों से सम्बन्धित) हैं। इसप्रकार उन्होंने राजपूत चित्रकला को भी दो भागों में विभाजित किया। पहली राजस्थानी अर्थात राजपूताने से सम्बन्धित और दूसरी पहाडी अर्थात जम्बू, कांगडा, गढवाल, बासौली, चम्बा आदि पहाडी रियासतों से सम्बन्धित है। इन रियासतों के अधिकारी प्रायः राजपूत राजा होने के कारण इसे राजपूत चित्रकला के नाम से जाना जाता है। राजस्थानी चित्रकला का प्रसार बीकानेर से गुजरात की सीमातक और जोधपुर से ग्वालियर तक रहा है तथा आमेर, ओरछा, दतिया, उदयपुर, बीकानेर आदि इसके कलाकेन्द्र रहे हैं।

1- शोध पत्रिका 1972-73 गवनमिन्ट ओफ राजस्थान जयपुर" पृष्ट 31,32

इस प्रकार राजस्थानी चित्रकला में राजस्थानी शैली के सभी चित्र आते हैं , जो प्रदेश अंग्रेजी शासन में राजपूताना कहलाता था वह थोड़े से हेर-फेर से स्वतन्त्रता के बाद राजस्थान कहलाया । अंग्रेजी शासन के पूर्व यह सभी प्रान्त कभी किसी एक नाम से प्रसिद्ध रहा होगा ऐसा कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता[1] । जनरल टाड ने ही सर्वप्रथम इस सारे प्रदेश को रायथान या राजस्थान नाम दिया था अतः राजस्थानी चित्रकला से हमारा तात्पर्य उस चित्रकला से है जो इस प्रान्त की अमर धरोहर है और जिसने अनेक कला मर्मज्ञों एवं कला प्रेमियों को अपनी ओर आकर्षित किया है ।

भारतीय चित्रकला के विकास मे सबसे महत्वपूर्ण योगदान मेवाड का रहा है । पाँचवी सताब्दी से गुजरात मेंजैनशैली का पूर्ण जोर था । निकटवर्ती क्षेत्र होने के कारण मेवाड में जो चित्रकला पनपी उसमें जैनशैली की पूर्ण छाप थी[2] । अठारहवीं शताब्दी तक मेवाड में चित्रकला का विकास हो चुका था । इस प्रकार लगभग चार सौ वर्ष पुरानाही राजस्थानी चित्रकला का इतिहास कहा जा सकता है[3] । स्थानी परिवेश , भौगोलिक स्थिति एवं जैन और मुगलशैली के योग से भारत में विभिन्न शैलियों का जो विकास हुआ वह भारत के लिये ही नही वरन विश्व के लिये अमूल्य धरोहर है । राजस्थान के अलग-अलग रियासतों में अलग-अलग शैलियां पनपीं और उसी रियासत के नाम से प्रसिद्ध हो गई । मुगलों के बाद जो कलाकार अपनी रियासतोंमें आये उनमें अधिकांश राजश्रय में ही अपनी कला निखारते रहे । जोधपुर , उदयपुर , कोटा , बूंदी , किशनगढ , नाथद्वारा , अलवर और बीकानेर तथा ओरछा एवं दतिया शैलिया रियासती शैलियों के नाम से आज भी प्रसिद्ध है । इसप्रकार भारत के जितने भी प्रमुख प्राचीन नगर , राजधानियां तथा धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठान हैं वहां चित्रकला का विकास हुआ है ।

1- राजस्थान की लघुशैलिया"राजस्थान ललितकला एकादमी जैपुर"पृष्ट70,71।
बुद्धिष्ट रिकोर्ड्स ओफ द वेस्टर्न वर्ड भाग-2 पृष्ट 258

2- कुंवर संग्राम सिंह "अगरचन्दनहटा अभिनन्दन ग्रन्थ मेवाडशैली"पृष्ट 72

3- मिनियेचर पेन्टिग ललितकला एकादमी नई दिल्ली पृष्ट 30-59

धर्मपीठों,रियासतों के कलाप्रेमी राजाओं , सामन्तों और जागीरदारों का भारतीय चित्रकला के विकास मेंपूर्ण योगदान है । धार्मिक प्रतिष्ठानों के अतिरिक्त कवियों , चित्रकारों , संगीतज्ञों और शिल्पाचार्यों का जमघट राजदरबारों में होने के कारण राजस्थानी चित्र कला की अजस्त्र धारा उनके रियासती शैलियां और उपशैलियों को परिप्लावित करती हुई सत्रहवी और अठारहवी शती में यह अपनेचमोत्कर्ष पर पहुची जिससे इसका सम्मिश्रित स्वरुप सामने आया । अधिकांश रियासतों के चित्रकारों ने जिन-जिन तौर-तरीकों से चित्र बनाये स्थानानुसार अपनी मौलिकता , भौगोलिक तथा सामाजिक विशेषताओं और राजनीतिक सम्पर्कों के कारण वहां की चित्रशैली कहलायी और इसीलिये मेवाड , किशनगढ और बूंदी शैलियां जो आज विश्व प्रसिद्ध शैलियां मानी जाती है[1] ।

अठारहवी से उन्नीसवीं शती तक की विभिन्न शैलियां व उपशैलियों में परिपोषित राजस्थानी चित्रकला निश्चय ही भारतीय चित्रकला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है । अनेक समकक्ष शैलियेां से प्रभावित होने के उपरान्त ही यह शैलियां अपनी मौलिकता बनाये हुयेहैं । भित्ति चित्रण की परम्परा में विकसित राजस्थानी व बुन्देलखण्डी चित्रकला का लोकजीवन से विशेष सानिध्य रहा है जबकि प्रारम्भिक चित्रण में सादगी और सरलता तथा रंगों की अल्हणता और विषयवस्तुओं के चुनाव में लोकजीवन की भावनाओं का बाहुल्य विशेषतय: दिखाई देता है । दरबारी संस्कृति में पनपी चित्रकला में भी यह लोक तत्व विलग नहीं हुआ है । धार्मिक और सांस्कृतिक स्थलों में पोषित चित्रकला जनजीवन की भावनाओं एवं लोकप्रिय विषयों से अधिक सम्बन्धित रही है । कुछ ही दशकों में यह शैली सोलहवी शताब्दी उपरान्त बडे भू-भाग में अवतरित हुई है[2] ।

1- मेवाड पेन्टिग ललितकला एकादमी 1957

2- कार्ल खण्डेलवाल "लीव्ज फ्राम राजस्थान मार्ग 1950"
उव्ल्यू0जी0 आर्चर "इण्डियन मिनियेचर" पृष्ट 7,8

तत्कालीन वैष्णव धर्म , संगीत (राग-रागनियां) और वृजभाषा काव्य इस शैली के मेरुदण्ड हैं । यह चित्रण पूर्णत: भावात्मक थे पर निश्चित परम्पराओं कीपरिधि में ही रहे । यहां तकि अपभ्रंश शैली भी परम्परागत थी पर उसकी परम्परायें रूढि बनकर चित्रण को ह्रासोन्मुख बनाती हैं क्यों कि उनमें चित्रकार उन रूढियों और परम्पराओं का बंधा बंधाया प्रयोग मात्र करता है पर राजस्थानी शैली में वे ही परम्परायें उन्मुक्त वातावरण में एक नई प्रेरणा से ओत-प्रोत हो नये- नये रूपों और दृश्यों की श्रष्टि करती हैं । यह शैलियां अलंकारिकता प्रधान तो हैंही साथ ही रूप विन्यास में , रंगों के प्रयोग में , पृष्टभूमि में , वृक्षों, जल , स्थल , नभ के अंकन में , दृश्य के समूचे संयोजन में नित्य नये और आकर्षक प्रकार से उपस्थित होती हैं । इसी के अन्तर्गत प्राय: ज्योमिती य संयोजन में बांट देते हैं अर्थात त्रिकोण , चतुष्कोण , व्रत आदि का रूप धारण कर लेते हैं ।

सत्रहवी और अट्ठारहवी शताब्दी में राजस्थानी शैली में अनेक स्थानीय विभेद उत्पन होते हैंयहां तक कि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इनका ह्रास प्रारम्भ हो जाता है । इसके अन्तिम प्रहर में मुगल शैली की भी छाप इसपर पडती है , यद्यपि यह स्थिति मुगलचित्रों की भी है परन्तु वस्तुत: यह तत्कालीन सामाजिक प्रवृत्तियों का ही प्रभाव है , किसी क्षेत्र विशेष का नहीं । भारतीय चित्रकला में इसकी प्रधानता मिलती है । भावनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रांकन उसमें विशेषरुप से हुआ है । राधा-कृष्ण की माधुर्य भावनाओं का विस्तृत और गहनतम चित्रण इस कला की प्रमुख विशेषता रही है । भक्ति और श्रंगार का सजीव चित्रण अलौकिकता प्रस्तुत करता है । राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओं , रामकथा , महाभारत और भागवत पुराण की विभिन्न कथा यें , नायक-नायिका भेद , राग-रागिनी , बारहमासा , लोककलायें आदि असंख्य विषयों पर राजस्थांनी चित्रकला आधारित है[1] ।

1- गौरीशंकर-हीराचन्द्रओझा"मेवाड का इतिहास " पृष्ट 96

काव्यचित्रण और रंगों का जादू इसकी इतनी बडी विशेषताओं में है जो कि देखते ही बनता है । लाल , पीला , स्वेत , हरा इस शैली के प्रमुख रंग हैं जिनके समन्वय से कलाकारों ने चित्रकला को सतरंगा बना दिया है । दुर्गप्रासाद , मंदिर , हवेलियां एवं दरवार आदि का राजपूती वैभव चित्रकला में बारीकी के साथ प्रस्तुत किया गया है । प्रकृति चित्रण में पशु-पक्षी , फल-फूल , कीट-पतंग इस शैली की शोभा को द्विगणित करते हैं । भक्ति और रीतिकाल की भावनाओं का चित्रण राजस्थानी चित्रकला की मुख्य विषयवस्तु कही जा सकती है[1] । इसी प्रकार की विषयवस्तु , प्रभाव और भावनाओं का अवलोकनबुन्देलखण्ड की चित्रशैली में अधिकता में मिलता है ।

इस शैली का पुनरुत्थान अग्निकुल उत्पन्न कहलाने वाले उनक्षत्रियों ने किया जिनके वंशजों ने बुन्देलखण्ड और राजस्थान की उजडी हुईनिर्जन भूमि को अपना आवास बनाकर एक नई संस्कृति की नीव डाली । नया नया धर्म एवं जोश व उत्साह इन शासकों में था जिसके बलपर इन्होंने कला को पुन: जीवित करके उसे सम्माननदिया । यद्यपि चारो-ओर विनाश की ज्वाला जल रही थी । मुसलमानों के आक्रमण शान्ति का गलाघोटकर अन्त कर रहे थे तब भी बढते हुये संस्कृति के कदमों ने अमरता के गीत गाये ।

भक्ति के आनन्ददायक रस श्रोतों में जनता ने आवाहन किया , बल्लभ प्रभु की उपासना ने ब्रम्ह वैवर्त पुराण की राधा ने वह रूप माधुरी का रस बरसाया कि हृदय की धडकन स्तव्ध हो गई । जलती हुई चिन्गारी की वर्षा में अमृतविन्दुओं की कल्पना जागी और नेत्रहीन सूरदास ने कलाकारों की निर्जीव कल्पना में प्राण फूक दिये । मीरा, देव , मतिराम,पद्माकर और घनानन्द की रसवर्षा से कला के क्षेत्र अंकुरित हो उठे[2] । राजा नागरीदास ने कीर्तन की महिमा को समझाकर उसका रसपान कराना आरम्भ कर दिया ।

1- कार्ल खण्डेलवाल "लीव्ज फ्राम राजस्थान" पृष्ट 51

2- रायकृष्णदास "भारत की चित्रकला " पृष्ट 56-58

एक ओर मुगलकला अपना चमत्कार दिखारही थी दूसरी ओर राजस्थानी चित्रकार तुलसीदास के पदों को साकार कर रहे थे। नन्द-दास, परमानन्ददास आदि के भक्ति गीतों से राजस्थानी कला के प्राण पुष्ट हुये[1]। उसने श्रीकृष्ण चरितामृत की वह प्रेरणा प्रवाहित की जो जन ता के जीवन में स्पष्ट झलकने लगी। कुशवाहे, राठौर, हाडा और सिसौदिया इन चारों वंशों ने राजस्थान के अधिक भू-भाग पर अपना अधि कार कर लिया और इन्ही के चार प्रधान नगर राजस्थान की कला के चार प्रधान केन्द्र बने। ये प्रान्त हडौती, मेवाड, मारवाड, ढूंढाडू के नाम से विख्या त हैं तथा जयपुर, जोधपुर, बूंदी और उदयपुर राजस्थानी कला के उद्गम केन्द्र थे। इन्ही चार प्रधान केन्द्रों से शैलियां और उपशैलिया बनी जिनसे राजस्थानी चित्रकला का अक्षय भण्डार भर गया। इसीप्रका र मध्य प्रदेश में मालवा और बुन्देलखण्ड में भी चित्रकला शैलियों का वि-कास उपलब्ध होता है।

यहां की चित्रकला को विस्तार से देखने पर बूंदी, कोटा एक सूत्र में जोधपुर, बीकानेर, जयसलमेर, नागौर और किशनगढ एक में, उदयपुर मारवाड, नाथद्वारा, बांसवाडा, प्रतापगढ एक रूप में और जयपुर, करौली, अलवर और भरतपुर एक सूत्र में तथा इसी प्रकार आरछा और दतिया एक सूत्र में दीखते हैं। इसप्रकार राजस्थानी शैली केवल राजस्थान में फलने-फूलने वाली चित्र परम्परा तो है ही साथ में बुन्देलखण्ड को भी प्रभावित किया जिसकी प्रत्येक दृष्टि में अपनी एक मर्यादा और अपनी एकविशेषता है[2]। अपनी इस स्वतन्त्र सत्ता के आधार पर राजस्थानी चित्रों का भी महत्व है।

बुन्देलखण्ड के इन चित्रों की कडी अजन्ताकाल से जुडी चली आ रही है जो पन्द्रहवी और चौदहवीं शदी के राजस्थान के बने चित्र व्यक्त करते हैं। इसप्रकार उनमें अजन्ताकाल और राजपूत काल दोनों के तत्व विद्यमान हैं और जो कुछ भी हेर-फेर हुआ है वह वेश-भूषा अलंकार, श्रम और साधना मात्र का है।

1- छवि स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ भारत कला भवन वाराणसी 1976 पृष्ट 335
2- राजपूत पेन्टिग फैवर गैलरी ओफ ओरियन्टल आर्ट पृष्ट 1-5

विविध धर्मों ने भी कला को पुष्ट किया है इस सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि कोटा और बूंदी के हाडा वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। जोधपुर के राठौर नाथ सम्प्रदाय के शिष्य थे जबकि कुशवाहे शाक्य एवं फिर वैष्णव बने, सिसौदिया शैव तथा किशनगढ के राठौर वल्लभ के पुष्टि मार्गीय मत के अनुयायी थे। इनसभी धर्मों ने अपने-अपने पूज्य को साकार उपासना की श्रेणी में लाने के लिये चित्रकला का आश्रय लिया[1]। उधर जैनों ने धर्म प्रचार के लिये चित्रकला को माध्यम बनाया। इन सब में वल्लभ सम्प्रदाय की उपासना अधिक सगुण थी जो बाद में वल्लभ कुलीय वैष्णव हो गये थे। चित्रों में अधिक रस लेने लगे इस प्रकार सगुण भक्ति भावना और उपासना घर-घर का विषय बनगई।

कोटा के मथुराधीश मंदिर में जो वल्लभ सम्प्रदाय का प्रधान तीर्थ था चित्रों की दर्शनीय प्रतियां बनने लगीं। लघुचित्रों की भरमार दैनिक जीवन में प्रस्फुटित होने लगी यहां तक कि भक्तिभावना से ओत-प्रोत जन इन चित्रों को अपने साथ गले में, जेब में या किसी अन्य प्रकार से धारण करने में अपना गौरव मानने लगे। मुख्य विषय कदिली, कुंजर, कामिनी, कामधेनु इन भित्तियों पर चित्र चित्रितकिये गये जहां पर धार्मिक प्रतिष्ठान होते थे। सामाजिक उत्सवों, रीतिरिवाजों, प्रथाओं जिनमें विशेषकर विवाह, सांझी, उत्सव और त्योहारों पर चित्र बनाने की प्रथा प्रचलित हो गई[2]। जैन भी इसी प्रकार किसी से पीछे नहीं रहे उन्होंने पुस्तकें, चित्रपट, भित्तिचित्र की परम्परा को और आगे बढाया और इस प्रकार कला का विकास चारो=ओर होने लगा। जनता जनार्दन इसकी सच्ची सेवा में श्रद्धा और प्रेम के साथ साधनरत में लगी जिससे राजपूतों का हिंसक स्वभाव अहिंसक बनाने में भगवान श्रीकृष्ण का पूर्ण योगदान रहा यही कारण है कि राजस्थान और बुन्देलखण्ड की प्रत्येक शैली में राधा-कृष्ण का किसी न किसी रूप में अंकन हुआ है।

1- रामगोपालविजयवर्गीय"राजस्थानी चित्रकला" पृष्ट 19

2- ललितकला एकादमी पत्रिका अक्टूबर 1961 पृष्ट 45

इसीप्रकार उदयपुरशैली में भागवत की कथा तथा कृष्ण लीला पर विपुल मात्रा में चित्र बने हैं । जयपुर कोटा और किशनगढ शैली में कृष्ण चरित्र पर चित्रों की भरमार देखने को मिलती है तथा इसीप्रकार बुन्देलखण्ड के प्रमुख प्रतिष्ठानों में कृष्णलीलाओं के विभिन्न चित्र प्रमुखतय: चित्रकारों की तूलिका से चित्रितकिये गये हैं ।

भक्ति काल का यह युग चित्रकला के लिये एक वर्दान सिद्ध हुआ आचार्यों ने समस्त रूपों में भगवान की सत्ता आरोह मानकर चित्रकला को भगवान के दर्शन की एक विधि प्रमाणित किया[1] । चित्र और काव्य एक दूसरे की प्रतियोगिता में आये तथा आगें बढने का मार्ग ढूंढने लगे । चित्रों की उपयोगिता उतनी ही समझी जाने लगी जितनी काव्य की । अनेक चित्र काव्य का आनन्द सरलता से लेने के लिये चित्रित किये गये यहा तक कि प्रात:काल चित्र दर्शन उपासना का अंग बन गया तथा चित्रों को रखने की परम्परा जनसाधारण में व्याप्त हो गई । चित्र राजदरवारों के साथ-साथ बाजारों में मिलने लगे । प्रमाण स्वरूप आज भी बुन्देलखण्ड के बहुत से स्थानों पर वहां के निवासियों के पास बुन्देलखण्डीचित्रशैली के चित्र अमूल्य धरोहर के रूप में सुरक्षित हैं ।

लोक कला का निर्माण मानव के चित्रप्रेम ने किया । लोकतत्व भी भक्ति भावना के साथ तूलिका का विषय बन गया है । सम्पूर्ण राजस्थान और बुन्देलखण्ड में राग-रागनियों के समस्त भेद,नायिकाभेद के विभिन्न अंग और रामायण के कथा प्रसंग चित्रों के रूप में घर-घर पहुंच गये । यहां तक कि जनता की रस-रुचि परिपक्व होकर सौन्दर्य तत्व के सम्यक विवेचन पर उतर आई । इसको रीतिकालीन युग कहा गया जिसमें केशव ने रसिकप्रिया और घनानन्द ने सुजान का गुणगान किया । जब कविदेव की नायिका चित्रों के क्षेत्र में उतर आई , मतिराम की नायिकाओं के कटाक्ष चकोर,खंजन,कमल,मछलीके रूप में चित्रों के विषय बने ,किशनगढ के कवि नागरीदास नागरी राधा को उपास्य मानकर उनके खंजननेत्रों नेअपनेआप को समर्पित कर दिया और राधा की वह छवि किशनगढ के चित्रों में छा गई ।

1- राजस्थान की लघुशैलियां रा0ल0क0एकादमी पृष्ट 60-63

उदयपुर की शैली में भी राधा को नवीनतम रूप में चित्रकारों की तूलिका ने चित्रित किया वह जनता का आकर्षण बनी व उसपर मुग्धहोकर निछावर हो गई । समस्त राजस्थान एवं बुन्देलखण्ड इस भावना से ओत-प्रोत दिखाई पडता है[1] । जोधपुर के पट दर्शक सचित्र कहानियों को गीत और वाद्य के साथ दिखलाते फिरते हैं । बीकानेर के महेरे जो ब्राम्हणों की एक जाति विशेष है , सचित्र पुस्तकें लिखने लगे[2] । जयपुर के कुम्हार {जाति विशेष} भित्तियों पर चित्र अंकित कर रहे थे । जैसलमेर के भाटी राजपूत{जाति विशेष} तलवार छोडकर तूलिका के शरण में आ गये थे । किशन गढ के दायमा ब्राम्हण और बूंदी के जोशी राधा-मुकुन्द के केलि-कलाओं का चित्रण कर रहे थे इस ओर स्त्रियों ने भी हाथ बढाया वे घरो की दीवारों ,आंगन में वर्तनों पर तथा मेंहदी आदि के बहाने छाया आदि उपक्रम करके प्रतीकात्मक चित्र बनाने लगीं जो यहां की एक बहुत बडी लोक तत्व के पक्ष को समृद्ध करती है । इसीप्रकार बुन्देलखण्ड के नगर और ग्रामों की नारियों ने विभिन्न अवसरों पर अपनी दीवारों को ,आंगन को और विभिन्न माध्यमों से चित्रण परम्परा को अपनाया ।

किशनगढ की चित्र परम्परा में एक अन्य प्रधान तत्व है जोकि श्रंगारिक है जिससे यह चित्रशैली अधिक सरल तथा धार्मिक भावनायें से परिपूर्ण चित्रण के माध्यम से सामने आई । जयदेव की अष्टपदी ,सूरदास के पद इस शैली में चित्रित हुये तथा प्रेम के सिंहासन पर बैठी मायाविनी राधारानी जिनके चरणस्पर्श के लोभी मण्डित,मुकुटकेशव चित्रों के नायक थे । विशेष विषय चांदनी रात ,श्वेतामरण,विभूषिता,नारीसकल, सरोजयुक्त सरावरों में शीतलजल , रंगमहल,अलकों तथा पलकों की शाभा में नारीमात्र का सौन्दर्य राधा की रुपरानी बना तथा मानवमात्र में कृष्णरुप की कल्पना ने आध्यात्मिम वातावरण की ऐसीरचना की किजिससे इस भौतिक संसार के स्वप्न फीके पड गये ।

1- जगदीशसिंह गहलौत"जयपुर व अलवर राज्यों का इतिहास"भाग-3 पृ0 222-230

2- मार्ग - राजस्थानी पेन्टिग 1958 पृष्ट 32-36

बुन्देलखण्ड के चित्र आध्यात्मि प्रकाश के रुप में सामने आये और कृष्ण भक्ति की अजस्त्र भक्ति धारा ने सभी भक्ति कवियों की रसिकता एवं भावुकता से उत्पन्न सौन्दर्य की प्रेरणा से पल्लवित बुन्देलखण्डशैली - बुन्देलखण्ड के एकीकरण से पूर्व स्थापित यहां के रियासतों की देन है[1] । दर्शकों को कभी-कभी तो एसा अनुभव होने लगता है जैसे वे आत्मा और परमात्मा के सामन्जस्य के पवित्र सूत्र को पकडने की चेष्टा में प्रवत्त हो गये हैं ।

राग-रागनियों पर चित्रांकन ,रीतिकालीन कवियों का सा वैभव-विलास और परम्परानुकूल श्रंगारिक भावनाओं को आधार बनाकर भी इस शैली के चित्रकारों ने अपनी तूलिका चलाई[2] । पृष्टभूमि में भव्य प्रासादों ,केलों के कुंजों ,चन्द्रमा और तारागण ,किलोलरत पशु-पक्षी इस के मुख्य विषय बने । पुरुषों की आकृति में सम्मुन्नत , ललाट , पतलेअधरों , उत्तिष्ठ ,नासिका,कालिमा से युक्त दीर्घ नेत्रों , लम्बी भुजायें, सुकुमार उंगलियां व उन्नत कन्धे चित्रित किये गये जबकि स्त्रियों के चित्रण में नारीसुलभ लावण्यता और कोमलता उनकी विशाल और मोहक आंखें, लम्बी नासिका , उन्नत ललाट ,चमेली की पंखुडी से अधर ,अर्द्धविकसित किन्तु खिला हुआ वक्षस्थल और विस्त्रत केश राशि विशेष दर्शनीय हैं । दोनों ही आकृतियों में आभूषणों व केश-भूषा की झलक तत्कालीन समाज की पूर्ण द्योतक प्रतीत होती है । स्वेत और गुलाबी रंग के साथ हरा,गहरा नीला और लाल रंगों की प्रमुखता दिखाई देती है । इस प्रकार के चित्र दिल्ली संग्रहालय , भारतकला भवन बनारस आदि स्थानों पर सुरक्षित हैं[3] ।

1- मार्ग राजस्थानी पेन्टिग 1958 पृष्ट 60,61

2- रुपलेखा मार्च 1958 पृष्ठ 14-16

3- मिनियेचर पेन्टिग ललितकला एकादमी नई दिल्ली पृष्ट 55

बुन्देलखण्डी शैली की भाँति बूंदी शैली के चित्रों में प्रेमलीला के रास-विलास चित्रण की परिपाटी पाई जाती है । इन चित्रों में रेखायें अति कोमल ,लावण्य मयी और गतिशील रूप में प्रयुक्त हुई हैं । बूंदी के राजाओं ने काव्य , कला , संगीत तथा सस्त्र विद्या में पर्याप्त उन्नति की थी[1] । राजस्थानी लघुचित्रकला की चर्मोन्नति यहां के राजाओं के आश्रय में हुई और भावचित्रण में यह शैली अद्वितीय है । राजस्थानी संस्कृति का विकास इन चित्रों में मिलता है । राजपूतों की वीरता से लेकर इनकी विलासता के पतीक जब श्रंगार और वीर रस कंधामिलाकर राजस्थान की उन गगनचुम्बी महलों में निवास करते थे तब किसी भी संस्कृति का प्रभाव इनको छू तक नहीं गया था । नायिकाभेद ,कृष्ण-राधा रागों की विविधता के साथ इस प्रकार चित्रित किये गये कि उनकी कलाओं की दाद देनी पडती है[2]। चटकीले रंगों से युक्त चित्रों में सजावट और अलंकारिक आलेखनों की प्रचुरता मिलती है । शिकार ,शाहीदरवार और उत्सव आदि के चित्रण में कलाकार की तूलिका अधिक मौलिक हो गई है । चित्रों में आकृतियां साधारण लम्बी,शरीर पतले और स्फूर्ति से भरे बने हुये हैं । स्त्रियों की मुखाकृतियों में अधरों की छटा उनका लाल रंग , नेत्र अर्द्ध विकसित नीचे और ऊपर एक रेखा के गोलार्द्ध में घनीकालिमा के साथ जबकि भ्रूप्रदेश घना प्राय: सीधा नासिका छोटी,मुख गोल , ग्रीवा भी कम लम्बी , बाहें लम्बी व हाथ - उंगलियां मेंहदी से रचित चित्रित की गई है । वक्ष आगे निकला हुआ , कटिक्षीण तथा आभूषणों की भरमार मिलती है । पुरुषों की आकृतियों में झुकी पगडियां , जामा दुपट्टे और वक्ष को ढकता हुआ प्राय: पीले रंग का एक वस्त्र आभूषणों के साथ चित्रित किया गया है ।

1- प्रमोदचन्द्रे"बूंदी पेन्टिग -ललितकला एकादमी "इण्डियन आर्टसीरीज" 1959 पृष्ट 6

2- कुंवर संग्रामसिंह 250 "इयर्स ओफ जयपुर,एक्जीविसन ओफ ढूंढारपेन्टिगस पृष्ट 16,17

राग-रागनियों , नायिकाभेद , ऋतुमास" तथा कृष्णलीला, होली और अन्य उत्सवों व त्योहारों का चित्रण हाथियों, मंजीरों, नृत्य-करती महिलाओं के साथ प्रकृति के सौन्दर्यात्मक तत्व को पूर्ण रूप से भाव मय चित्रित किया गया है । चित्रों के हाँसिये व उनकी सजावट लाल, रजत, सुनहरी एवं नीले रंगों से इतनी मार्मिक बनी है कि राजस्थानी अन्य शैलियों में वे अपना अलग स्थान बना लेते हैं । इन चित्रों में सौ-न्दर्यतत्व या कलात्मक बोध के क्षेत्र में बूंदी की चित्रकला में राजस्थानी चित्रकला में अपना स्वतन्त्र एवं अद्वितीय स्थान बनाया है जिसप्रकार काव्य में अलंकार , अर्थ , ध्वनि एवं छन्द आदि की विशेषतायें हैं उसीप्र-कार बुन्देलखण्डी शैली में चित्रों को सजाने में विधिवत चित्रकारों ने कार्य प्रणाली अपनाई है[1]।

कोटा शैली के चित्रों में भावों की गहनता और विशिष्टता , विषयानुकूल अंकन और चयन मिलता है । इस शैली के द्वारा तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों का स्वरूप देखा जा सकता है[2] । इनके विषय श्रीकृष्ण की लीलाओं , देवी-देवताओं, दरबारी जुलूस , सबीह , बारहमासा , राग-रागनियां , आखेट एवं युद्धनिर्देशन आदि पर ही आधारित हैं । इस शैली में पुरुषों को मख्यत: वृषभस्कन्द उन्नत भौहें , मान्सल देह , मुखपर भरी दाढी व मूँछें एवं तलवार व कटार के साथ राजपूती वेश-भूषा में मूर्तियों की माला पहनेहुये अंकन हुआ है , जबकि नारी की आकृतियां पुरुषाकृतियों से अधिक सुन्दर बन पडी हैं । नारी आकृतियों का कद यद्यपि कोटा शैली में छोटा व मोटा दिखाया गया है परन्तु उनका चेहरा गोल , कटाक्ष युक्त आँखें , कटि-क्षीण , सुदीर्घ नासिका और उनके लाल होटों की शोभादेखते ही बनती है।

1- कार्ल खण्डेलवाल "लीव्ज फ्राम राजस्थान-आकृति" पृष्ट 15-25

2- स्व० डा० पी०सी० बरुआ "राजस्थानी चित्रकला की विषयवस्तु एक अध्ययन" (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) पृष्ट 37

हल्के हरे ,नीले,पीले रंगों की इसमें बाहुल्यता देखने को मिलती है परदा ज का काम शिल्प की दृष्टि से यदि देखा जाये तो अलवर शैली के निकट है । इस प्रकार यह शैली भी राजस्थानी कला में सामाजिक ,धार्मिक, और राजनैतिक प्रभावों से प्रभावित होकर अपना अलग अस्तित्व बना बैठी है[1] । परन्तु बुन्देली शैली इससे किसी न किसी क्षेत्र में प्रभावित है ।

जहां तक राजस्थानी चित्रकला में बीकानेर शैली के चित्रों का प्रश्न है वह ग्राम्य कला के अनुरूप चित्रण के मार्मिक दृष्टिकोण से कलाशैली के अद्वितीय नमूने हैं इसमेंमुगलशैली का प्रभाव भी देखा जा सकता है । शवीह , आखेट के दृश्य , राग-रागनिया व मुगलकालीन चित्रों की प्रति लिपियां ही चित्रकार की तूलिका के मुख्य विषय रहे हैं । चित्रों की पृष्टभूमि में प्राकृतिक अंकन के शौष्ठव के कारण यह शैली प्रमुखता पा गई इस शैली के लघुचित्रों , भित्ति चित्रों व पोथी चित्रों से ज्ञात होता है कि सुनहरे,पील,गुलाबी और लाल रंगों की चमक-दमक से उसके चित्र आसानी से पहचाने जा सकते हैं । पुरुषाकृतियों में डाढी-मूंछो से युक्त उग्र स्वरुप ऊंची शिखाकार पगडियां , जामे पहने हुये और हाथ में खड्ग लिये वीरता के पोषक यह स्वरुप सामने आते हैं जबकि नारियोंके चित्रों में आंखें, होठ , नाक,कद आदि में जोधपुर और मुगलशैली का स्वरुप दृष्टिगोचर होता है[2] । अनेक मूल एवं स्वतन्त्र आकृतियोंके आधार पर इस शैली का अस्तित्व भी राजस्थानी चित्रकला की एक कडी कही जा सकती है[3]।

मारवाड अथवा जोधपुर शैली में राजस्थानी चित्रकला के वीरभावों को प्रेम की सुधामाधुरी में डुबा दिया है । वस्तुत: यह शैली सत्रहवीं शती में मुगल तथा स्थानीय अपभ्रंश शैली के समागम से उत्पन्न एवं स्वतन्त्र शैली के रुप में सामने आयी ।

1- मोहनलाल गुप्त"अलवर संग्रहालय के चित्र" पृष्ट 10,11

2- गोयेज "आर्ट एण्ड आकीटैक्चर ओफ बीकानेर" पृष्ट 79-93

3- मार्ग "राजस्थानी पेन्टिंग 1958 " पृष्ट 62-64

इस शैली के विषय भी लोक कथाओं ,वीरों की मुखाकृतियों ,दरबारी विषयों और स्त्रियों के चित्रों पर आधारित हैं । बारहमासा,राग-रागनियों के चित्रण भी कम नहीं हुआ है । इस शैली का ढोला-मारु, ममलदे , निहालदे विषय तो बहुत ही प्रमुख रहे हैं । पुरुषों की आकृतियों में केश कानतेक फैले हुये हैं , लम्बा-चौडा स्वरूप , छढी-मूंछ , सफेद रंग का गोल जामा और कमरबन्द में बडे आकार का सफेद पाजामा पहने चित्रित किया जाता था । स्त्रियां भी लम्बी , पुष्ट , काले घनेबाल, लम्बे हाथ व कोमल पतली व लम्बी उंगलियां , माथे पर टीका और हाथो व पैरों में मेहदी का अंकन पूर्णतय: दर्शनीय है । आखें खेंजन पक्षी की तर ह और कटि बिल्कुल किशनगढ शैली से विपरीत चित्रित की गई है । इस शैली में पीले रंग की प्रचुरता है । पशु-पक्षियों में ऊंट,घोडा और कुत्ता व कबूतर व मोर अधिक चित्रितकिये गये हैं । स्त्रियों के आभूषण उनके आकर्षण के द्योतक हैं । इसप्रकार इस शैली में किशनगढ,बीकानेर, जैसलमेर तथा अजमेर शैली का जन्म झलकता है । राजस्थानी शैली में इस चित्रशैली का कम योगदान नहीं है और इसीलिये बुन्देलखण्ड की चित्रशैली इससे अछूती नही बची है ।

जब हम मेवाड तथा उदयपुर शैली के चित्रों को देखते हैं तो ऐसा लगता है कि विभिन्न लघुचित्र शैलियां मेवाड शैली से ही जन्मी हैं[1]। इस शैली में मुख्यत: कृष्णलीला ,रागमाला,रामायण,भागवतपुराण,नायक-नायिका भेद व चित्रित ग्रन्थ जिसमें रसिकप्रिया , विहारी सत्सई, राग-रागनी एवं बारमासा के विशेष चित्रण के विषय रहे हैं । पुरुषाकृ-तियां गठीली, मूंछों से युक्त आकृति, बडे नेत्र , खुले अधर ,छोटी ग्रीव, उदयपुरी पगडी साफा , दुप्पटा और अलंकरण के साथ अवलोकित होती हैं ।

1- डब्लू० जी० आर्चर "इण्डियन पेन्टिग्स ओफ द पंजाब हिल्स" पृष्ट

जबकि नारी आकृति में सीधी लम्बी नाक,ठिगना कद,लूंगडी घाघरे और आभूषणों से युक्त सरल भावमय मछली के समान नेत्र युक्त ये चित्र अपने आकर्षण का जादू छोडे बिना नहीं रहते हैं[1] । चकोर,हंस,मयूर,हाथी, घोडा,हिरन और सिंह आदि को भी महत्वपूर्ण स्थान मिला है । लाल हरे और पीले रंगों की पृष्टभूमि में यह चित्र अच्छा प्राकृतिक संतुलन प्रस्तुत करते हैं । श्याम , ताम्र और नीलवर्ण आकृतियों में होते हुये भी रंग अधिक सादे और स्वच्छ प्रतीत होते हैं । रंगों की तडक-भडक इनमें बहुत कम है राजस्थान के जनजीवन में धर्म तथा शान्ति का जीता-जागता स्वरूप इस शैली में विशेष दर्शनीय है । इसी की उपशैली नाथ द्वारा भी कम महत्व की नहीं मानी जाती है । इसमें भी जो सौन्दर्य व लालित्य है वह भी अपने तरह का अनूठा है । यहां के चित्रकारों ने पुरुषों को धोती,पगडी,अंगरखी,जूते और स्त्रियों को साडी,कांचली,घाघरा,ओढनी विशेषरुप से पहनाई है । इस शैली में अपभ्रंश मेवाड , मारवाड,जयपुर की शैलियों का संगम हुआ है लेकिन यह आगे चलकर गौढ होगई । बिछवाइयां,खिलोने यहां खूब प्रसिद्ध रहे । कही-कहीं पर सोने-चांदी के वर्कों का भी प्रयोग हुआ है इसप्रकार भारतीय चित्र परम्परा और स्थानीय विशेषताओं एवं मान्यताओं को इस शैली में चित्रकारों ने समाप्त नहीं होने दिया । दृश्यचित्रों में प्राचीन,पाश्चात्य एवं अर्वाचीन प्रभाव लक्षित होता है जिससे दृश्य चित्रों के विकास में सहायक होकर काव्य द्वारा शैली प्रेरणा का श्रोत बन गई[2] ।

राजस्थानी चित्रकला में जयपुर शैली में यदि मुगलशैली का कहीं आधिक्य रहा है तो वह उदयपुर व अलवरशैली में है इन राज्यों का निकट से मुगल का सम्बन्ध बना रहा ।

1- एन अलीडेटिड राजस्थानी रागमाला , जनरल ओफ द इण्डियन सोसाइटी ओफ अकादमी आर्ट 1952-53 पृष्ट 1-10

2- मोतीचन्द्र "मेवाड पेन्टिग ललितकला अकादमी सीरीज 1959" पृष्ट 60
एम0एस0 रन्धावा "द कृष्णा लीजेन्ड

यहां के चित्रांकन के विषय रासमण्डल, बारहमासा, गोवर्द्धनधारण, गोवर्द्धन-पूजा, राग-रागनी विशेष उल्लेखनीय रहे हैं। अठारहवी शदी की भागवत में रंगों का चटकीलापन मुगल शैली का प्रभाव है। यहां तक कि स्त्रियों के चित्रण में वेष-भूषा भी मुगल प्रभाव को लिये हुये है जिसमें छाया-प्रकाश को महत्व दिया गया है। कुछ शवीह इसके उदाहरण कहे जा सकते हैं उनमें वास्तविकता को खूब निभाया गया है, आभूषणों की भरमार है। इसप्रकार राजस्थान की उपरोक्त सभी शैलियों के वर्णन से एक बात अवश्य स्पष्ट हो जाती है कि इनमें एक मौलिक एकता है। यहां तक कि उपशैलियों में अजन्ता परम्परा की प्रधानता प्रारम्भिक काल के चित्रों में देखी जा सकती है। राजस्थान चित्रकार विशेषरुप से जन-समुदाय का एक साधारण व्यक्ति है न कि एक दरवारी कलाकार। अतएव उसका सम्बन्ध जनजीवन से अधिक है[1]। राजस्थानी कलाकार को सम्मान और प्रसिद्धि की कामना नहीं थी वह कला की प्रसिद्धि को ही अपनी कामना समझता था। यही कारण है कि राजस्थानी कला की मौलिक एकता का आधार अटूट रहा है।

बुन्देलखण्डी एवं राजस्थानी चित्रकला की समीक्षा और विकसित विभिन्न शैलियों स्वरुप को देखकर उनपर सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थितियों का क्या प्रभाव पडा है इससे पूर्णतय: यह स्पष्ट हो जाता है कि चित्रकार तत्कालीन किसी भी प्रभाव से अछूता न रहा और इसकी तूलिका के विषय भक्तिभावना, श्रंगार, राग-रागनी, बारहमासा आदि से लेकर जनजीवन के दैनिकविषयों तक को चित्रित करने में पूर्णवय: समर्थ हुई है[2]। वेश-भूषा, आकृतियों का स्वरुप, आभूषण, चित्रोंका संयोजन, भोगोलिक, एतिहासिक और सांस्कृतिक तत्वों पर आधारित करके रखा गया है।

1- वार्षिकी 63 राजस्थान ललितकला अकादमी जयपुर पृष्ट 26-34

2- एन अर्ली डेटिड राजस्थानी रागमाला जनरल ओफ द इण्डियन सोसाइटी ओफ अकादमी आर्ट 1952-53 पृष्ट 1-10

उनमें ऐतिहासिक पुट तत्कालीन समाज की गतिविधियों कोदर्पण की भाँति स्पष्ट करने में प्रयुक्त हुआ है चाहे कोई भी शैली क्यों न हो उनके चित्रों में तत्कालीन सामाजिक स्थिति पूर्णतय: परिलक्षित होती है इसप्रकार यह पूर्णतय: सत्य है कि राजस्थानी कला मुगल कला से नहीं जन्मी वरन उससे प्रभावित दीखती है । इस सन्दर्भ में जब हम बुन्देलखण्ड की शैली के महत्व विषय सामग्री और प्रभावों की समीक्षा करते हैं तो विभिन्न स्वरूप सामने आते हैं । राजस्थानी चित्रकला में बुन्देलखण्ड शैली का स्थान निश्चित करते हुये उसकी क्या देन रही है, विचारणीय है । बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक परम्परा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । साहित्य की दृष्टि से यह प्राम्त उर्वर रहा है । ललितकलाओं का विकास यहां पर अनवरत होता रहा है साहित्य ,चित्रकला,संगीत,मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला की देन बुन्देलखण्ड में बेजोड है । यहां की आत्मा आज भी ग्रन्थों ,चित्रों, मूर्तियों एवं मंदिरों और प्रासादों के रूप में देखी जा सकती है । बुन्देलखण्ड का कलात्मक परिवेश छतरियों,गुम्बदों एवं महलों से झांक-झांककर अपने अतीत की गाथा कहता मालूम पडता है ।

बुन्देलखण्डी शैली की उत्पत्ति राजपूत चित्रकला से हुई यह पूर्णतय: सत्य तो नहीं पर इतना अवश्य है कि इस क्षेत्र की कला को मुगलराज पूत और पहाडी शैलियों का समुचित सहयोग मिला है । बुन्देलखण्ड कलम में इतना सब होते हुये भी आज भी उसका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया जाता है । इस शैली में मुगल कलम की भाँति रेखाओं और रंगों की सफाई नहीं दीखपडती है और न राजपूतशैली जैसा विषयवस्तु का विस्तार ही प्रस्तुत है । रेखायें मोटी हैं और रंगों में मुगल कला जैसा सोफियाना पन न होकर लोककला की भाँति प्रस्तुत कर दिया गया है[1] ।

1- अम्बिकाप्रसाद वर्मा"दिव्य" "ओरछा की चित्रकारी" पृष्ट 69,70

मानव आकृतियों के कद ,वेश-भूषा,आभूषण,परिधान एवं स्वरूप में भी काफी अन्तर दिखाई पडता है । राजपूत शैली के विभिन्न ठिकानों के उपरोक्त विषय में भी अन्तर प्रतीत होता है । इन चित्रों को देखकर उनका प्रभाव भी दर्शक के सामने आ जाता है । प्रकृति , पशु, पक्षी आदि समस्त चित्रण में चित्रकार ने लोकतत्व को जोडकर अलंकारिक बनाने की कोशिस की है जो कि सर्वत्र प्रधानता के साथ अवलोकित होती है । जहां तक पहाडी शैली का प्रश्न है उनमें श्रृंगारिक बारहमासा, राग-रागनी आदि विषयोंको इसप्रकार प्रस्तुत किया गया है कि इसमें साहित्यिक पुट की अभिवृद्धि चित्रों के माध्यम से देखी जा सकती है । जहां कल्पना,साहित्य का प्राण है वहां चित्रकला के लिये सम्बल का कार्य इसके द्वारा होता है जिसमें रंग-रेखायें और संयोजन जैसे तत्वों को रखकर इसकी सहायता प्राप्त की जाती है ।

कुछ कलाविदों ने उसे रंगमय कविता कहकर भी सम्बोधित किया है परन्तु बुन्देलखण्ड चित्रशैली में लोक तत्वों के आ जाने के कारण स्पष्टता और स्थानीयता का पक्ष अधिक उभरा है । बुन्देलखण्ड के ठिकाने अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के साथ-साथ चित्रकला के स्वतन्त्र अस्तित्व को भी प्रस्तुत करते हैं[1] । कुछ सामग्री तो अभी ऐसी है जो देखने को नहीं मिलती है जो कि लोगों के व्यक्तिगत अधिकार में इधर-उधर संग्रहीत है पर इतना अवश्य है कि यहां के कलाकारों ने अपनी वीरभूमि की मर्यादा और परम्परा को एक सांस्कृतिक परिवेश देकर उन्हें संजाकर रखा है । बुन्देलखण्ड के ठिकाने ओरछा के चित्र इस बात के साक्षी हैं कि यहां जनजीवन में कितना उल्लास एवं शौर्य छिपा है उसकी कल्पना करना एक ऐसी पहेली बनाता है कि जो सामाजिक परम्पराओं से जुडी है[2] ।

1- वाचस्पति गैरोला"भारतीय चित्रकला "पृष्ट 185,86

2- त्रिपथगा -"चित्रकला विशेषांक पृष्ट 36-38

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जहां ओरछा चित्रशैली में लोकभावना व्याप्त है वहां दतिया में इस भावना का कुछ ही अंश होते हुये साहित्यिक आधार लेकर चली है। राजपूत ,मुगल व पहाडी शैलियों की भांति उसके स्वरूप में अपना अस्तित्व निखर उठा है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र की यह ऐसी प्रमुख शैली है जिसको अन्य ठिकानों के कला वैभव से अलग ही रखा जा सकता है और इसका प्रभाव बुन्देलखण्ड के समस्त ठिकानों एवं प्रतिष्ठानों में पूर्णरूप से अवलोकित होता है[1]।

1- मोतीचन्द्र खजांची "कैटलॉग ललितकला एकादमी "1960 मिनियेचर पेन्टिग भूमिका

बुन्देलखण्ड चित्रशैली का महत्व :-

अजन्ता के पश्चात बुन्देलखण्ड क्षेत्र का विकास चित्रशैलियों के लिये अपना विशिष्ट स्थान रखता है । जैनधर्म, वैष्णवधर्म और हिन्दूधर्म के विकास से जिस तर्क और साहित्य का उदय हुआ और निर्गुण - सगुण की भावना से ओत-प्रोत भक्त कवियों की वाणी जीवन को सरस बना रही थी । मध्य युग में बुन्देलखण्ड भी उससे उपेक्षित नहीं रहा । बुन्देलखण्ड के गौरव में इतिहास के पन्नों को पलटकर जब हमारे सामने साहित्य, कला, धर्म और दर्शन आदि की परम्परायें आ जाती हैं[1] । प्रसिद्ध श्रंगारिक, रीतिकालीन कवियों जिनमें केशवदेव आदि के नाम प्रमुख हैं इस धरा के अलौकिक स्वरूप को अवलोकित करते हैं लेखनी, रिक्तस्वर और संगीत यहां के जीवन में इस प्रकार जूझ गया जो लोक तत्वों के साथ मिलकर अपना निजस्व बना बैठा । अष्टयाम, गीतगोविन्द, बारहमासा, रागमाला, नायक-नायिकाभेद, अहिरावण चित्रावली, पशु-पक्षी आदि विषयों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि {चित्र सं0 93 से 95, 23, 24, 83} जिससे सभी को सम्मोहन देखने को मिला । बुन्देलखण्ड के समस्त प्रसिद्ध ठिकानों में उपरोक्त भावना से ओत-प्रोत यहां के शासकों और आश्रयदाताओं ने इस भावना का आदर किया जिससे महलों, दुर्गों, हवेलियों, मंदिरों एवं मकरवों आदि में चित्रण के द्वारा उन्हें अलंकृत कियागया और यही यहां की शैली के अद्भुत उदाहरण बन गये ।

राजपूत और मुगल शैलियों की भांति बुन्देलखण्ड शैली का विषय रूप, रंग, रेखा और संयोजन का स्वरूप धार्मिक बन पडा । रंगों में नीला हरा, बादामी और लाल व काले रंग की भरमार है ।

1- के0एम0पनीकर "दी फाउण्डेशन ओफ न्यू इण्डिया" पृष्ट 133

चित्रों के अंकन मेंसफेद रंग का भी प्रयोग किया गया है आभूषणों और परिधानों में उन्हें चांदी और सोने जैसे रंगों से अलंकारिकता प्रदान की गई है । आकृतियों में सुडौल स्वरूप है[1] पुरुषाकृतियों में फर्रे जैसी मूछें, नाव जैसी पगडी , जामा व पाजामा इसके साथ-साथ स्त्रियों में लंहगा, धोती,कंचुकी का प्रयोग भी अपनी एक विशेषता बन गई है । वस्त्रों को बडे ही सुघड ढंग से दर्शाया गया है[2] । अष्टयाम के बावन चित्रों में (चित्र सं० 93से95) रंगों का सपाट स्वरूप व वाह्य रेखायें अलंकारिकता की द्योतक हो गई हैं । अग्र और पृष्टभूमि में प्राकृतिक परिवेश भी चित्रकार के लिये महत्वपूर्ण रहा है जिससे पशु-पक्षियों का भी अंकन हुआ है । अहिरावण , पहलवानी ,खेत-खलिहान , उत्सव और सामाजिक विषयों में भी उपरोक्त विशेषता दिखाई पडती है । इन चित्रों में तत्कालीन परिस्थितियों एवं सामाजिक परम्पराओं का लेख-जोखा भी स्पष्ट हो गया है ।

बुन्देलखण्ड के चित्रों में लोकतत्व के साथ साहित्यक और श्रंगारिक विषयों का जिनका अलग अस्तित्व झलकला हेयहां की विशेषताओं व मान्यताओं का पूर्ण अवलोकन प्राप्त होता है इसमें इनके अस्तित्व को अलग से स्वीकारना होगा । बुन्देलखण्ड विभिन्न ठिकानों को कुछकलाविद् एक ही शैली का प्रभाव मानते हैं परसर्वेक्षण के दौरान इनमें कुछ न कुछ अपना निजस्व भी अवलोकित होता है और इसी लिये कुछ लोगों ने बुन्दलखण्ड चित्रशैली में दतिया व ओरछा चित्रशैली को अलग-अलग माना है तथा शेष अन्य ठिकाने इन्ही दो शैलियों से प्रभावित रहे हैं जो भी है बुन्देलखण्ड के गौरव बढाने में बुन्देलखण्ड के समस्त ठिकाने एवंयहां की शैलीका प्राचीन से विकसित स्वरूप प्रस्तुत करने में अपना पूर्ण योगदान करते हैं ।

1- डा० रामनाथ "मध्यकालीन भारतीय कलायें एवं उनका विकास"पृष्ट 9
2- डा० मोतीचन्द्र खजांची"मिनियेचर पेन्टिग कैटलांग" पृष्ट 56

बुन्देलखण्ड चित्रशैली का योगदान :-

किसी भी देश , जाति और वर्ग के ऐतिहासिक स्वरुप का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उनके विकास में कुछ ऐसी घटनाओं एवं परिस्थितियों का हाथ होता है जिससे उसकेसमस्त स्वरुप को आंका जा सकता है । कोई क्षेत्र या विषय क्यों न हो वह तत्कालीन समाज की परिधि में इसप्रकार बंधररहता है कि उसके अतीत की स्मृतियां उभर कर सामने आ जाती हैं चित्रकला के माध्यम से भी किसी भी देश , काल की संस्कृति का अवलोकन किया जा सकता है । युग परिवर्तनशील है , बदलते रहते हैं परन्तु उनके क्रमिक परिवर्तन से भारतीय चित्रकला के इतिहास में तत्कालीन संस्कृति व परिस्थितियों के अनुरुप जो परिवर्तन सामने आते गये हैं उससे सभी परिचित हैं । चित्रकला का इतिहास कई भंगों एवं कालों में विभाजित है जिससे उसकी विभिन्न विशेषतायें महत्व व योगदान सामने आ जाता है । भारत में क्षेत्रीय और धार्मिक एवं दार्शनिक परम्पराओं ने इसपर गहरा प्र भाव छोडा है जिसका अवलोकन किसी भी क्षेत्र व काल की संस्कृति एव चित्रकला के माध्यम से किया जा सकता है[1] ।

सौर्य ,पराक्रम एवं वीरता से ओत-प्रोत तथा प्रेरित बुन्देलखण्ड एक ऐसा उदाहरण है जहां के जनजीवन में यहां की संस्कृति अवलोकित होती है । राम और कृष्ण के उपासक बुन्देलखण्ड के नागरिक धार्मिक प्रवृत्ति से बंध गये हैं जिससे उनके जीवन का ध्येय भक्ति और श्रद्धा के साथ ही पूर्ण होता है जैसे - जैसे साहित्य का विकास इस क्षेत्र में हुआ और कवियों ने श्रंगारिक भावनाओं से प्रेरित होकर नये आयाम प्रस्तुत किये तभी से रागमाला ,राग-रागनी , दरबारी , भक्तिचित्र , धार्मिकचित्र पहलवानी के चित्र , अष्टयाम के चित्र , अहिरावणचित्रावली एवं छुटपुट चित्रों की भरमार सामने आई ।

1- डा० रामअौतार अग्रवालएवं डा० एस०डी०त्रिवेदी से विशेष सुझाव व निष्कर्ष

यहां की वीर प्रसूता भूमि में जन्मे गामा जैसे पहलवान लोकजीवन के कथानकों के विषय बन गये । बुन्देलखण्ड के चित्रों में लोकतत्व का चित्रण इतना अधिक हुआ है कि वहां समस्त चित्रशैली में इस बात का वा हुल्य दीख पडा और रंग -रेखा-आकार सबसे परिपूर्ण दिखाई देने लगे । अलंकरण , आभूषण , परिधान आदि इन समस्त वस्तुओं के चित्रण में वही स्वरूप सामने आया[1] । ओरछा के प्रमुख भित्ति चित्र प्रतिष्ठानों जिसमें रामराजा भगवान का मंदिर , लक्ष्मीनारायण का मंदिर , चतुर्भुज मंदिर आचार्य केशव भवन , जहांगीर महल , राजमहल आदि ऐसे स्थल हैंजहांकि यहां की परम्पराओंएवं जनजीवन की लोक भावनाओं का स्वरूप उभरकर सामने आया है । इनमें भक्तिभावना के स्वरूप का तो अतिक्रम है ही साथ में लोकतत्व की भी इतनी अधिता है कि दर्शक यहां के चित्रों को देखकर आवाक सा रह जाता है । इसीप्रकार समथर , अमरागढ, टहरौली एवं टोडीफतेहपुर में स्थित मंदिरों के चित्रों को देखकर उनमें ओरछा जैसी लोक भावनाओं का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है ।

महाराजा रुद्रप्रताप और वीरसिंहजूदेव एवं शत्रुजीतसिंह के शासन काल में विकसित मान्यतायें यहां की चित्रशैली में पूर्णरूप से निहित हैं । कलाकारों ने आलेखनों , नारीकुंजर , जलविहारी , धार्मिक विषय , दशावतार , मोरछल लिये स्त्रियां , संगीत रागमाला , दरबारी एवं सारस हाथी के अंकन में(चित्र सं0 6,7,13,18,22,23,24) इसका प्रभाव स्पष्ट अवलोकित कराने का प्रयास किया है इनमें रेखा , रंग , संयोजन एवं मानवाकृतियों का तत्कालीन शैलियों के मिश्रण से मिश्रित होते हुये भी अपना प्रथम स्थान महत्व बनाये हुयेहैं । विषय की व्यापकता एवं चित्रण प्रवाह इस शैली की प्रमुख विशेषता है ।

1- कुंवर संग्रामसिंह (लेख)"जयपुर्स यूनीक कण्ट्रीब्यूसन टू राजस्थान" वार्षिकी 1963 पृष्ट 26-30

तत्कालीन प्रचलित शैलियों में समस्त पहाडी,मुगल , राजस्थानी और स्थानीय प्रभाव से मण्डित यह बुन्देलखण्ड शैली इतनी प्रमुख है कि इसमें भारतीय चित्रकला के इतिहास के विकास में अपना पूर्ण योगदान किया है यही नहीं यदि इस शैली का अध्ययन गहराई एवं निकट से न किया जाये और इसका सही मुल्यांकन न किया जाये तो बुन्देलखण्ड क्षेत्र का सांस्कृतिक वैभव सामने ही न रह पायेगा । रीति कालीन कवियों की श्रंगारिक भावना एवं उसका यहां के सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन पर प्रभाव एक ऐसा उदाहरण है जिससे विशेष परिस्थितियों में कला के विकास को समुचित अवसर मिला । राय प्रवीण इसका जीता-जागता उदाहरण है जिसके प्रभाव से केशव और मतिराम जैसे प्रसिद्ध कवियों की कविता में निखार ही नहीं वरन राजनैतिक परिवर्तन भी उसमें देखने को मिला । संगीत और श्रंगार का साम्य इस शैली का एक अद्भुत उदाहरण है । महलों व मंदिरों में उपरोक्त विषयों से चित्रित भित्ति चित्र इसके साक्षात उदाहरण हैं ।

दतिया जो यहां के राजाओं का केन्द्रेविन्दु रहा वहां के प्रतिष्ठानों में भी जिनमें राजमहल , मकबरे एवं किला आदि अपनी गौरवमय गाथा के प्र ति अतीत की कहानी कहने में सजग हैं । टीकमगढ , बान पुर , झांसी , ललितपुर एवं छतरपुर के प्रमुख प्रतिष्ठान भी इस शैली के प्रमुख केन्द्र रहे हैं जिनका सर्वेक्षण करने पर यहां विकासक्रम सामने आया । लघुचित्रों में रेखाओं की वारीकी , चटकीले रंगों का प्रभाव , चेहरा लम्बा , आंखें कमल जैसी बडी , नासिका नुकीली व आम जैसा चेहरा अपना ऐसा प्र भाव छोडता है कि इसको देखकर यहां के लोगों का स्थानीय स्वरूप आंखों के सामने घूमने लगता है । चमडे पर चित्र , व्यक्ति चित्र एवं छुट-पुट चित्र यहां की कला परम्परा के विकास की वह कडी है जिसने यहां के कलाकारों की पूर्ण कुशलता का लाभ प्राप्त किया है ।

सभी चित्रित ग्रन्थों में कलाकारों ने लोकतत्व के साथ उन्हें महत्व देकर जनमानस के समीप ला दिया है। अहिरावण चित्रावली ,अष्ट याम चित्र , गीतगोविन्द , भागवतपुराण , रागमाला आदि के चित्र इस शैली के अद्भुत उदाहरण्ा हैं। बहुत से चित्रकार टीकमगढ व बानगढ में रहते हुये भी छतरपुरी ,टीकमगढी तथा कालपी के बादामी रंग के काग़ज पर एक लम्बे समय तक चित्रण करते रहे हैं[1]। स्थापत्य व मूर्ति के अद्भुत उदाहरण देवगढ , मदनपुर , छतरपुर व उसके आस-पास स्थानों पर उपर्युक्त परम्परा को विकसित करने तथा उसे आगे बढाने में पूर्ण सहायक हुये हैं।

इस प्रकार अजन्ता से राजपूत शैली वैसे ही राजपूत शैली से बुन्देली शैली का विकास हुआ पर मुगल कलम का दोनों पर प्रभाव है जो भी हो बुन्देली कलम की अपनी कुछ विशेषतायें हैं जिससे उसे राजपूत कलम से भिन्न पर प्रभावित मानना पडेगा। बुन्देली कलम से भारतीय चित्र शैली को एक विशेष योगदान मिला है एवं उसका एक विशिष्ट स्थान भारतीय कला के इतिहास में समस्त कलाविदों के लिये माना जाता है। एक प्रमुख शैली की भाँति इसके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। इसीलिये यह शैली अति महत्वपूर्ण है परन्तु अब भी इस शैली की कुछ सामग्री यहाँ के प्रसिद्ध एवं प्रमुख व्यक्तियों के निजी संग्रहों में है जिसको वे अपनी सम्पत्ति मानकर शोधकर्ता एवं कलामर्मज्ञोंको पूरे उत्साह के साथ नही दिखाते हैं इतना अवश्य है कि जिसदिन यह सामग्री निकलकर बाहर आयेगी तो बुन्देलखण्ड शैली के और भी तत्व निकलकर सामने आयेंगे और इसीलिये यहाँ का जनमानस इस आशा पर दृढ है कि बुन्देलखण्ड का गौरव भविष्य में उज्ज्वलता की ओर बढता ही रहेगा जिससे भारत की प्रमुख शैलियों में इसकी गिनती होगी और जिसका निर्णय भविष्य ही करेगा।

1- कलानिधि अंक - 1 भारत कला भवन वाराणसी पृष्ट 32

दिन-प्रतिदिन की खोजों एवं प्रकाशित सामग्री के द्वारा इसके अस्तित्व को आज भी कलाकार महत्वपूर्ण मानते हैं क्यों कि यह बुन्देलखण्ड सांस्कृतिक एवं एतिहासिक परम्पराओं को अपने आंचल में प्रमुख स्थान दिये हुये है । इसीलिये भारतीय चित्रकला के इतिहास में बुन्देलखण्ड चित्र शैली को प्रमुखस्थान दिलाते हुये इसके योगदान एवं महत्व को भुलाया नही जा सकता है ।

अध्याय-सप्तम

उपसंहार

बुन्देल खण्ड चित्रशैली की मान्यता भारतीय इतिहास की देन और महत्व।

अध्याय - सप्तम :---

बुन्देलखण्ड चित्रशैली की मान्यता :--

वर्तमान बुन्देलखण्ड जो प्राचीनकाल में चेदि , वत्स,दशार्ण , जेजाकभुक्ति आदि अनेक नामों से जाना जाता था । ईसापूर्व द्वितीय सती से ही न केवल राजनीतिक क्षेत्र में अपितु संस्कृत की विविध दिशाओं से प्रचुर पुरातत्वीय अवशेषों से सम्बद्ध है जिससे यहां की संस्कृति पर प्रभूत प्रकाश पडता है[1] ।

1- मामुलिया "त्रैमासिक पत्रिका अंक - 5 पृष्ट 85

बुन्देलखण्ड का क्षेत्र भारत के मध्यभाग में स्थित होने के कारणइसे भारत का हृदय ही नहीं वरन अपने अतीत के गौरव और परम्पराओं के प्रति भी महत्वपूर्ण योगदान रखता हैइसीलिये भारत में इसका विशिष्ट स्थान है। यह भूमि आर्य सभ्यता के आदि काल से बहुत ही पहले अनार्य कालीन संस्कृति के परम प्राचीनतम अभिनयों की लीला क्षेत्र रही है। प्राचीनता में पांचालदेशीय इतिहास को छोड़कर भारत के किसी अन्य प्रदेश का इतिहास बुन्देलखण्ड के साथ होड नहीं कर सकता है। वैदिक कालीन इतिहास और साहित्य से लेकर पौराणिक बौद्ध, जैन, मौर्य हूंड, कलचूरि, चन्देल, तथा आधुनिक साहित्यों और इतिहासों तक में इसके नगरों और नागरिकों का उल्लेख पाया जाता है[1]। यहां के गौरवमयी इतिहास की कहानी बुन्देलखण्ड और मालवा के क्षेत्रों में आज भी चरितार्थ है।

इसके इतिहास के पीछे यहां भी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का उल्लेख करना उतना ही महत्वपूर्ण होगा जितना इसके गौरवमय स्वरूप को समझा जाता है[2]। ललित कलाओं के उद्भव तथा विकास की दृष्ठि से बुन्देलखण्ड क्षेत्र का भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्थापत्यकला, चित्रकला तथा मूर्तिकला का इस भू-भाग में आद्यैतिहासिककाल से लेकर मध्यकाल के अन्त तक अनेक रूपों में विकास हुआ इसका प्रमाण यहां के बहुसंख्यक स्मारक, स्तूप, चित्र तथा मूर्तियां हैं जो बुन्देलखण्ड के विभिन्नस्थानों से प्राप्त हुई हैं।

बुन्देलखण्ड के ये प्रसिद्ध ठिकाने ओरछा, दतिया, टीकमगढ, बानपुर झांसी, मदनपुर, तालवेहट आदि प्रमुखरुप से उल्लेखनीय हैं इनके साथ-साथ समथर, गुरसराय, छतरौली, टोडीफतेहपुर, अमरागढ, विजना एवं धुवेला आदि भी उल्लेखनीय एवं उपरोक्त भावना से ओत-प्रोत हैं।

1-रामचरण हयारणमित्र"बुंन्देलखण्ड की संस्कृति और सहित्य"पृष्ट 2

2- गोरेलाल तिवारी "बुन्देलखण्ड का इतिहास" पृष्ट 4

भारत की चित्रकला में इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है आदिकाल से लेकर अबतक मानव के क्रमिक विकास के साथ चित्रकला का जन्म और विकास भी सामने आया है । गोहा चित्रों से लेकर अबतक की उसकी प्रगति बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है लगभग छे: सहस्र वर्ष प्राचीन अनार्य चित्रकला के चित्रों से माणिकपुर की वनस्थली में योगनियों की गुफा के द्वारों पर अंकित तथा अत्यन्त साधारण रेखाओं द्वारा व्यक्त किये गये हैं इस भूमि की पुरातन अर्द्ध सभ्यता को उपरोक्त चित्र प्रमाणित करते हैं । भित्ति चित्रण की परम्परा को मानव के इतिहास का प्रथम अध्याय कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी ।

प्रागैतिहासिक काल , बौद्ध काल , मध्यकाल , राजपूत और मुगल काल तक इसके बदले हुये स्वरुप मानव के क्रमिक विकास एवं परिस्थितियों को व्यक्त करता आया है । मध्य युग के बाद ही साहित्य के विकास भक्ति और रीति कालीन भावना का उदय यहां के सांस्कृतिक जीवन के लिये प्रमुख धारा बन गई[1] ।

प्रारम्भिक युग को पार कर भारतीय चित्रकला अजन्ता के युग से आती है अजन्ता की चित्रकला ने कितना विकास किया सभी को विदित है वह आज भी भारत की आदर्श बनी हुई है । आगेचलकर अजन्ता की यही शैली देश-काल के प्रभाव से कितनी ही अन्य शैलियों में प्रस्फुटित हुई जिन्हें आज हम राजपूत , कांगडा , मुगल , बुन्देलीकलम आदि के नाम से पुकारते हैं । मुगल , पहाडी तथा राजस्थानी शैलियों के निश्चित प्रभाव से बुन्देली कलम में निजस्व का अभास होता है[2] । तुलसी जैसे भक्त कवि और भक्ति भावना से प्रेरित अन्य तत्कालीन कवि इस क्षेत्रीय जनजीवन को अप्लावित करते हैं । बुन्देलखण्ड के मंदिरों , किलों महलों एवं मकरवों में यह भावना उकेरी और लिखी गई है ।

1- गजेटियर ओफ दतिया "मध्यप्रदेश 1977" पृष्ट 19

2- डा0 आनन्दकृष्ण "सर्वे ओफ राजस्थानी पेन्टिग्स" द्वितीय अध्याय

जनजीवन के प्रत्येक अंश को भावभूति रामचन्द्र एवं सूरदास के कृष्ण की समानान्तर भावना भक्ति साहित्य , सगुण और निर्गुण भावना से ओत-प्रोत हो गई लेकिन मुगलों के भारत में अस्तित्व से इसको ठेस पहुची और साहित्य के विकास में आलौकिकता से उबकर लौकिकता की ओर अपना लक्ष्य निर्धारित किया जिसमें श्रंगार और रीति साहित्य का होना स्वाभाविक हो गया । दिन-प्रतिदिन साहित्य के रूप में श्रंगारिक भावना जनजीवन तिक पहुंच गई । राग-रागनी , नायक-नायिका ,भेद-रीति चित्रण एवं संगीत आदि इनके विषय बन गये । बुन्देलखण्ड क्षेत्र में भी इसकी पुनरावृत्ति हुई है परिस्थितियों के अनुकूल यहां के कवि,शासक एवं जनसाधारण इस भावना में डूब गये[1] ।

पहाडी क्षेत्रों में गुलेर , कांगडा , बासोली , गढवाल, चम्बा और चूरपुर जैसे प्रसिद्ध ठिकानों में उपरोक्त भावना का उत्कर्ष तो प्रस्तुत हुआ ही पर उसका प्रभाव बुन्देली भूमि पर भी पडा । मालवा एवं दिल्ली के समीप होने के कारण मुगली नजाकत एवं नफासत तथा अदव-कायदे और शान-शौकत आदि की भावना भी इनकी अनुभूतियों में पाई जाती है । शासकों के परस्पर मधुर सम्बन्ध , आधिपत्य एवं समय - समय पर भेंट आदि होने के कारण ही इसका यह प्रभाव और ठोसरूप से सामने आयायहां के चित्रों के विषयवस्तु व्यापक एवं मिश्रित है । इन चित्रों में जितना अधिक लोकतत्व का समावेश है उतना ही सास्त्रीय तत्व को चित्रकारों ने अपनी शैली में समाहित किया है । यहां के किले , महल , मंदिरों आदि का अवलोकन करने से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि भारतीय चित्रण पद्धति प्राय: दो भागों में विभाजित की जाती है मुंगल कलम और राजपूत कलम । इस राजपूत कलम के अन्तर्गत ही बुन्देली कलम को माना जाता है जिससेइन कलमों का एक दूसरे से एहुत घना सम्बन्ध है[2] ।

1- ललितकला एकादमी न्यू दिल्ली मिनियेचर पेन्टिग पृष्ट 14-18

2- रामचरणहयारणमित्र"बुन्देलखण्डी चित्रकला ‡बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य‡ पृष्ट 253

कुछ विद्वानों ने इसको पहले राजपूत कलम कहकर ही सम्बोधित किया था और वे इसके स्वतन्त्र अस्तित्व के प्रति एक मत नहीं थे परन्तु अब यह मत धीरे-धीरे बिल्कुल ही इसके विपरीत हैं और इसके स्वतन्त्र अस्तित्व को सभी स्वीकारते हैं[1] । इनका कहना है कि जैसे अजन्ता से राजपूत कलम का विकास हुआ वैसे ही राजपूत कलम से बुन्देली कलम का पर मुगल कलम का दोनों पर प्रभाव है । बुन्देली कलम में अपनी कुछ विशेषतायें हैं जिससे उसे राजपूत कलम से भिन्न ही मानना पडेगा । इस चित्रशैली के स्वरुप में अजन्ता से लेकर राजपूत और मुगल काल का प्रभाव तो परिलक्षित होता ही है साथ ही उसका क्षेत्रीय प्रारूप इतना पुष्ट और प्रबल है कि उसके अस्तित्व का निर्माण कई शताब्दियों में हुआ है इसी लिये बुन्देली शैली भारतीय चित्रकला के इतिहास को एक विशिष्ट देन है ।

बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध शासकों में महाराजा रुद्रप्रताप , भारतीयचन्द्र मधुकरशाह , वीरसींहजूदेव , देवीसिंह , जुझारसिंह , पहाडसिंह ,शत्रुजीत सिंह ,वीरसिंह और राजा परिक्षित आदि का नाम प्रमुख माना जाता है । इन शासकों ने अपने - अपने शासन काल में यहां की संस्कृति , साहित्य और ललितकला के प्रति अपना विशेष अनुराग प्रदर्शित किया है महाराजा वीरसिंहजूदेव और मधुकरशाह के शासनकाल में इसकी बहुमुखी उन्नति हुई । ओरछा का रामराजा भगवान का मंदिर , चतुर्भुजमंदिर लक्ष्मीनारायण मंदिर और जहांगी महल आदि इसके साक्षात उदाहरण हैं । इसमें चित्रित भित्ति चित्र बुन्देलखण्ड चित्र शैली के अनुपम उदाहरण हैं[2] । इनमें लोक भावना एवं पौराणिक कथानक अधिक चित्रित हुये है तत्कालीन चित्रकारों ने भक्ति और श्रंगारिक विषयों को भी अपनी तूलिका से महत्व पूर्ण पद प्रदान किया है ।

1- हरमनगोयेज "लेख जयपुर पेन्टिग्स" पृष्ट 59

2- रामचरणहयारणमित्र "त्रतीय उन्मेश" पृष्ट 267

यहां के लघु चित्रों की चित्रशैली में धार्मिक , दरबारी, दशावतार एवं पशु-पक्षि के अंकन को भी चित्रकार ने नहीं भुलाया है (चित्र सं० 75से86) बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध स्थान ओरछा के चित्र बुन्देलीकलम के प्रारम्भिक चित्र ही माने जाते हैं उनमें दतिया के चित्रों की भांति बारीकी , रंगशोष्ठव एवं आकृतियों में वह स्वभाविकता नहीं मिलती ज जो दतिया के प्रसिद्ध मकरवों एवं लघुचित्रों में मिलती है इसीलिये ओरछा की मान्यता अधिक है क्यों कि आरम्भ से यही प्रेरणा का श्रोत बना जो बाद में दतिया एवं बुन्देलखण्ड के अन्य प्रतिष्ठानों में प्रस्फुटित होकर विकसित रुप से सामने आया है[1] । बुन्देलखण्ड के दूसरे प्रमुख स्थान दतिया की चित्रशैली ओरछा की भांति अधिक परिस्कृत और सुन्दर है यहां के भित्ति चित्रों में राजमहल और मकरवे(चित्र सं० 22से30) ऐसे प्रतिष्ठान है जहां कि अन्य स्थानों से यहां के चित्र अच्छे माने जाते हैं चित्रकारों ने अधिक रेखाओं के अंकन में बारीकीपन एवं लयात्मकरुप प्रस्तुत करने में सर्वथा प्रयास किया और रंगों को चटकीला तथा मुखाकृति को सुन्दरता के साथ उकेरा हैयहां के कलाकारों ने काव्य रचना से प्रभावित होकर लघुचित्र और पोथीचित्र (चित्र सं०75से95) बडी संख्या में चित्रित किये हैं । केशव की रसिक प्रिया , कविप्रिया ,मतिराम का रसराज , विहारी की विहारी सत्सई , भगवतपुराण , गीतगोविन्द और रामायण जैसे विषयों को अधिक महत्व देकर इस शैली के महत्व में चारचांद लगा दिये हैं ।

बुन्देलखण्ड के साहित्यकार और चित्रकार समाज में एक जैसा स्थान प्राप्त किये हुये थे । तत्कालीन शासकों ने साहित्यकारों और चित्रकारों को उनके कार्यों के प्रति प्रोत्साहित कर सदैव आगे बढने के लिये आकर्षित किया ।

1- वाचस्पति गैरोला" भारतीय चित्रकला" पृष्ट 185-187

प्रसिद्ध चित्रकार केसरीसिंह, रामदयाल खेरा, सुखदेव उस समय के अच्छे चित्रकार थे। पं० केशरीसिंह के वंशज इस कला से विशेष प्रेम रखते थे[1]। इन लोगों ने यहां की परम्पराओं को जीवित रखने में अपूर्व योगदान दिया। टीकमगढ, बानपुर, झांसी, ललितपुर, दतिया, ओरछा आदि अन्य स्थनों के चित्रण पर इन शैलियों का प्रभाव रहा जिससे बुन्देलखण्ड चित्र शैली को आज भी गौरव प्राप्त है।

1- राममित्र चतुर्वेदी "ओरछा" पृष्ट 69, 70

बुन्देलखण्ड चित्रशैली का भारतीय इतिहास को देन और महत्व :-

भारतवर्ष के इतिहास में यह बात प्रसिद्ध है कि सदैव संस्कृति और धर्म रक्षा के निमित्त बुन्देलखण्ड के शासक युद्ध करते रहे हैं। पराक्रमी, वीर तथा धार्मिक महापुरुषों की जन्म एवं कर्मस्थली बुन्देलखण्ड को भारतीय संस्कृति में प्रमुख स्थान प्राप्त है यहां के प्रसिद्ध ठिकानों में ओरछा, दतिया, टीकमगढ, झांसी, ललितपुर आदि रहे हैं। प्रतिवर्ष हजारों दर्शनार्थी इन तीर्थ एवं एतिहासिक स्थलों का अवलोकन करने आते हैं यहां के किलो, महलों आदि में ऐसा गौरव छिपा है जोकि इस वीरभूमि की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक स्वरूपों की झांकियां प्रस्तुत करता है आज भी यहां के किले, हवेलियां और उनके खण्डहर गौरव के साथ खडे तत्कालीन साहित्यिक और वीर सामन्तों की याद दिलाते हैं। जिन्होंने इनमें निवासकर अपनी संस्कृति की छाप छोड रखी है। ओरछा के चतुर्भुज मंदिर में झांसी की झांकी आज भी देखने को मिलती है। महाराजावीरसिंहजूदेव ने एक ही मुहूर्त में बावन महल, बावन किले और बावन बावडियों का निर्माण कराकर बुन्देलखण्ड को एक वैभवशाली रुप प्रदान किया था[1]।

मधुकरशाही तिलक के प्रवर्तक महाराजा मधुकरशाह ने शहन्शाह अकबर के आदेश का उल्लघन कर जो उदाहरण यहां के इतिहास में प्रस्तुत किया वह जनजीवन केलिये अमर कहानी के रुप में प्रचलित है। यह इस पुण्य भूमि का ही प्रताप है। इसीप्रकार महाराजा पहाडसिंह ने जब गौणवाने में गायों द्वारा हल चलाने की बात सुनी तो अपनी फौज की सहायता से उसको अपने अधिकार में करके इस कुप्रथा को सदा के लिये समाप्त कर दिया।

1- अम्बिकाप्रसाद वर्मा "ओरछा की चित्रकारी" पृष्ट 62-67

यह वह नगरी है जहां सत्यप्रिय लाला हरदौल ने अपने भाई राजा जुझारसिंह की रानी के हाथों से भोजन में विषपानकर ओरछा और देश की आन पर अपने प्राणों को न्योछावर कर दिया आजभी बुन्देलखण्ड के हिन्दू समाज में कोई भी मांगलिक कार्य बिना लाला हरदौल की अर्चना के प्रारम्भ नहीं किया जाता है। यहां के इतिहास में महाराजा चम्पतराय ,महारनीगणेशकुंवर की धर्म परायणता एक लोकगाथा के रूप में आज भी प्रचलित है। अकबर के पुत्र जहांगीर का सम्मान बुन्देलखण्ड के गौरव ओरछा में किया गया था। ओरछा का जहांगीरमहल इस बात की पुष्टि करता है। यहीं पर अकबर के पराक्रमी सेनापति अबुलफजल का दक्षिण यात्रा से लौटते समय जहांगीर को प्रसन्न करने के लिये उसका वध कर दिया गया था[1]। इसप्रकार यहां बहुत से ऐसे कथानक हैं जिससे इस क्षेत्र की ऐतिहासिकता का प्रमाण मिलता है।

भगवान राम और कृष्ण के जीवन गाथाओं से यह परिपूर्ण भूमि भक्तिभावना से ओत-प्रोत भारतीय नर-नारियों के लिये एक आकर्षक केन्द्र रहा है। भक्ति भावना का यह श्रोत यहां के जनमानस को आज भी आप्लावित कर रहा है। कृष्ण राम के उपासक निर्गुण और सगुण पंथी लोग आज भी धार्मिक भावनाओं से जुड़े हैं। मंदिरों का स्थापत्य और देवगढ की मूर्तियां इस भावना के जीते-जागते उदाहरण हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त करने का श्रेय इसी क्षेत्र के महाकवि केशवदास , मतिराम , रायप्रवीण एवं घासीरामव्यास आदि को है जिन्होंने अपनी लेखनी से साहित्य की वेगवती धारा प्रवाहित कर इसे अमरता प्रदान की। बुन्देलखण्ड के अनेक ऐतिहासिक नगरों का स्वरूप विगड चुका है परन्तु फिर भी यहां के वैभव को देखकर प्रत्येक यात्री आकर्षित हो जाता है जिससे इसका महत्व आज भी विद्यमान है।

1- गजेटियर ओफ इण्डिया मध्यप्रदेश दतिया राज्य पृष्ट 10

भारतीय चित्रकला के इतिहास में बुन्देलखण्ड की विकसित एवं पल्लवित चित्र शैली अपनी ऐतिहासिक भूमिका के साथ-साथ कलात्मक भावनाओं का भी प्रतिरूप है । कुछ लोगों ने पहले यहां की शैली को राजपूत चित्रकला का एक भाग माना था परन्तु यहां के विभिन्न पहुलुओं के अध्ययन से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि इसका अपना एक स्वतन्त्र स्थान है है साथ ही इस बात को भी पूर्णत: नहीं नकारा जा सकता कि इसपर मुगल तथा राजपूत चित्रशैली का प्रभाव है । इस पर राजपूत एवं मुगल चित्रशैली का प्रभाव इतनी भिन्नता के सथ है कि जिससे इसका अपनप एक अलग अस्तित्व सामने आता है ।

इस शैली में रूप-रंग,संयोजन,स्थानीय वेश-भूषा,आभूषण और रूप सज्जा के अनुसार रूंग चटकीले हैं , रेखायें बारीक तथा लोकतत्व का समिश्रण विषय की व्यापकता को बढाताहै । यहां के चित्रकार ने अपने चित्रण विषयों में शिकार , लडाई ,भक्ति,श्रंगार और दैनिक जीवन से सम्बन्धित विषयों को प्राथमिकता देकर अपने भावों का प्रदर्शन किया है । मुगल चित्रकारों की भांति दरबारी विषयों को ही केवल मान्य ता प्रदान नहीं की है वरन उनमें आनन्द ,उत्साह ,उमंग और संगीत के भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होते है[1] ।

यहां के चित्रकार ने समय का ध्यान रखकर चित्रण किया तथा उसमें सजीवता लाकर विषयवस्तु को पूरा किया । उसके चित्रों में नफासत और रेखाओं की सुन्दरता का आकर्षण उतना अधिक नहीं है वरन चित्रकार ने विषय को अत्यधिक रुचिकर एवं आकर्षित बनाने का ध्यान दिया । यहां के प्रमुख चित्रों में नारीकुंजर,दशावतार ,जलविहार , पशु-पक्षी और राम-कृष्ण की लीलाओं तथा आलेखन जैसे विषयों को अप नी तूलिका के माध्यम से चित्रित किया है ।

1- प्रेमचन्द्र गोस्वामी"कला सन्दर्भ और प्रकृति" पृष्ट 14,15

राजस्थानी और पहाडी चित्रों की भाँति रागमाला विषय भी यहाँ पर प्रचलित हुये पर उनमें पहाडी शैलियों जैसा वैभव देखने को नहीं मिलता है । यहाँ के चित्रकार ने अलंकारिक पक्ष को महत्ता देते हुये प्रकृति एवं नायक-नायिका के भावों का सूक्ष्मता के साथ अवलोकन नहीं किया है वरन वास्तविकता के साथ सौन्दर्यानुभूति प्रदर्शित करने के लिये अलंकारिक रूप प्रदान किया जिसे हर स्थान पर देखा जा सकता है । पशु-पक्षियों के चित्रण के प्रति इनकी रुचि प्रभावित प्रतीत होती है । व्यक्ति चित्रों और लोकगाथाओं के चित्रों में लोकभावनाओं की भरमार दृष्टिगोचर होती है । अपने विषयवस्तुओं में पहलवानी जैसे भावों को भी चित्रकार ने अछूता नहीं छोडा है । ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ का चित्रकार राजमहलों, मंदिरों से लेकर क्रीडास्थलों एव खेत-खलिहानों तक अपनी विहंगम दृष्टि डालकर चित्रण हेतु विषयों का चयन करता था यह उसकी सौम्यता एवं सरलता का प्रतीक है ।

बुन्देलखण्ड के अनेक प्रतिष्ठित ठिकानों में दतिया राज्य का भी पूर्ण ऐतिहासिक योगदान है । यहाँ के राजमहल, किले, मकरवे आदि इतने महत्वपूर्ण हैं जिनमें तत्कालीन गौरवमय गाथा पूर्णरुप से अवलोकित होती है । यहाँ के विभिन्न स्थलों पर स्थापत्य और चित्रकला के नमूने बिखरे पडे हैं । ओरछा के चित्रण से पृथक यहाँ के महल और मकरवों की भित्ति चित्रण में आयरस प्रणाली दृष्टिगोचर होती है । चित्रकार ने रेखाओं को बारीक से बारीक बनाते हुयेउसमें गति एवं लय का पूर्ण संयोजन प्रस्तुत किया है । इनके रंगों का प्रभाव साधारण परन्तु आकर्षकता लिये हुये है । मुगल कला की भाँति रंगों में चटकीला पन भी दृष्गिोचर होता है ।

इन सब विशेषताओं के अतिरिक्त चित्रकार ने मानवचित्रण में बुन्देली प्रतिभा को ध्यान में रखते हुये लम्बा व छरहरा शरीर , लम्बी नाक, एवं नुकीला आम जैसा चेहरा , बडी आंख तथा माथा पीछे को ढला हुआ एवं लम्बी गर्दन का चित्रणकर विशेषता प्राप्त की है (चित्र सं0 58 77,81) मानव आकृति के चित्रण के साथ-साथ चित्रकार ने बुन्देलखण्डी परिधान जैसे जामा-पाजामा ,अंगरखा,दुपट्टा और ढीला साफा क्षेत्रीय प्रभाव में मण्डित (चित्र सं0 40,58,778) विशेष रूप से चित्रित किया है महाराजा परिक्षित के शासनकाल में इसप्रकार के चित्रण को विशेष प्रोत्साहन मिला है जिससे यहां की कला चर्मोत्कर्ष पर पहुंच सकी । स्त्रियों के चित्रण करते समय भी तत्कालीन चित्रकार ने उनकी आकृतियों , पहनावे में लंहगा , ओढनी,ब्लाउज और कंचुकी तथा आभूषणों में करधनी , कडे , झाझे , कंगन , बिछुये , लच्छे और कंठी आदि के चित्रण में (चित्र सं05,20,28,57,58,79) बडी योग्यता के साथ अपनी तुलिका को गति प्रदान की थी । स्त्रियों के इस प्रकार के चित्रण से ऐसा विदित होता है कि वे लोग माया मोह में अधिक लिप्त थीं क्यों कि शरीर पर अत्यधिक आभूषण इस बात के द्योतक है इसके अलावा उनके शारीरिक हाव-भाव में भी उत्साह और जीवन का स्पन्दन स्पष्ट परिलक्षित होता है । जिसप्रकार बासौली शैली के चित्रकार ने स्त्रियों का चित्रण किया ठीक उसी प्रकार बुन्देलखण्डी चित्रकार ने भी पुरुषों की भांति स्त्रियों का चित्रण किया जिसको देखकर छत्राणी के रूप जैसा प्रभाव दर्शक पर पडता है । बुन्देलखण्डी चित्रकार ने स्त्री के चित्रण में उन सभी तत्वों जैसे कोमलता , नाजुकता और सौन्दर्यता आदिको इतना अधिक कुशलता से नहीं चित्रित किया है जितना कि मुगलचित्रकार ने ।

यहां के चित्रों में गहरा बादामी ,नीला,हरा,काला रंग का बाहुल्य अधिक है जिससे सास्त्रीय चित्र लोक तत्व से कम प्रभावित प्रतीत होते हैं । बुन्देलखण्ड के कुछ प्रतिष्ठानों में से जैसे ओरछा एवं दतिया के चित्रण में यह मूलभूत अन्तर मिलता है । एक में लोकतत्व है तथा दूसरे में सास्त्रीय तत्व अधिक है[1]। बुन्देलखण्ड के मंदिरों के चित्रण में जहां लोकतत्व अधिक दृष्टिगोचर होता है वहीं दूसरी ओर यहां के मकरवों एवं महलों आदि के चित्रण में सास्त्रीय तत्व का प्रभाव अधिक अवलोकित होता है इसीप्रकार का अन्तर यहां के हस्तलिखित ग्रन्थों के चित्र एवं लघुचित्रों में भी पाया जाता है। टीकमगढ,बानपुर ,आदि स्थानों में भी इस शैली के प्रभाव को और भीअधिक बल मिला है इसी प्रकार व्यक्ति चित्रों के द्वारा महाराजा के अदम्य साहस और वीरता के दर्शन उनकी पगडी,फर्रेदार मूंछें , बडी एवं खुली हुई आंखें ,हीरे-मोतियों की मालायें तथा उनकी बुन्देली वेश-भूषा (चित्र सं0 97 इसको और भी अधिक चरितार्थ कर देती है । तत्कालीन राजा एवं महाराजाओं की वेश-भूषा का अवलोकन उस समय के एक ग्रुप(फोटो) के द्वारा किया जा सकता है (चित्र सं0 98) जो कि दतिया के महाराजा के यहां से प्राप्त किया गया और उससे इस बात की पुष्टि भी होती है कि तत्कालीन शासकों की वेश-भूषा वैसी ही है जैसी कि चित्रकार ने चित्रित की थी । बुन्देलखण्ड के भित्ति चित्र एवं लघुचित्र इस श्रंखला में इतने अद्वितीय और अनुपम हैं कि जिससे इस शैली को गौरव मय स्थान मिलने के साथ-साथ इस क्षेत्र का गौरव और भी बढ गया।

बुन्देली चित्रकार ने अपनी कलम से यहां संस्कृति के प्रतीकात्मक किसी भी क्षेत्र को चित्रण करने से नही छोडा उसने छोटे-मोटे चित्रण में उत्सव , पहलवानी ,अहिरावणचित्रावली,रागमाला,संगीत,सितारवादन एवं अष्टयाम के चित्रों आदि को अपनी साधना से खुलकर चित्रित कियाहै।

1- मोतीचन्द्र खजांची"कैटलांग ललितकला एकादमी।960 मिनियेचर पेन्टिग्स भूमिका

चित्रों में हाँसिये तथा उनमेंअलंकरण युक्त आलेखन इनकी प्रमुख विशेषता है (चित्र सं0 27, 29, 31, 38, 53, 65) जिसकी हर कला मर्मज्ञ सराहना करता है । लघुचित्रों को बनाने में वसली का प्रयोग भी एक ऐसी विशेषता है जो राजस्थानी और मुगल प्रभावों की देन कही जा सकती है । नीति दोहों पर बने चित्र उपरोक्त तथ्यों के आधार पर राजपूत और मुगलशैली की उपशैली न होकर अपनी मूल परम्पराओं से बंधी स्वतन्त्र शैली प्रतीत होती है । अजन्ता के बाद यहां के चित्रों में भारतीयता के सभी पक्षोंका आंकलन इसी से प्रस्फुटित हुआ है ।

बुन्देलखण्ड अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता की नीति पर स्थिर होने के कारण यहां की प्राचीन परम्पराओं के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध है । धर्मप्रधान देश होने के कारण यहां का प्रत्येक निवासी आचार और विचारों में धर्म को आदर्श मानकर उन्हें कार्यरुप प्रदान करता है । यही कारण है कि यहां अनेक धर्म होते हुये भी उनके अन्दर उनमें एक रुपता की भावना समायी हुई है और इसी लिये यहां के विभिन्न धर्मों जैसे बौद्ध, जैन, वैष्णव और शैव धर्म का प्रभाव यहां की चित्र शैली पर भी पूर्ण रुप से दृष्टिगोचर होता है । उसमें समाज और समुदाय की समग्र एकता का वातावरण कला को एकसूत्र में स्थापित करती रही जिससे कला केन्द्रों में धार्मिक अभिजात्य एवं तथ्यों का स्वरुप सदैव संचित रहा है ।

अतीत से चित्रकार केवल धार्मिक तथ्यों को विभिन्न माध्यमों से चित्रित करता चला आ रहा है और यही कारण हैं क प्राचीन से से प्राचीन भारतीय कला के उत्कर्ष के उदाहरण आज भी मिलते आ रहे हैं ।

इसमें स्थानागत देवी-देवताओं के चित्रों की वाहुल्यता हैयहां तक कि प्राचीनकाल से लेकर नौवी शताव्दी के पूवार्द्धतक ब्राम्हण ,जैन,बौद्ध, राजपूत और पहाडी चित्रकला धर्म की भावनाओं से ओत-प्रोत है जिसमें मात्र देवी-देवताओं के विविध आयामों का अंकन है विशेषकर राजस्थानी, पहाडी चित्रकला में तो इसकी भरमार रही है जो उनकी परम्परागत भौतिकता का प्रतीक कही जा सकती है । बुन्देलखण्डी चित्रशैली में भी इसकी पुष्टि हो जाती है ।

विभिन्न स्थानों की शैलियों के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि जहां राजस्थानी चित्रकार ने हिन्दूधर्म की पौराणिक कथाओं , धारणाओं और दन्तकथाओं को अधिक चित्रित किया है वहीं दूसरी ओर बुंन्देलखण्डी चित्रकार ने राम और कृष्ण को केन्द्रित करके वैष्णव व शैव धर्म पर आधारित विषयों का चित्रणकर अपनी साधनाको पूरा किया । इससे यह स्पष्ट होता है कि यहां की आत्मा में उनकी गहरी आस्था व विश्वास है हिन्दू धर्म के आधार पर मनुष्य ने अपने जीवन के आधार को धर्म ,अर्थ ,काम,मोक्ष इन चार सिद्धान्तों पर टिका रखा है इसीलिये यहां के चित्रकार अपनी कला के माध्यम से हिन्दूधर्म के सिद्धान्तों को पूरा करने में संलग्न रहे । हिन्दू धर्म पुराणों पर भी आधारित है इस लिये चित्रों के विषय राम,सीता,राधा,कृष्ण ,गोप,गोपियां,शंकर,पार्वती आदि देवी-देवताओं से सम्बन्धित उनकी विभिन्न मुद्राओं और भावनाओं तथा लक्ष्यों के साथ-साथ वातावरणनीय प्रभाव से प्रभावित एवं चित्रित हुये हैं । इसीलिये प्राचीन बौद्ध धर्म की परम्परा का स्थान हिन्दू धर्म ने ग्रहण कर लियेा इस प्रकार राजस्थानी चित्रकला अपनी परम्परा में पूर्ण रूपेण स्थिर रही और यह प्रभाव बुन्देली चित्रकला का भी मूल बना है[1]।

1- डा0 रामनाथ "मध्यकालीन भारतीय कलायें एवं उनका विकास "
पृष्ट 9,10

बुन्देलखण्डी चित्रकार ने धर्म के अतिरिक्त सामाजिक जीवन की झलकियों को भी अपनी तूलिका का विषय बनाकर तथा उसमें भी किसी अंश में धार्मिक भावनाओं की पुट देकर अपनी साधना को पूरा किया। यही कारण है कि यहां के चित्रों में दैनिक जीवन की क्रियायें व्यक्तिगतजीवन ,घरेलू जीवन और ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित विषयों के चित्रण की अनेक कृतियां यहां की कला के माध्यम से उभर कर सामने आयीं हैं। पशु-और पक्षियों के चित्रों को देवी-देवताओं के चित्रों के साथ चित्रित कर चित्रण शैली में चार चांद लगा दिये हैं। दर्शक जैसे ही इन चित्रों को देखता है वह देवताओं के समक्ष नतमस्तक हो अपनी श्रद्धा ,प्रेम,उपासना प्रस्तुत कर बैठता है। गाय,मृग,सिंह,बैल, मोर और हंस का चित्रण प्रतीकात्मक ढंग पर करके एक नया आदर्श एवं उदाहरण कला के क्षेत्र में प्रस्तुत किया है। राम और कृष्ण के जीवन की झांकियां चित्रों में संजाई गई व भक्ति तथा रीति कालीन साहित्य का प्रभाव भी चित्रकला में पूर्ण रूपेण उभर कर सामने आया है। इसप्रकरर बुन्देली चित्रकार ने धार्मिक,सामाजिक एवं पारिवारिक तथा जन-जीवन के सामान्यएवं व्यक्तिगत विषयों को अपनी तूलिका के माध्यम से उरेह कर भारतीय चित्रकला के इतिहास में अपनी शैलीगत विशेषताओं को गौरान्वित किया है।

प्रकृति के चित्रण में चित्रकार ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जिससे ऐसा आभास होता है कि उसकी दृष्टि अपने आश्रयदाताओं तथा देवी-देवताओं को छोडकर प्रकृति की ओर गई ही नहीं। उसके वृक्षों एवं बादलों के चित्रण में स्वाभाविकता नहीं झलकती है इनका चित्रण मात्र स्थानापन्न पूर्ति के लिये ही किया गया है। मानव चित्रण को ही वह अपना अभीष्ठ समझता था तथा चित्र की अन्य सजावट उसके लिये गौड थी परन्तु फिर भी तत्कालीन चित्रों में सुन्दरता कम नहीं होने पायी।

बुन्देली चित्रकार ने इमारतों के चित्र बनाने में प्राय: सामने का ही दृश्य अंकित किया । इमारत के भीतरी भाग के चित्रण का प्रयास नहीं किया ऐसा प्रतीत होता है कि इमारतों का चित्रण भी उसके लिये गौड था[1] । तत्कालीन चित्रकारों ने कवियों की वाणी को साकार करना आरम्भ कर दिया । सूर,तुलसी,मीराबाई के साथ-साथ केशव,विहारी,मतिराम,देव आदि की कृतियों ने चित्रकला के इतिहास में अपार विषय सामग्री प्रदान कर भारतीय चित्रकला की अपूर्व अद्भुत वृद्धि की । इसका प्रभाव सभी स्थानों पर देखा जा सकता है । राजस्थानी ,पहाडी,बुन्देलखण्डी तथा मालवा की शैलियां इससे इतनी प्रभावित हो गई कि उनकी सांस्कृतिक वृत्तिविधियां इस भावना से ओत-प्रोत हो गई तथा भित्ति ,लघु और पट चित्रों के रुप मेंयह भावना सुरक्षित हो गई । राजस्थान के कितने ही नगर राजघराने तथा धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठान इनके केन्द्र बने । कांगडा,बासौली , चम्बा, नूरपुर , बुन्देलखण्ड और मालवा भी इससे अछूते नहीं रहे । इनकी चित्रकला पनपी और विकसित हुई तथा बहुत सी शैलियों व उपशैलियों का रुप धारण कर महलों ,हवेलियों , मंदिरों तथा व्यक्तिगत संग्रहालयों में सिमटी पडी हैं । बुन्देलखण्ड क्षेत्र में भी उपरोक्त भावना से प्रेरित कलात्मक वैभव को आजभी अपने आंचल में समेटे हुये अवलोकित किया जा सकता है । जिसे भारतीय चित्रकला के इतिहास में एक सांस्कृतिक धरोहर के रुप में एक अपूर्व देन कही जा सकती है ।

भारत में मुगल शासन के अन्तिम चरण के पूर्व ही मुगल चित्रकार का स्तर धीरे-धीरे घटने लगा था यहां के कलाकार अपने आश्रयदाताओं का अनुकूल सहयोग न पाकर अपनी कार्यकुशलता के आधार पर विभिन्न हिन्दू रियासतों ,रजवाडों एवं प्रसिद्ध ठिकानों में सरलता से सरक्षण पाने में सफल हो गये थे ।

1- रामचरण हयारण मित्र"बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य"पृष्ट 255-256

पश्चिम में राजस्थान व पंजाब, दक्षिण में कहाराष्ट्र तथा मैसूर, उत्तर में कश्मीर, हिमांचलप्रदेश और गढवाल, पूर्व में लखनऊ, पटना, बुन्देलखण्ड ग्वालियर, मालवा आदि स्थानों तक फैल गये थे तथा पूर्ण प्रयास से कला को पुनर्जीवित करने में जुटे थे। पश्चिम में जो राजस्थान प्रान्त था वहां हिन्दू जीवन से सम्बन्धित विषयों को चुनकर तथा उसमें प्राकृतिक परिवेश को लेकर रूप सज्जा और भक्ति भावना से ओत-प्रोत इन की चित्रशैली बन गई। इसके अतिरिक्त चित्रकार ने भावांकन के लिये अजन्ता की लोप्रिय शैली को अपनाया परन्तु इतना होते हुये भी चित्रकार मुगल चित्रकला की विशेषताओं जैसे प्रकाश, छाया, चटकीली रंगयोजना, और बारीक रेखांकन आदि को नहीं भूले यही कारण है कि उनकी कला में श्रंगार, प्रसाधन व सौन्दर्य की भावना से प्रेरित आध्यात्मिक भावनाओं का साकार व मूर्तिमान चित्रण चित्रकार ने अपनी तुलिका से कर दिया तथा दूसरी ओर उनका ध्यान श्रंगार की चर्मोत्कर्ष दशाओं को रूप, रंग और सजीवता प्रदान करने के लिये कोई कसर नहीं छोडी और इसीलिये उनको कला के क्षेत्र में सर्वांगीण सफलता मिली। परिणाम स्वरूप प्राकृतिक वातावरण से पल्लवित समस्त राजस्थान और पहाडी क्षेत्रों के किले, महल, रियासतें, मंदिर यहां तक कि घर और आंगन की दीवारें तक कला की पृष्टभूमि में चित्रित की जाने लगी और कलाकारों ने यहां शरण पाकर कला की पूर्ण एवं सफल साधना की जो कि आज भी आकर्षण के केन्द्र बने हुयेहैं। इसका प्रभाव बुन्देली चित्रकारों पर भी पडा। और सामन्जस्यपूर्ण स्थिति में इस कडी को जोडते हुये चित्रकला के विकास में पूर्ण योगदान किया। वैसे तो देखा जाये तो कला के माध्यम से इन रियासतों एवं रजवाडों के विकास और पतन की स्थितियों का स्पष्ट अवलोकन किया जा सकता है पर बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध ठिकाने तत्कालीन चित्रकारों के प्रमुख केन्द्र होने के साथ-साथ उनकी सुन्दरतम चित्रशैली के नमूने आज भी अपने आंचल में समेटे हुये है।

उनके कला कौशल की झांकी आज भी दर्शकों को प्रभावित करती है इससे यह आभाषित होता है कि बुन्देले शासकों ने चित्रकारों को सरण देने के साथ-साथ उन्हें प्रोत्साहन और प्रेरणा देकर तत्कालीन संस्कृति और साहित्य को सुरक्षित रखने में पूर्ण योग दिया ।

बुन्देलखण्ड की यह अनोखी धरोहर आज भी सर्वत्र उपलब्ध है जब कि कुछ व्यापारियों एवं संग्रहकर्ताओंने यहां की कला के उत्कृष्ट कृतियों का व्यापार कर बहुत सा धन अर्जित किया है आज भी जिनके पास तत्कालीन कृतियां सुरक्षित हैं वह उन्हें प्रदर्शित करने में भयभीत है कि कहीं उन पर कोई दूसरा अधिकार न कर ले । यहां की भोली जनता को प्रलोभन देकर कौडियों के भाव बहुमूल्य चित्रों को लेकर लोगों ने बहुत लाभ उठाया है । समस्त राजस्थान एवं बुन्देलखण्ड का क्षेत्र इस प्रकार की प्रवृत्ति का शिकार रहा और लोगों ने इनको उजाडने में कोई कसर नही छोडी । सौभाग्यवश भारतीय सरकार ने इस ओर ध्यान देकर प्रमुख स्थानों पर संग्रहालय स्थापित करके एवं उनकी देख-रेख में प्रमुख प्रतिष्ठानों को उनके अधिकार में केन्द्रित कर दिया जिससे प्राचीन सम्पदा एवं धरोहर को सुरक्षित रखा जा सके ।

सर्वेक्षण यात्राओं के दौरान विभिन्न स्थानों पर जाने से पता चला कि अब भी बहुत से ऐसे स्थान है जिनमें बुन्देलखण्डी संस्कृति के अनेकों नमूने बिखरे पडे हैं पर या तो इस प्रकार के स्थानों की सुरक्षा की व्यवस्था नहीं है और या वहां पर कोई कार्यालय या विद्यालय आदि खोलदिये गये हैं , जिन्होंने चित्रकला की विशेषताओं को न समझते हुयेउन्हें किसी न किसी प्रकार से नष्ट कर दिया । ओरछा के जहांगीर महल में , टीकमगढ के भगवन्तकलव में , दतिया के डिग्रीकालेज भवन में , अमरा गढ के मंदिर में विद्यालय या कार्यालय खुल जाने से वहां के बहुत से चित्र नष्ट हो गये हैं ।

इसीप्रकार टहरौली ,गुरसराय,टोडीफतेहपुर,अमरागढ,समथर,मदनपुर बानपुर आदि स्थानों पर स्थित किले एवं मंदिरों के चित्र किसी भी प्रकार की सुरक्षा न होने से नष्ट होते जा रहे हैं तथा उनमें गन्दगी का साम्राज्य विस्तारित होता जा रहा है । हम सब का यह पुनीत कर्तव्य है कि इस प्रकार के प्रतिष्ठानों की सुरक्षा कर अपनी भारतीय संस्कृति को भविष्य के लिये पूर्ण सुरक्षित रखें । तथा इसी प्रकार क्रय एवं विक्रय की प्रवृत्ति पर रोक लगाकर लघुचित्रों ,चित्रित ग्रन्थों को मौलिक रूप से संग्रहीतकर अपनी बुन्देली संस्कृति की रक्षा करें ।

युग परिवर्तनशील है जिसका प्रभाव कला पर भी पडता है । मानव समय ,गति एवं स्थान पर अपना अधिकारिक प्रभुत्व तो स्थापित कर लेता है और आवश्यकता नुसार अनन्य बहुमूल्य वस्तुयें आसानी से उपलब्ध कर लेता है पर कला का प्रभाव मानव के समस्त विकास पर पडता है वह भले ही किसी देश या स्थान की कला क्यों न हो । मानव की गतिविधियों एवं प्रवृत्तियों के आधार पर उसकी संस्कृति की अनुभूति की जा सकती है । धीरे-धीरे विश्ववन्धुत्व की भावनायें लोगों में बढने से किसी क्षेत्र की कला को कोई क्षेत्रीय स्वरुप प्रदान नहीं किया जा सकता है साथ ही इसका दूसरा प्रभाव यह पड रहा है कि अब व्यक्ति विशेष का महत्व दिन - प्रतिदिन बढता जा रहा है तथा नये-नये प्रयोग दिन - प्रतिदिन सामने आने से कला की आधुनिक रूप-रेखा में बडा अन्तर आ गया है । यही कारण है कि वर्तमानकालीन समस्त भारतीय चित्रकला पर यूरोपीय प्रभाव पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित सा दिखाई दे रहा है इसी लिये नई - नई शैलियों के प्रादुर्भाव से भारतीय चित्रकला की प्राचीन परम्परागत शैलियां विक्षिप्त सी प्रतीत होती हैं ।

बुन्देलखण्ड की चित्रकला के प्रमुख प्रतिष्ठानों के सर्वेक्षण एवं उनमें प्राप्त चित्रशैलियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र की चित्रकला का भविष्य उतना ही उज्ज्वल है जितना कि किसी अन्य विकसित भारतीय चित्र शैली का । इसमें कोई सन्देह नहीं कि बुन्देलखण्ड में किसी कला विद्यालय या कला संस्थान के अभाव में यहां की कला के प्रति अगाढ प्रेम जन मानस के मध्य स्थापित नहीं हो पा रहा है और इससे इस क्षेत्र की संस्कृति को एक ठेस पहुची है इसी लिये इस क्षेत्र की प्रतिभा का प्रदर्शन न होने से यहां की चित्रकला का योगदान अन्य स्थानों की चित्रकला के इतिहास में अंकित किया गया है । उनके अध्ययन से यहां की चित्रशैली का महत्व भी उभड कर सामने आ रहा है । यह एक ऐसी प्रमुख शैली है जिसने प्रेरणा का मार्ग प्रशस्त कर चारो दिशाओं की प्रमुख शैलियों का प्रभाव अपनेमें समाहित कर लिया है । यहां के विभिन्न क्षेत्रों एवं कला अवशेषोंको देखकर ही यहां के अतीत के गौरवमयी इतिहास एवं संस्कृति का मूल्यांकन करना होगा । चित्रकारों के प्रेरणास्वरूप चित्रित प्रमुख प्रतिष्ठान एवं क्षेत्र अब निस्प्राण से हो रहे हैं । परन्तु कला का स्वरूप कल क्या हो गा उसका आंकलन समस्त भारतीय चित्रकला के सन्दर्भ के साथ ही किया जा सकेगा और तभी यहां की कला का भविष्य निश्चित किया जा सकेगा ।

किसी भी देश की कला शैलियों पर वहां की सामाजिक एवं धार्मिक स्थितियों के साथ-साथ तत्कालीन राजनीतिक प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है और यही कारण है कि उन्नीसवीं सताब्दी में ब्रिटिश साम्र ाज्य की स्थापना के बाद भारत के विभिन्न अंचलों में इस विदेशी शासन के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन होना प्रारम्भ हो गये थे जिनका प्रभाव चित्रकला पर भी पडा और कलाकार ने प्राचीन परम्परागत विषयों को छोडकर दुख,उत्पीडन,घृणा,निराशा और अपमान की भावनाओं पर आधिरित विषयों पर चित्रण प्रारम्भ कर दिया ,इससे कलाकार को ए एक नई दिशा एवं प्रेरणा मिली ।

उस समय की राष्ट्रीय जागृति की भावनाओं कासही अंकन चित्रकला के माध्यम से ही किया गया । आज भी यहां की कला में देश के चारों-ओर के जनजीवन की वास्तविक समस्योओं का चित्रण दिखाई दे रहा है । समाज की आर्थिक विषमताओं के कारण जो एक महान द्वेशभाव सा आ गया तथा इस प्रकार की स्थितियों से उत्पन्न परिस्थितियों का चित्रण आधुनिक चित्रकारों की चित्रकला का प्रमुख विषय बन बैठा । कलाकारों ने ग्राम्य जीवन के पहलियों का चित्रणे कर आधुनिक कला की विषयवस्तुओं कोबढाया है तथा अपनी सजगता के मार्मिक चित्रण कर भारतीय ग्राम्य संस्कृति के प्रति अपना स्नेह प्रदर्शित कियाहै वर्तमान कलाकारों के प्रभावों का अवलोकन करने पर उनकी शैलियों में अन्तर प्रतीत होता है तथा उनके क्षेत्रों का वर्गीकरण आसानी से किया जासकिता है कि यह चित्रशैली या चित्रकार किस स्थान का है । बम्बई , कलकत्ता, बडौदा एवं देहली आदि के चित्रण शैली में काफी अन्तर मिलता है जब कि सभी भारत के अंग हैं । कुछ आधुनिक कलाकार या तो प्रयोगवाद में फसे हैं या कुछ परम्पराओं की पुष्टि करते हुये पाश्चात्य कला केन्द्रों की उपलब्धियों से लाभ उठा रहे हैं । कही लोक कला की नीव पर नये निर्माण दिखाई पडते हैं तो कही आधुनिक कलाकार शैली और तकनीकि की विभिन्न विशेषताओं को जिस प्रकार प्रस्तुत कर रहे हैं उससे भविष्य की रूप-रेखा का संकेत असम्भव व दुरुह हो गया है लेकिन कलाकारों ने जीवन के चित्रणका उत्साह और नये प्रयोगों के लिये साहस है जिससे अच्छी सम्भावनायें तथा आशायें हैं तथा उनसे बुन्देलखण्ड चित्र शैली का भविष्य निश्चितकिया जा सकेगा । वे निसंदेह भारतीय चित्रकारों के साथ हैं पर जैसे ही इनको भविष्य में अवसर मिलेगा वह अतीत की प्रक्रिया की भांति फिर से शायद सामने आ जायें जिसप्रकार इनकी प्राचीन परम्परागत चित्रकला आज बुन्देलखण्ड के गौरवस्वरूप यत्र-तत्र अवलोकित है ।

आज भी यहाँ के कला प्रतिष्ठान कलामर्मज्ञों एवं कला प्रेमियों को प्रभावित करते हैं उनका अवलोकन कर दर्शकगण अतीत के गौरव को अपने हृदय में समाहितकर नवीन प्रेरणा प्राप्त करता है यह सभी राजस्थानी, पहाडीशैलियों के प्रति भी चरितार्थ होता है। जो कला की सच्ची आत्मा की खोज में लगे हैं वह तो यहाँ की उन्नति के लिये बडी ही मौलिक सुझाओं की रुप-रेखा प्रस्तुत कर अपना उत्साह व प्रेम दर्शा रहे हैं और जब भी उनके परिणाम हम सभी के सामने शीघ्र आयेंगे तो यह हम सभी केलिये सौभाग्य का विषय होगा। इसका भविष्य बहुत आशावान है जिससे इसका महत्व दिन-प्रतिदिन सामने आता जा रहा है और इसकी उपादेयता भी जीवन में उत्तरोत्तर बढती जा रही है।

इस क्षेत्र के कला पक्षों को ढूढ निकालने में जो पक्ष सामने आये उनके द्वारा यहाँ की चित्रशैली तथा उनकी विवेचना से इस क्षेत्र की कीर्ति में उन्नति होगी तथा जिस कला पक्ष से जन मानस अछूता रह गया था उस ० चित्र शैली को चित्रकला के इतिहास में यथोचित स्थान मिलेगा।

---: सन्दर्भ ग्रन्थ तालिका :---

1- राधाकमल मुकर्जी - भारतीय कला का विकास

2- डा० वासुदेवशरण अग्रवाल- भारतीय चित्रकला

3- हजारप्रसादद्विवेदी - प्राचीन भारत के कला विनोद

4- रायकृष्णदास - अजन्ता के चित्रकूद

5- रायकृष्णदास - भारतीय चित्रकला

6- डा०जगदीश गुप्त - प्रागैतिहासिक चित्रकला

7- डा०जगदीश गुप्त - भारतीय कला केपदचिन्ह

8- डा०राधाकमल मुकर्जी - हिन्दू सभ्यता

9- डा०कुमार विमल - कला का विवेचन

10- सतीशचन्द्र काला - भारतीय चित्रकला

11- डा०गोपीनाथ शर्मा - राजस्थान का इतिहास

12- डा०जगदीश गहलौत - ऐतिहासिक निधि पत्रक

13- रामगोपाल विजयवर्गीय - राजस्थानी चित्रकला

14- डा०गौरीशंकरहीराचन्द्र ओझा - मेवाड का इतिहास

15- मनोहर लाल - कला एक अध्ययन

16- डा०जिलेन्द्रनाथ - भारतीय वास्तुकला

17- मालवीय बद्रीनाथ - विष्णु धर्मोत्तर पुराण में चित्रकला

18- सिह एवं यादव - प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति

19- वाचस्पति गैरोला - भारतीय चित्रकला

20- डा०भगवतीशरणउपाध्याय- भारतीय चित्रकला की कहानी

21- असीतकुमार हलधर - ललितकला की धारायें

22- लालाजी एवं गोपाल - भारतीय संस्कृति

23- एच०डी०के० - भारतीय कला का सिंहावलोकन

24- डा०गयाचरन त्रिपाठी - प्राचीन भारत की कला

25- शैलेन्द्र डे - भारतीय चित्रकला पद्धति

26- सचीरानी गुर्टू - कलादर्शन

27- सचीरानी गुर्टू - कला के प्रणेता
28- वैद्यनाथ एवं हांडा - पहाडी चित्रकला
29- रामचन्द्रशुक्ल - चित्रकला का रसास्वादन
30- रामचन्द्र शुक्ल - कला का दर्शन
31- रामचन्द्र शुक्ल - शिल्प लोक
32- डा0शिवकुमारवर्मा एवं डा0रामअौतार अग्रवाल - रूप प्रद कला के मूलाधार
33- एम0के0 वर्मा - कला की ओर
34- श्यामप्रकाश - भारतीय कला एवं संस्कृति
35- रायकृष्णदास - मध्यकालीन चित्रकला शैलियां
36- असितकुमार हलधर - भारतीय चित्रकला
37- आर0एन0 टण्डन - भारतीय चित्रकला की रूपरेखा
38- डा0 हरद्वारीलाल शर्मा - साहित्य और कला
39- डा0 रमेशचन्द्र मजूमदार - साहित्य और कला
40- मोहललाल मेहता - कला विवेचन
41- श्रीमुनिकान्त सागर - खण्डहरों का वैभव
42- डा0 लक्ष्मीनारायण - कला में अभिव्यंजनवाद
43- नन्दलाल वसु - शिल्पकला
44- डा0 चिरंजीलाल झा - भारतीय चित्रकला का इतिहास
45- डा0 चिरंजीलाल झा - कला के दार्शनिक तत्व
46- डा0 रामचन्द्र शुक्ल - कला के दर्शन
47- असित कुमार हलधर - रुपदर्शिका
48- रामचरणहयारण मित्र - बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य
49- रामचरणहयारण मित्र - ओरछा दर्शन
50- रामचरणहयारण मित्र - उदय और विकास
51- अम्बिकाप्रसाद दिव्य - बुन्देली चित्रकला (अप्रकाशित)
52- डा0गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
53- डा0आर0ए0 अग्रवाल - मारवाड म्यूरल्स
54- डा0आर0ए0 अग्रवाल - कला विलास

55- डा0विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - केशव ग्रन्थावली
56- वी0एस0 अग्रवाल - दतिया की यात्रा
57- एच0 सी0 राय चौधरी - पोलिटिकल स्ट्री ऑफ एन्सिएट ऐशिया
58- वी0 डी0 गुप्ता - महाराजा छत्रसाल बुंन्देला
59- लक्ष्मण सिंह गौर - ओरछाका इतिहास
60- राममित्र चतुर्वेदी - ओरछा का अतीत
61- मायारानी शील - यशस्वी ओरछा
62- तिवारी आर0 पी0 - भारतीय चित्रकला और उसके मूलतत्व
63- चमनलाल मोहता - भरत की चित्रकला
64- बीच - ललितकला
65- डा0 बच्चनसिंह - रीतिकालीन कवियों की प्रेमअभिव्यंजन
66- राधाकमल मुकर्जी - भारत की संस्कृति और कला
67- वासुदेव शर्मा - कला एवं संस्कृति
68- कृष्णानन्द गुप्त - ईसुंरी के फाग
69- डा0 दशरथ शर्मा - राजस्थान थ्रू द ऐजिज
70- मरु भारती - रिसर्च जनरल
71- रामचरण शर्मा - राजस्थान की लघुचित्र शैलियां
72- भगवतीशरण सिंह - उत्तर प्रदेश के लोकगीत
73- डा0श्रीमतीविनोद तिवारी - बुन्देलखण्डी एवं बघेलखण्डी लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन
74- मुल्कराज आनन्द - एलबम ऑफ इण्डियन पेन्टिग
75- डा0 आनन्द कृष्ण - सर्वे ओफ राजस्थानी पेन्टिग (अप्रकाशित)
76- डा0 गिरिराजकिशोरअग्रवाल - कला और कलम
77- डा0 एस0पी0 ग्रोवर - अवध की लोक चित्रकला (अप्रकाशित)
78- श्रीमती कुसुम - मालवा की लोक चित्रकला
79- डा0 श्यामाचरण दुबे - लोकगीतों के मान्य तत्व
80- डा0 जयसिंह नीरज - राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य

81- डा० बी०एल० कपूर - हिमांचल इतिहास और परम्परा
82- शान्तीस्वरूप - आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान
83- डा० रामनाथ - मध्यकालीन भारतीय कलायें एवं उनका विकास
84- प्रेमचन्द्र गोस्वामी - कला सन्दर्भ और प्रकृति
85- मोतीचन्द्र खजांची - कैटलाग ललितकला एकादमी 1960
86- विन्सैटस्मिथ - हिस्ट्री ओफ फाइन आर्ट्स इन इण्डिया एण्ड सीलोन
87- जी० याजदानी - अजन्ता
88- ए०के० हलधर - आर्ट एण्ड ट्रेडीसन्स
89- नन्दलाल बोस - आन आर्ट
90- ई० वी० हैविल - दी आर्ट हैरिटेज ओफ इंडिया
91- फिलिप एस० रोशन - इण्डियन पेन्टिग
92- अजीत मुकर्जी - दी आर्ट ओफ इण्डिया
93- गांगोलीएण्ड गोस्वामी - इण्डियन आर्ट एण्ड हैरिटेज
94- लेडी हेरिंगम - अजन्ता फ्रेस्कोज
95- ऐ० के०कुमार स्वामी - इण्डियन ड्राइंग
96- दास गुप्ता - फण्डामेन्टल्स ओफ इण्डियन आर्ट
97- भट्टाचार्या - दी स्टोरी ओफ आर्ट
98- वैन्जामिन रोफोर्ड - दी वाल पेन्टिग ओफ इण्डिया, सेन्ट्रल ऐसिया एण्ड सीलोन
99- विलिंकसनजे०वी०एस० - मुगल पेन्टिग्स
100-पर्सी ब्राउन - इण्डियन पेन्टिग्स अण्डर दी मुगल्स
101- बैसिलग्रे - राजपूत पेन्टिग्स
102- आर्चर डब्लू०जी० - इण्डियन पेन्टिग्स
103- आर०सी० मजूमदार - दी क्लैसिक एज
104- ए० कुमार स्वामी - इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट

105- एन0 सी0 मेहता - स्टडीज इन इण्डियन पेन्टिग्स
106- हर्बर्ट रीड - दी मीनिग ओफ आर्ट
107- आर0के0 मुकर्जी - दी शोसल फंक्शन ओफ आर्ट्स
108- एम0एस0 रन्धावा - राजस्थानी पेन्टिग्स
109- बुसागलीएण्ड शिवमूर्ति-5000 इयर्स ओफ (आर्ट) इण्डिया
110- एम0एस0 रन्धावा - कांगडा पेन्टिग्स आॅन लव
111- के0 जे0 खण्डेलवाला - दी डेवलवमेन्ट ओफ स्टाइल इन इण्डियन पेन्टिग
112- आनन्द कृष्ण - छवि
113- ओयले चार्ल्स डी - कॉस्ट्यूम्स ओफ इण्डिया
114- कुन्हैल ई - इण्डियन मिनियेचर्स
115- ए0 कुमार स्वामी - कैटलॉग ओफ दी इण्डियन कलैक्शन इन दी म्यूजियम ओफ फाइन आर्ट्स
116- मोतीचन्द्र - स्टडीज ओफ अर्ली इण्डियन पेन्टिग्स
117- हरमन गोयेज - इण्डियन आर्ट
118- हरमन गोयेज - जनरल ओफ दी इण्डियन सोसाइटी एण्ड ओरियेन्टल आर्ट वाल्यूम 6,1938 (बुन्देला आर्ट)
119- आनन्द मुल्कराज - दी हिन्दू व्यू ओफ आर्ट
120- आर्चर डब्लू0जी0 - इण्डियन पेन्ट्रग लन्दन 1955
121- आर्चर डब्लू0 जी0 - इण्डियन मिनियेचर्स पना0-वाई0 1961
राजस्थानी पेन्टिग्स फ्रामश्री जी0के0कनौडिया कलैक्शन कैलकटा 1962
122- वनर्जी ए0 सी0 - राजपूत स्टैट्स एण्ड द इण्डिया कम्पनी कैलकटा 1951
123- वैरट डी0,एण्ड ग्रे0बी0-पेन्टिग ओफ इण्डिया जेनेवा 1963
124- भट्टाचार्या एस0के0 - दी स्टोरी ओफ इण्डियन आर्टदेहली 1966
125- चन्द्रा सतीश - पार्टीज एण्ड पोलिसीज ओफ मुगल कोर्ट (1707-1740) 1959

126- अग्रवाल वी० एस० - कला और संस्कृति अलाहाबाद 1958
127- अग्रवाल वी० एस० - इण्डियन आर्ट वारानसी 1966
128- कुमार स्वामी ए०के० - इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट
129- कुमार स्वामी ए०के० - राजपूत पेन्टिग्स
130- दास गुप्ता एस०एन० - फण्डामेन्टल्स ओफ इण्डियन आर्ट
131- दत्ता बी०एन० - इण्डियन आर्ट इन रिलेशन टू कल्चर कैलकटा 1956
132- हैविल ई०वी० - दी आइडिल्स ओफ इण्डियन आर्ट
133- हैविल ई०वी० - ए हैण्ड बुक ओफ इण्डियन आर्ट
134- हैविल ई० वी० - दी आर्ट हैरिटेज ओफ इण्डिया
135- मेहता एन० सी० - स्टडीज इन इण्डियन पेन्टिग्स 1962
136- एम०एल० गुप्ता - फ्रैस्कोज एण्ड वॉल पेन्टिग्स ओफ राजस्थान
137- एडविन टी०एटकिशन - 'बुन्देलखण्ड' डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टोरिकल एकाउन्ट ओफ दी नॉर्थ वैस्टर्न प्राविन्सज
138- के०एम० पनीकर - दी फाउण्डेशन ओफ न्यू इण्डिया

--: पत्र व पत्रिकायें :--

1- नागरी प्रचारणी पत्रिका नवीन संस्करण भाग - 1 अंक 3
2- नागरी प्रचारणी पत्रिका त्रैमासिक वर्ग अंक 2
3- कलानिधि
4- साहित्य सन्देश
5- कला अनुसन्धान पत्रिका
6- पिटर्सन संस्कृत पुस्तक की रिपोर्ट
7- आकृति
8- साप्ताहिक हिन्दुस्तान
9- धर्मयुग

10- मार्ग

11- विश्वभारती पत्रिका

12- रुपम

13- रुपलेखा

14- मधुकर

15- शोध पत्रिका गवर्नमेण्ट ओफ राजस्थान जयपुर

16- मामुलिया त्रैमासिक अंक (बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर)

17- दतिया , ओरछा , झांसी , महोवा , ग्वालियर , गजेटियर

18- दी टाइम्स ओफ इण्डिया

19- स्पॉन

20- इम्पीरियल गजेटियर ओफ इण्डिया , राजस्थान

21- बुलेटिन ओफ प्रिन्स ओफ वेल्स म्यूजियम

22- विश्व भारती पत्रिका

23- लिंक

24- इम्पीरियल लिटरेचर ओफ इण्डिया

25- इण्डियन कल्चर कैलकटा

26- कादम्बनी

--: रुपरेखा :--

अध्याय - प्रथम ---

बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्टभूमि

बुन्देलखण्ड की एतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियां व उनके सांस्कृतिक विकासक्रम के साथ चित्र कला के विकास में योगदान ।

अध्याय - द्वितीय ---

बुन्देलखण्ड की चित्रकला

सांस्कृतिक विकासक्रम के साथ चित्रकला का स्वरुप (उद्भव, विकास व संरक्षक) व प्रमुख प्रतिष्ठान, सर्वेक्षण , विशेषतायें व महत्व ।

अध्याय - तृतीय ---

बुन्देलखण्ड चित्रशैली के भित्ति चित्र

भित्ति चित्रों के प्रमुख प्रतिष्ठान, प्रतिपाद विषय, प्रमुख कलाकार, सर्वेक्षण, शैलीगत विशेषतायें व महत्व ।

अध्याय - चतुर्थ ---

बुन्देलखण्ड के लघुचित्र एवं चित्रित ग्रन्थ

लघुचित्र , प्राप्य स्थान, सर्वेक्षण , प्रतिपाद विषय , प्रमुख कलाकार , चित्रशैली व सामग्री , विशेषतायें , महत्व व अन्य पडोसी तत्कालीन शैलियों से भिन्नता ।

अध्याय - पंचम ---

बुन्देलखण्ड की कला के लोक कला पक्ष व अन्य चित्रित सामग्री

लोक कला पक्ष , कला सामग्री व अन्य शिल्प प्रतिपाद , प्रमुख शैली में योगदान , महत्व , विशेषतायें व अन्य कलात्मक सामग्री ।

अध्याय - षष्ठम ---

बुन्देलखण्ड चित्रशैली का तुलनात्मक स्वरूप

बुन्देलखण्ड कलम का अन्य कला शैलियों के परिपेक्ष्य में तुलनात्मक महत्व व योगदान ।

अध्याय - सप्तम ---

उपसंहार

बुन्देलखण्ड चित्रशैली की मान्यता , भारतीय इतिहास को देन और महत्व ।

5

6

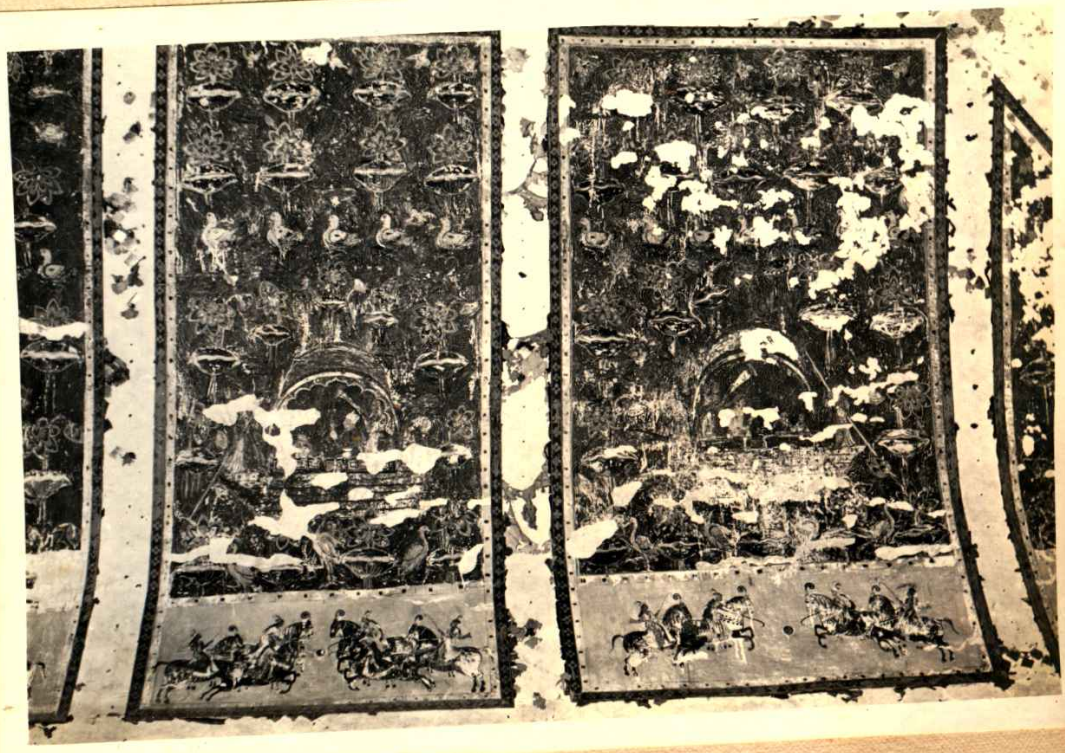

7

8

9

10

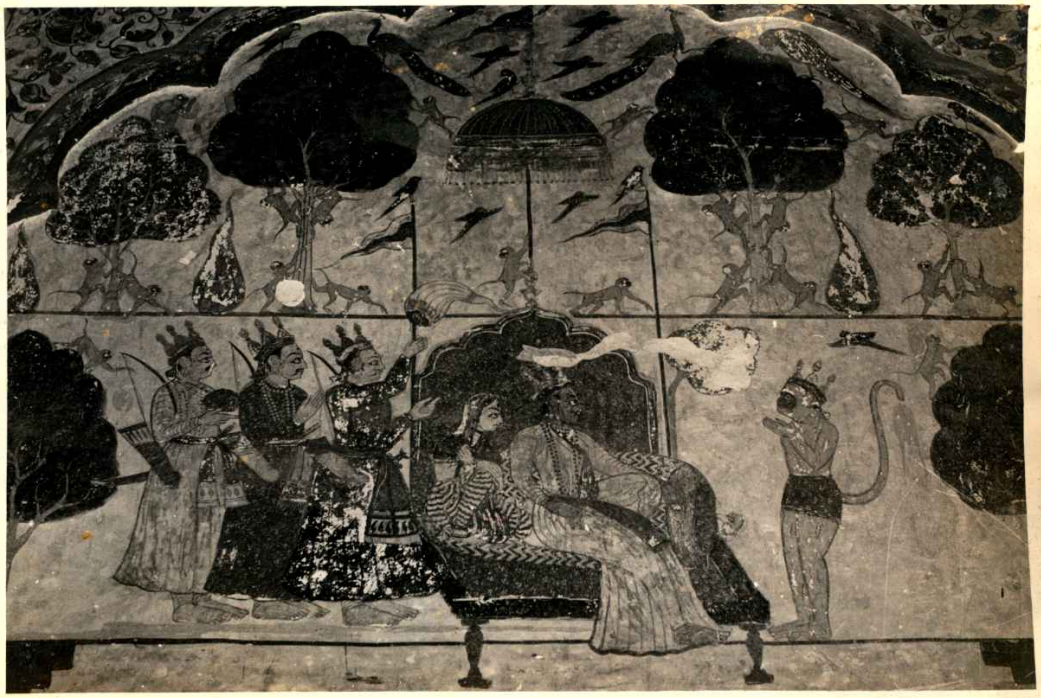

13

14

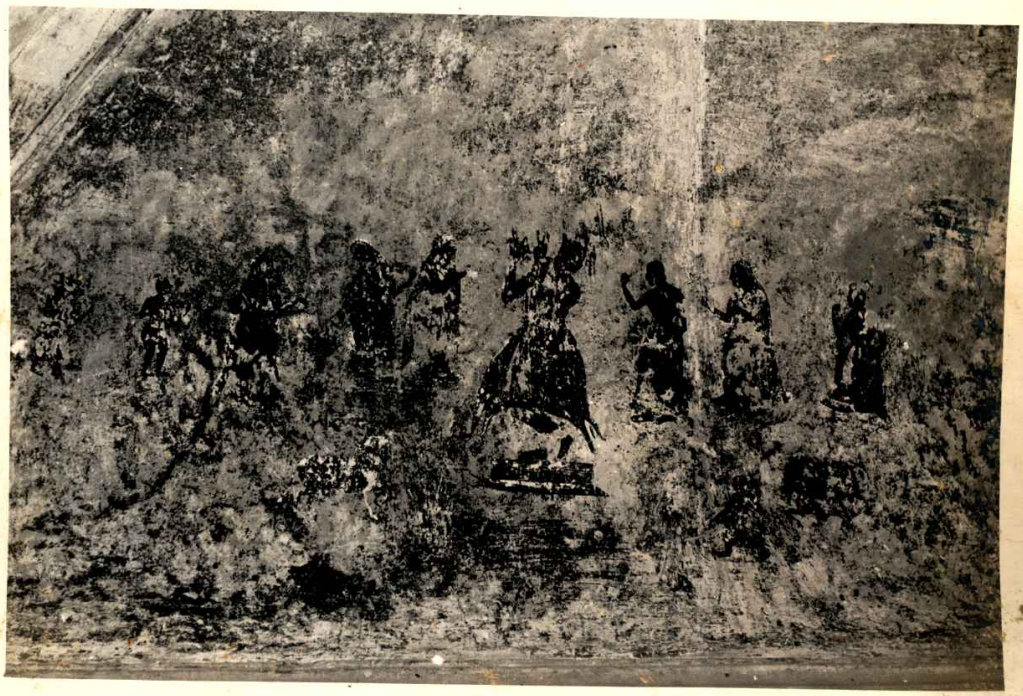

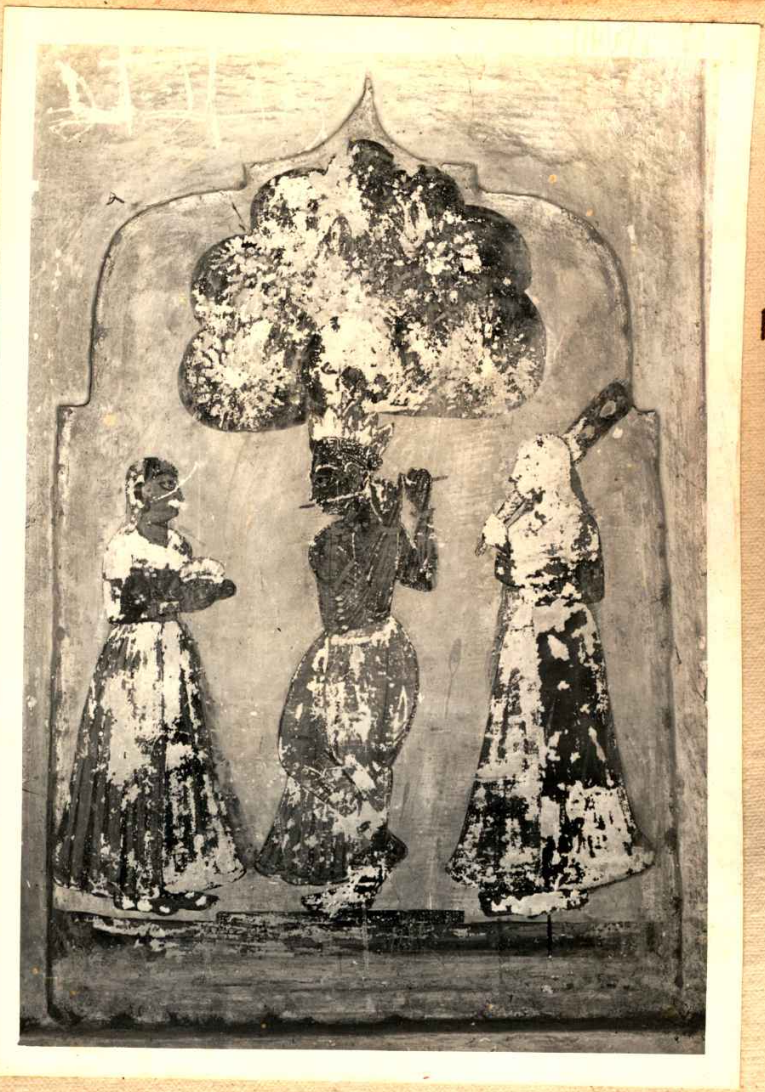

15

16

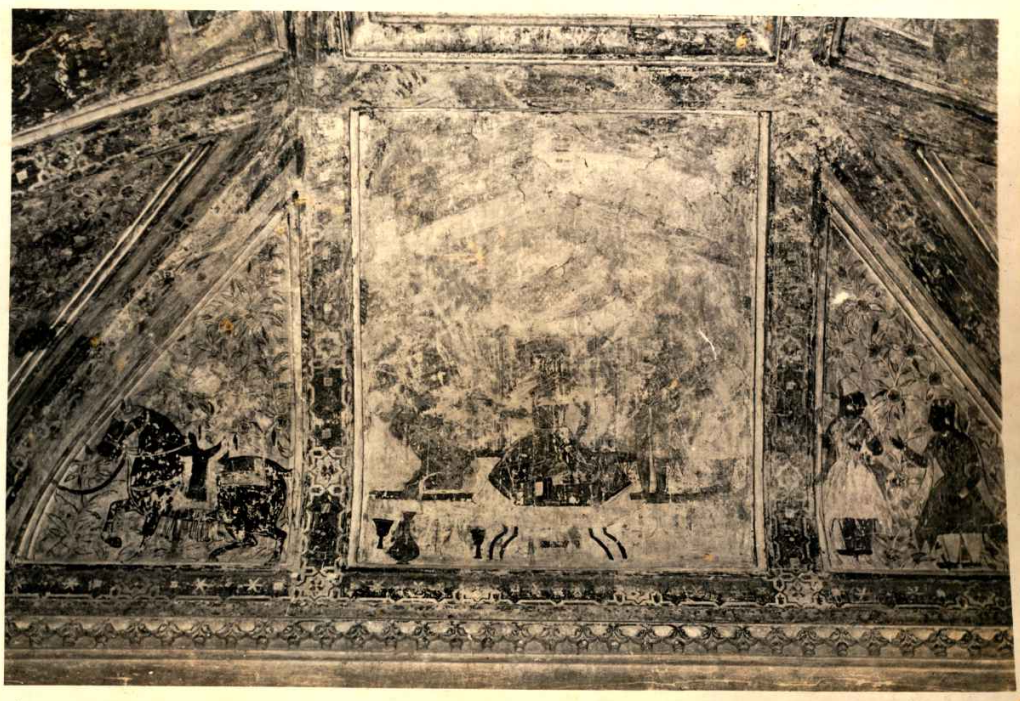

17

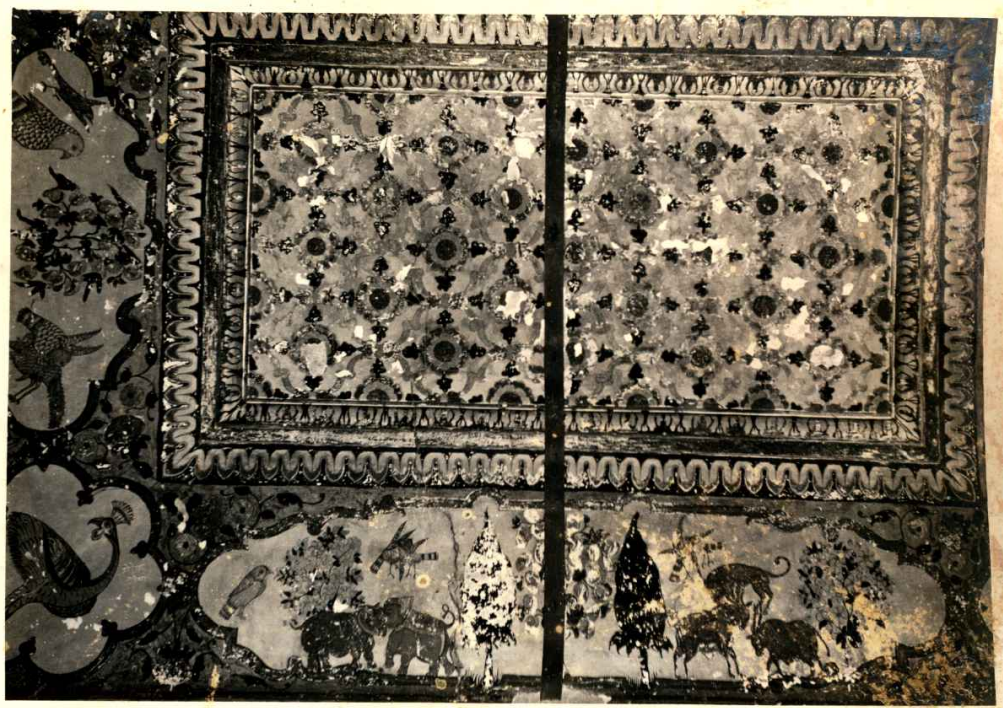

18

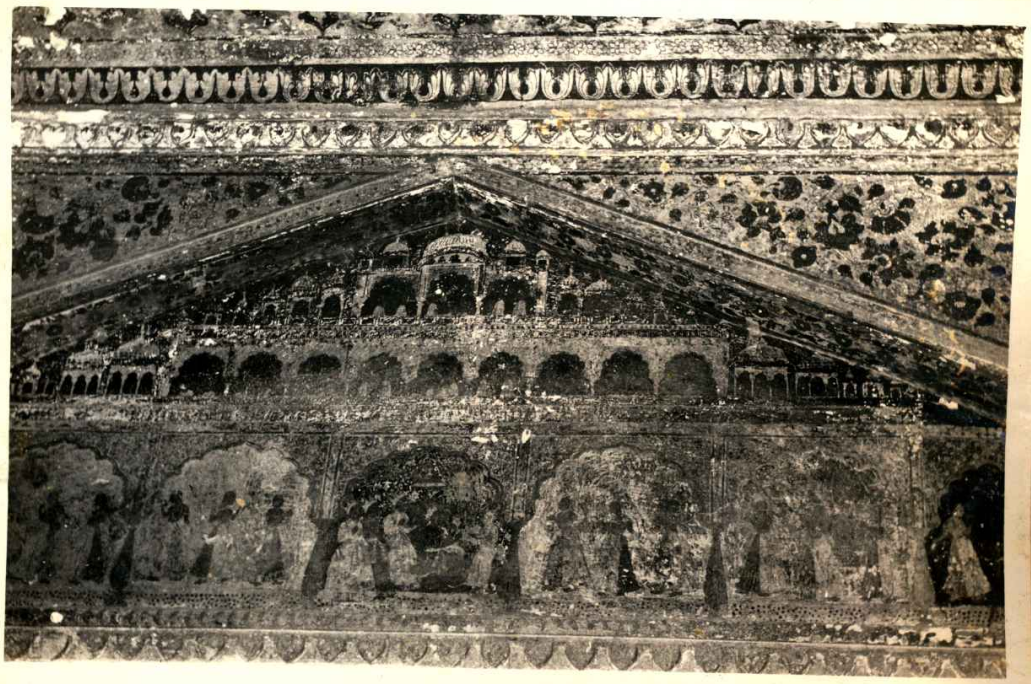

19

20

21

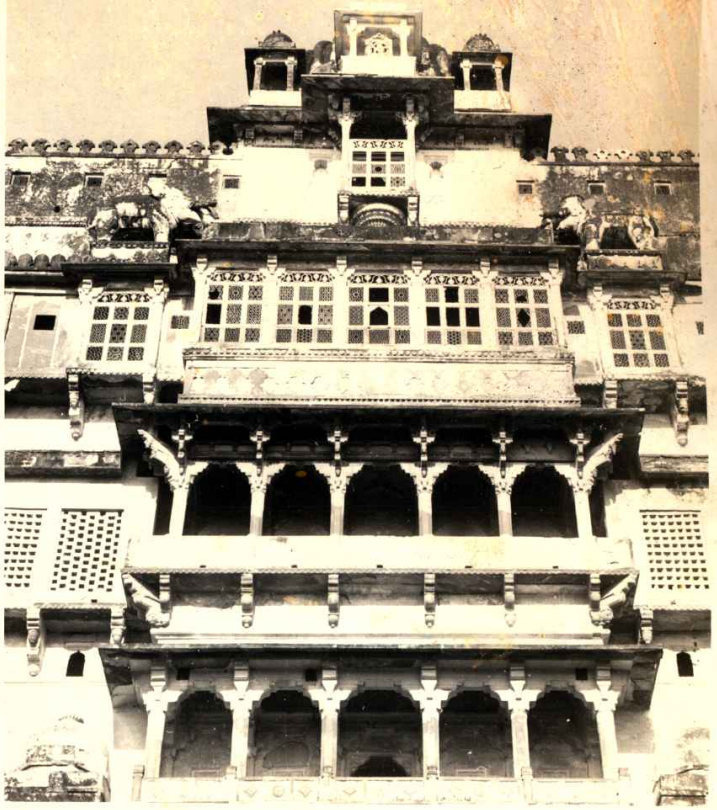

24

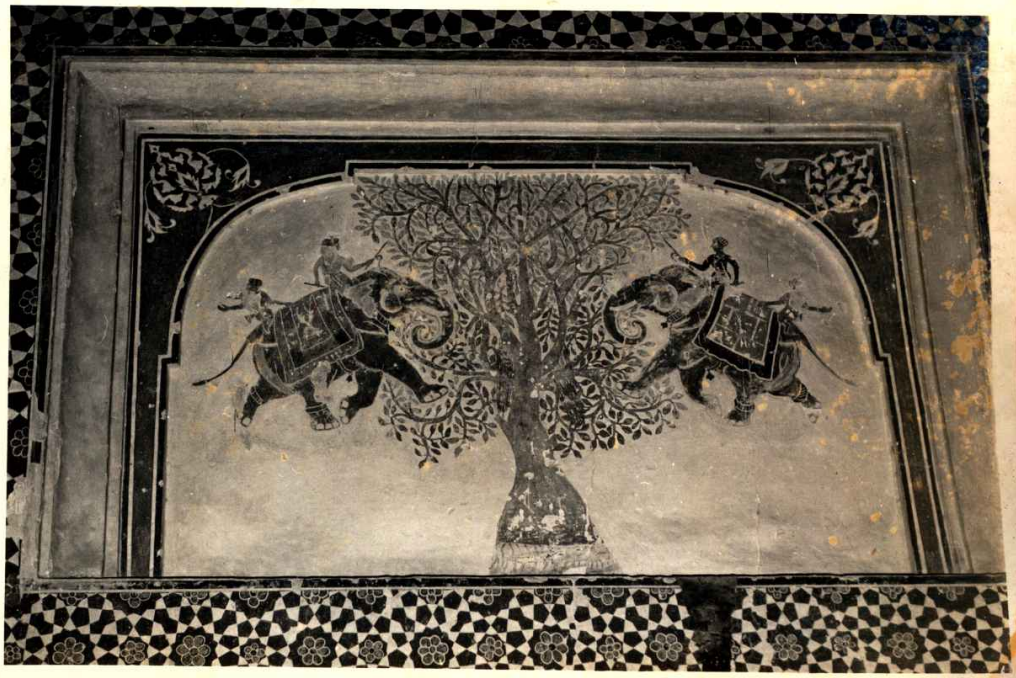

23

24

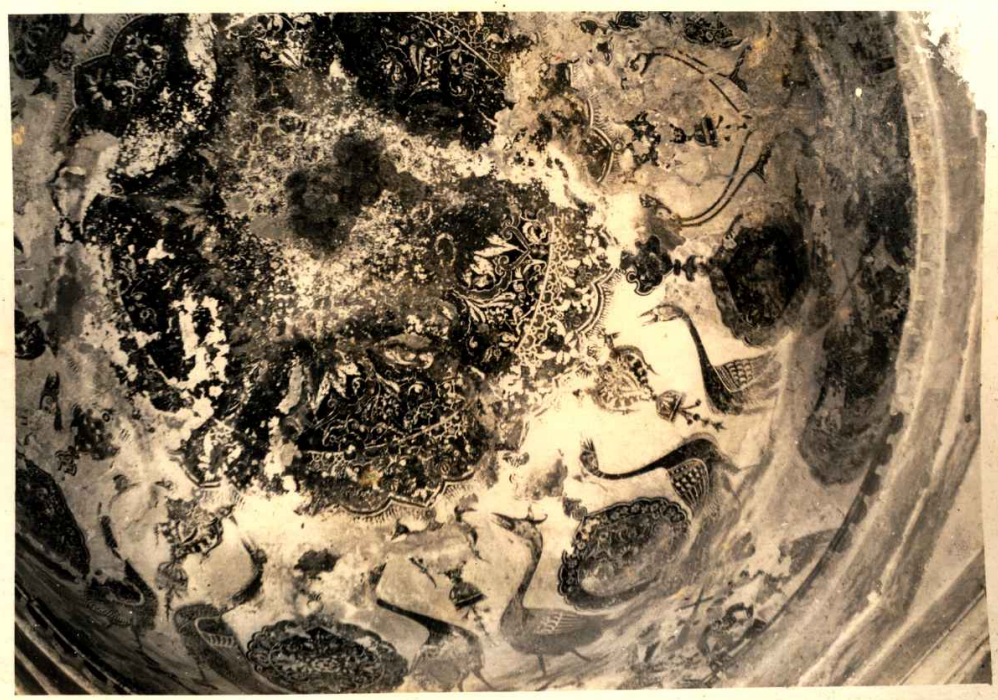

25

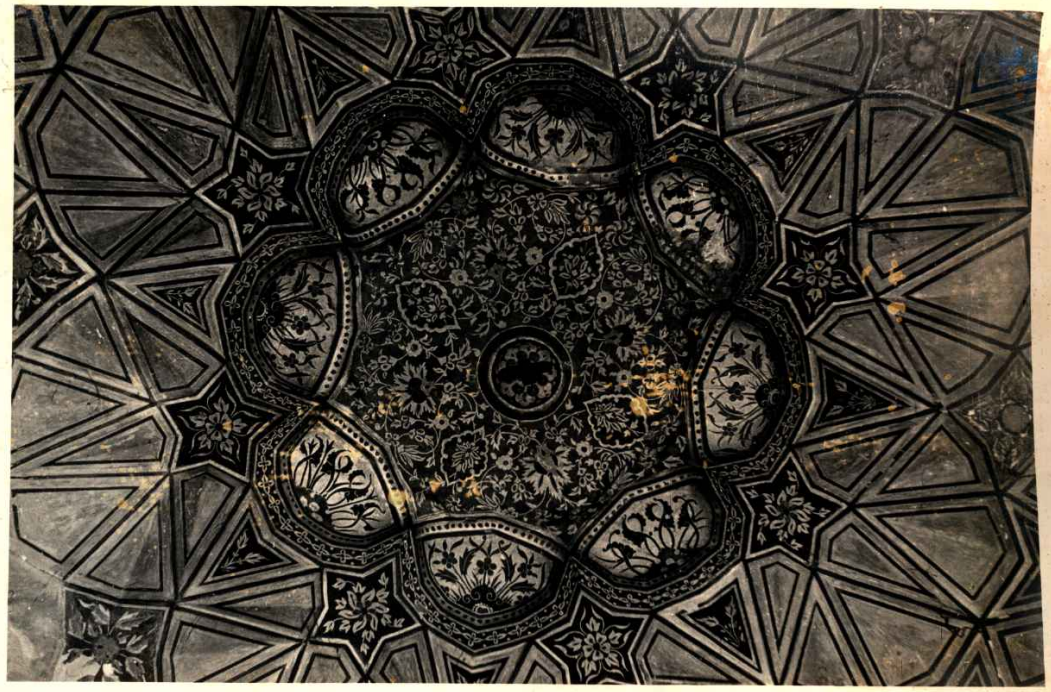

26

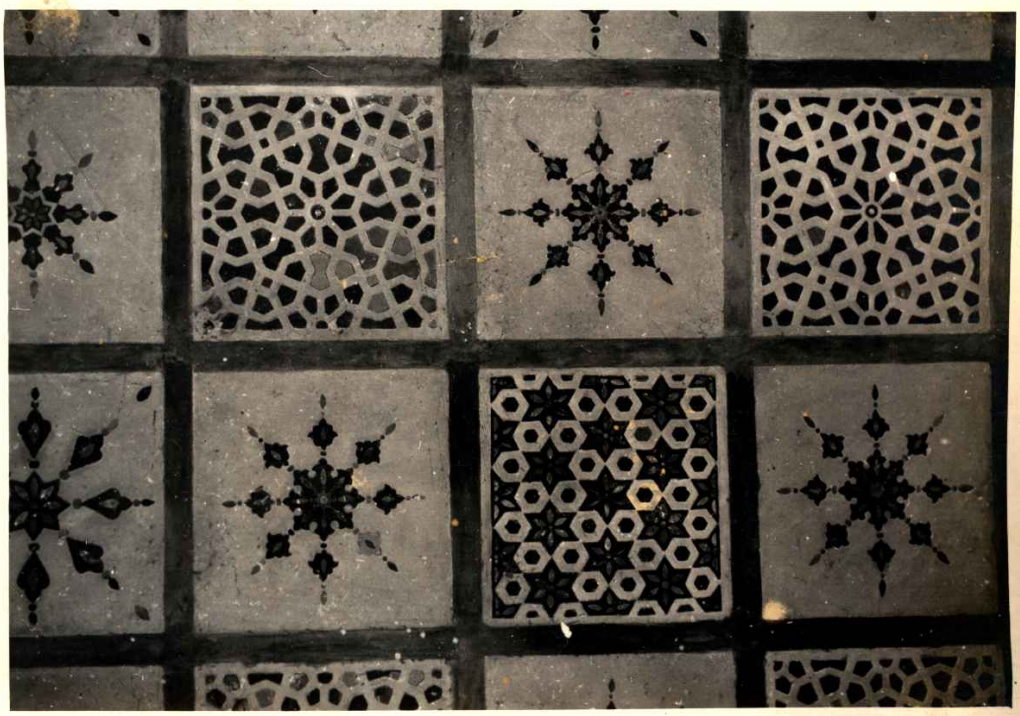

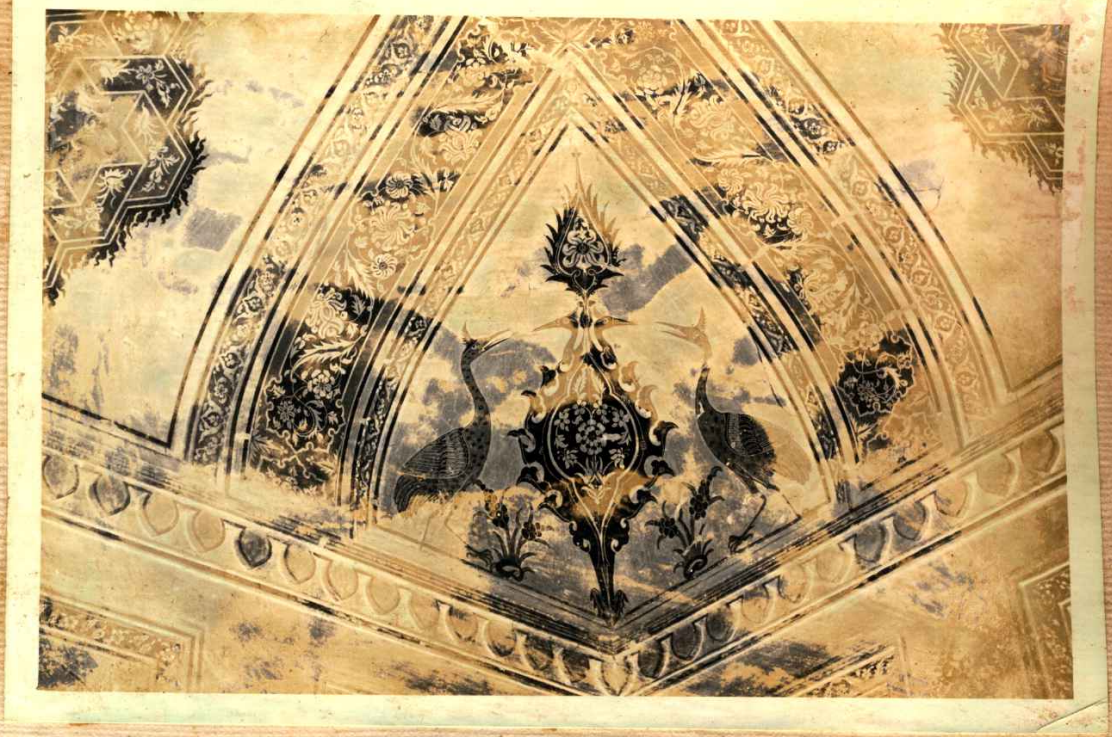

28

29

30

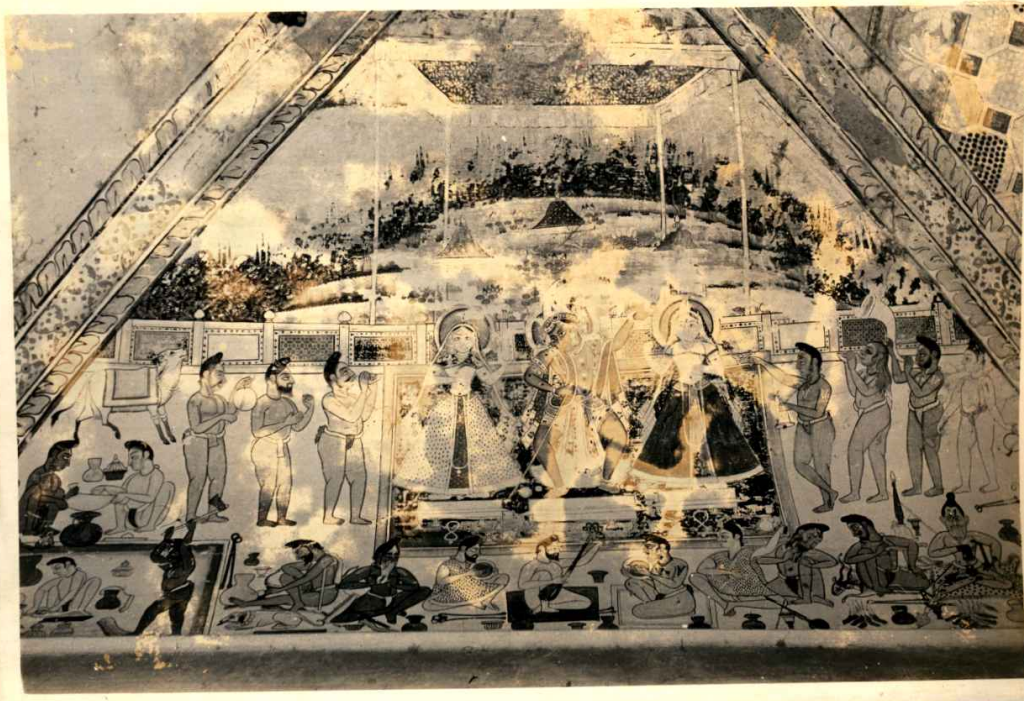

33

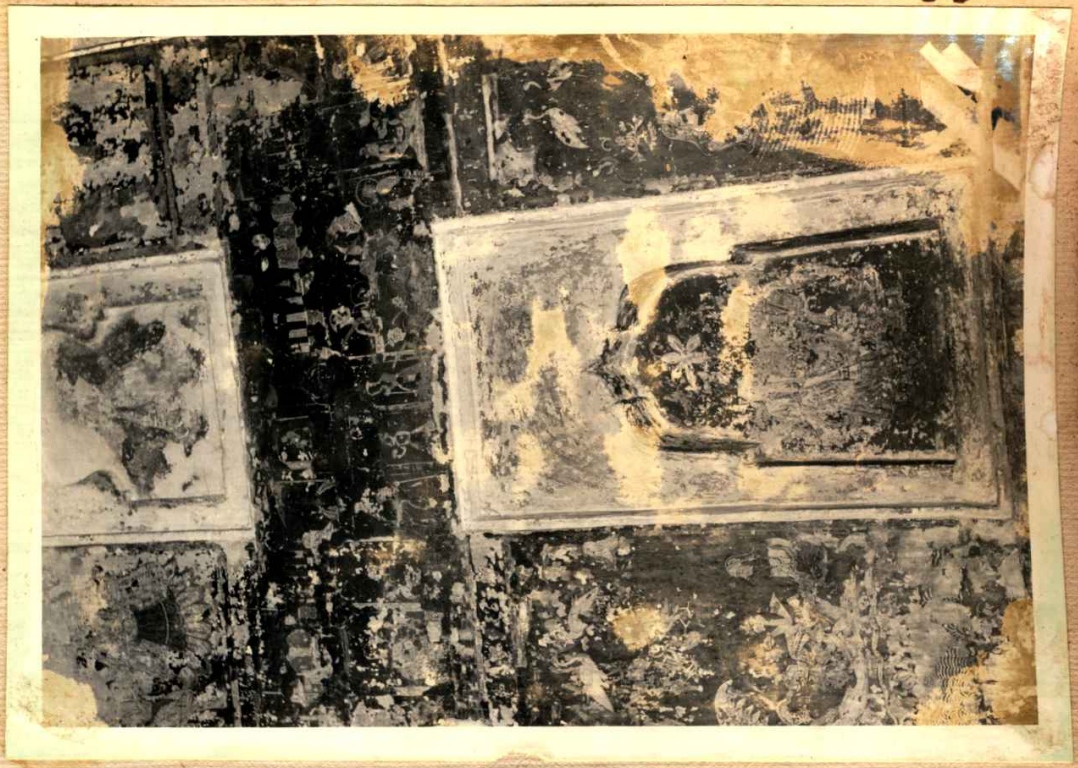

34

35

36

37

38

39

40

41

42

43

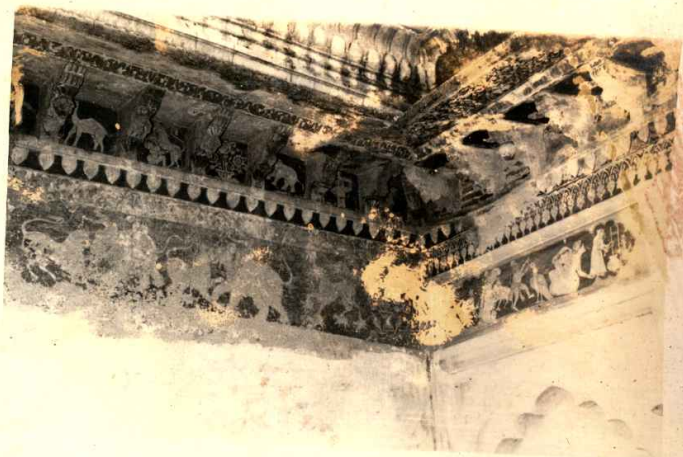

44

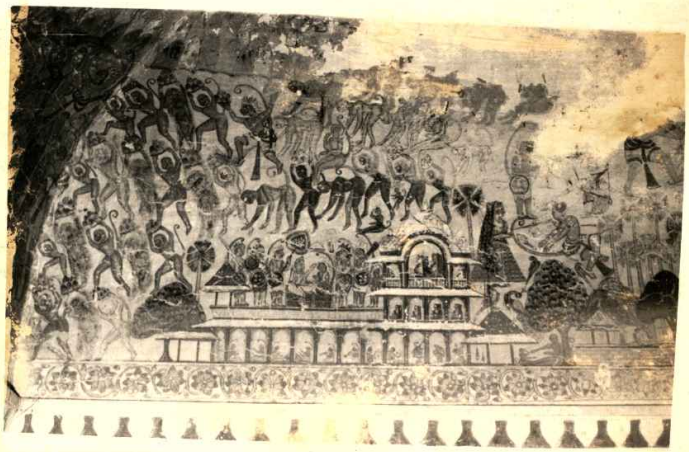

45

46

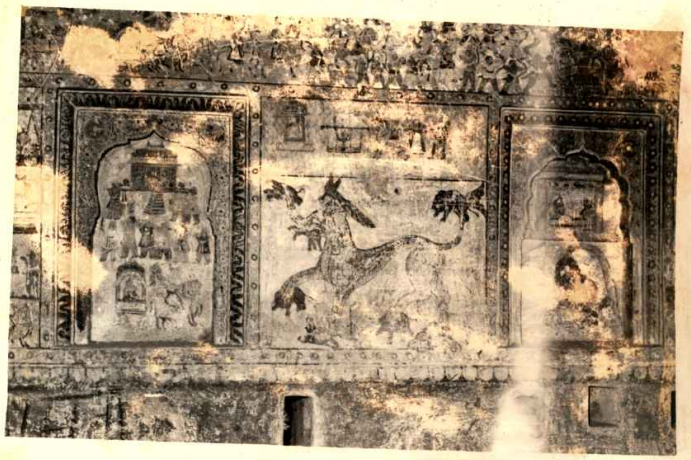

47

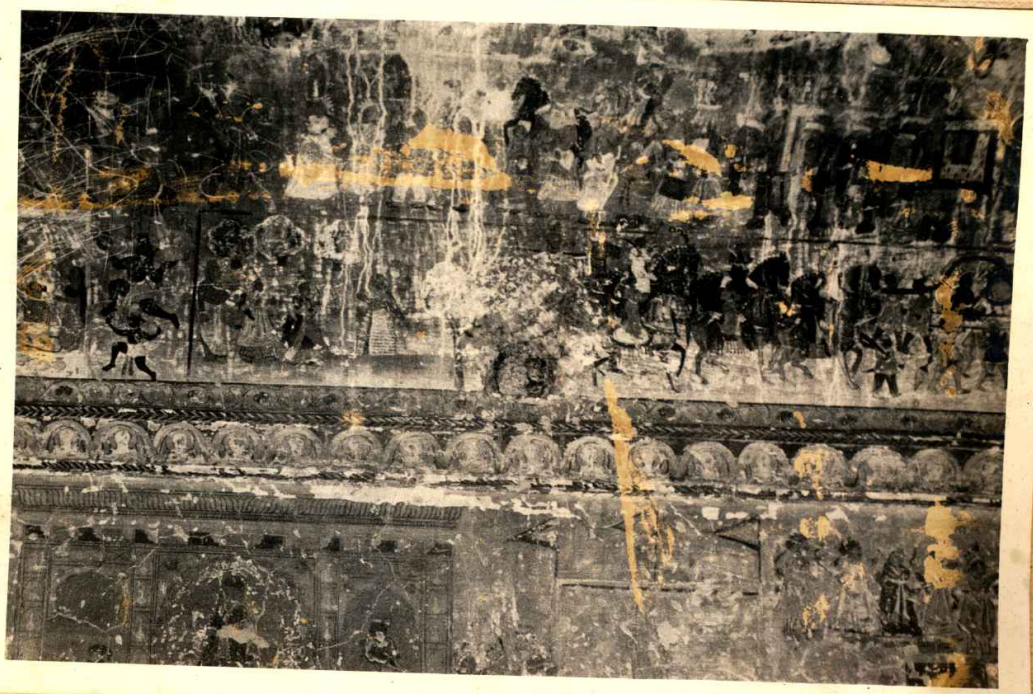

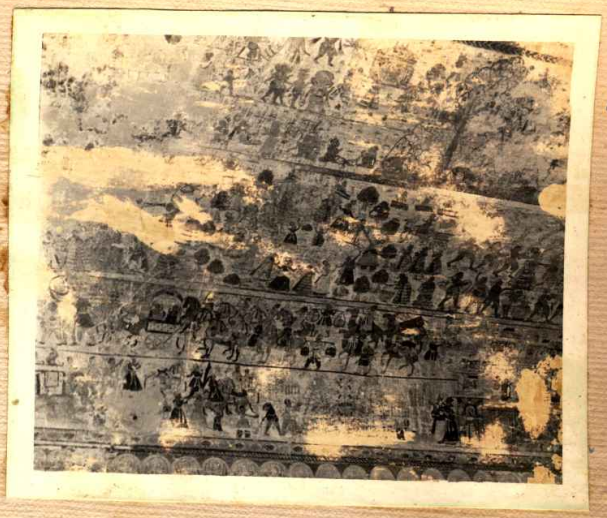

48

49

50

51

52

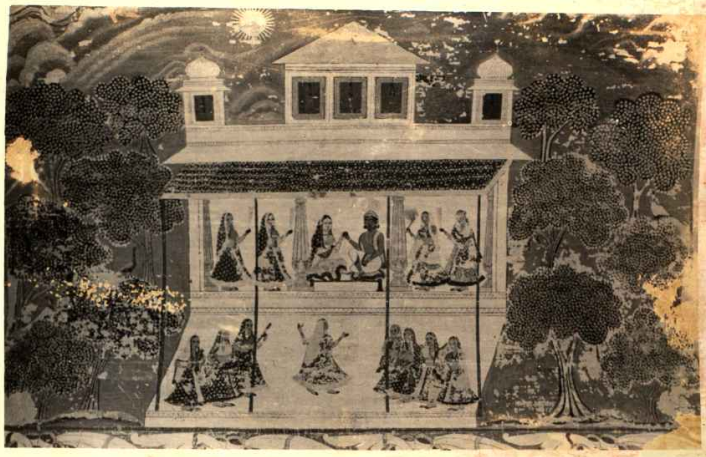

53

54

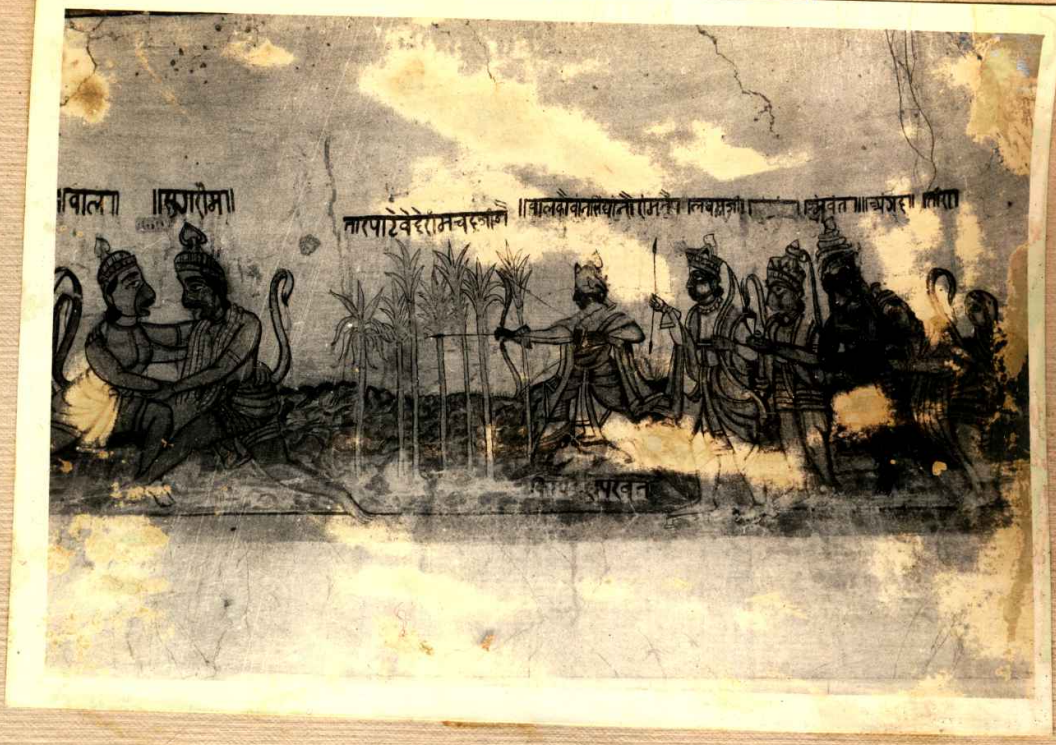

55

56

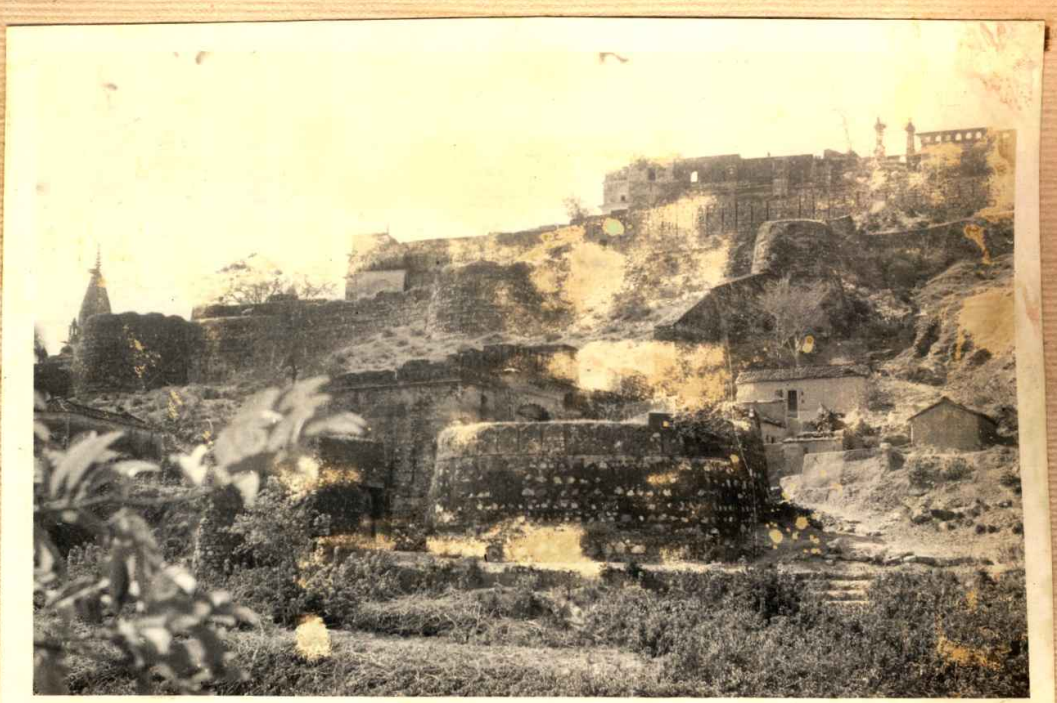

57

58

59

60

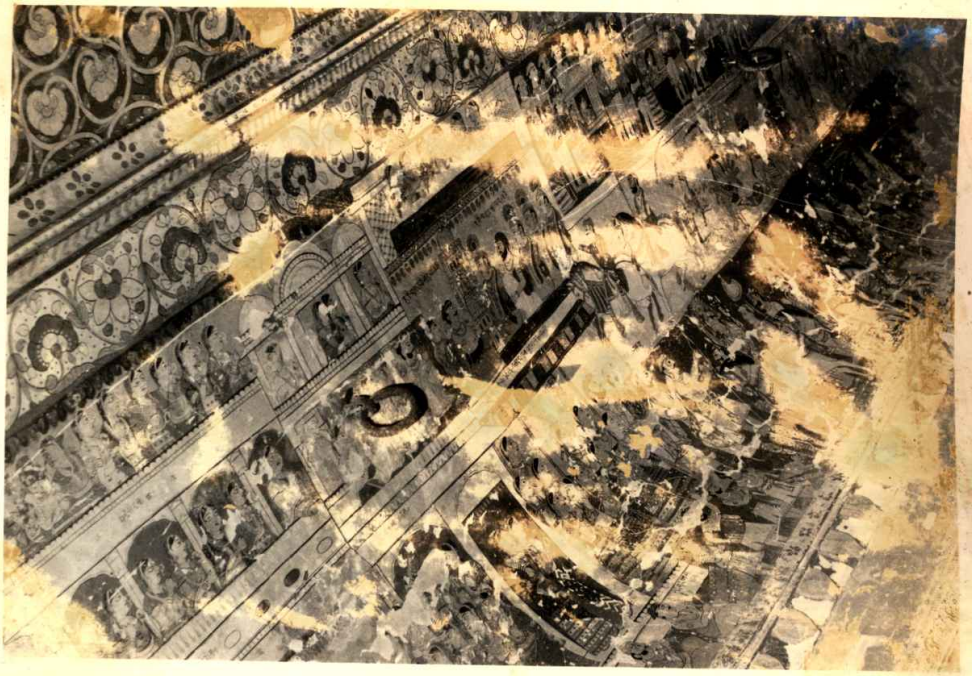

61

62

62

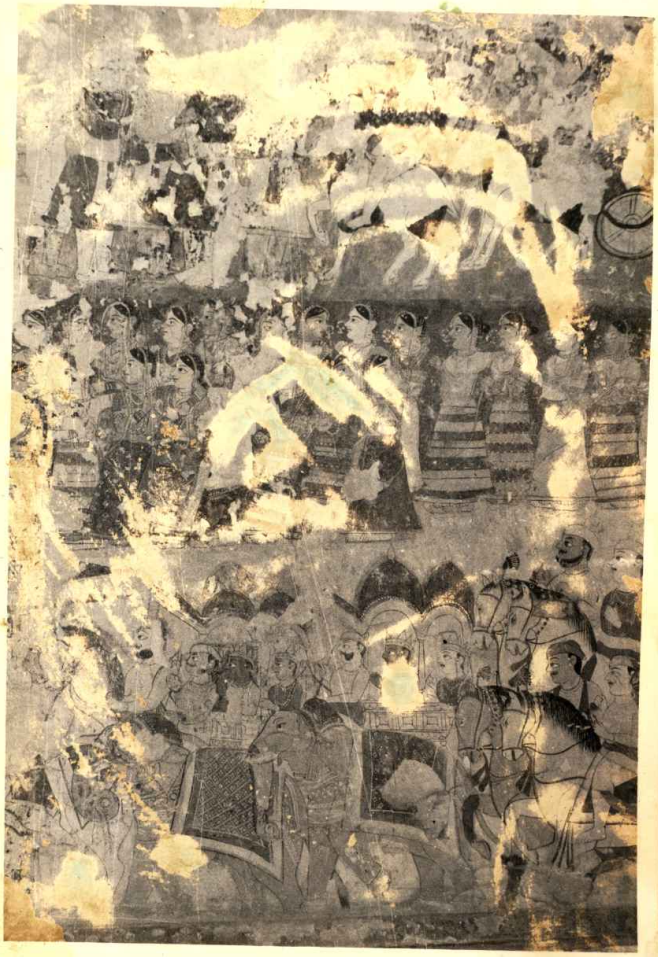

63

64

65

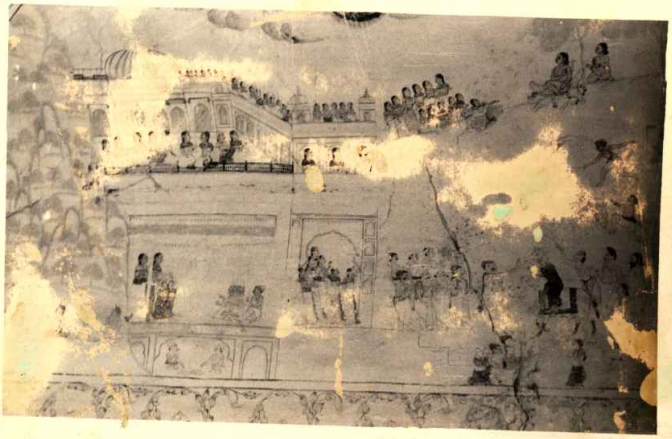

66

67

68

69

70

71

72

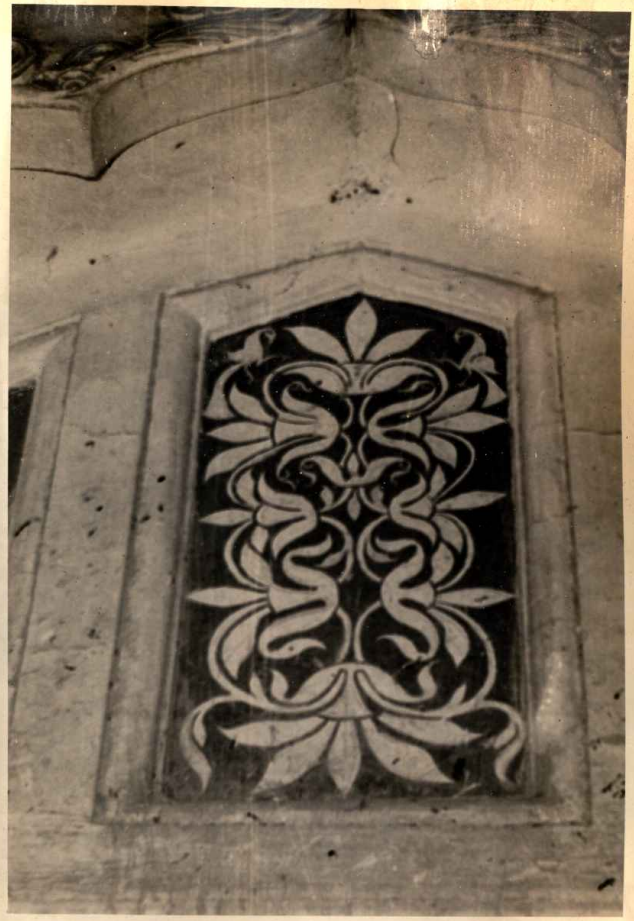

73

74

75

76

77

78

79

80

80

81

81

82

83

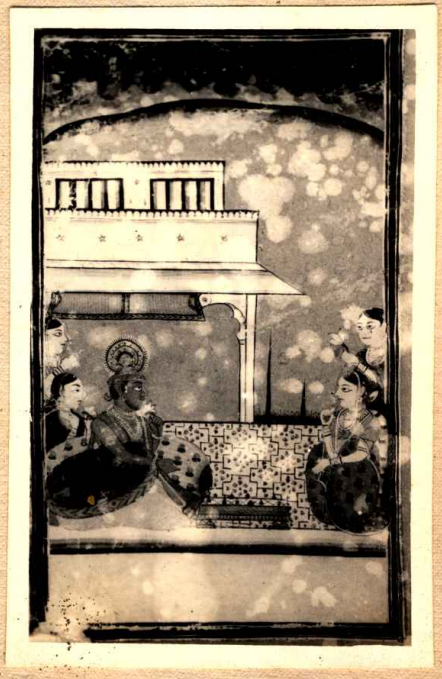

84

85

88

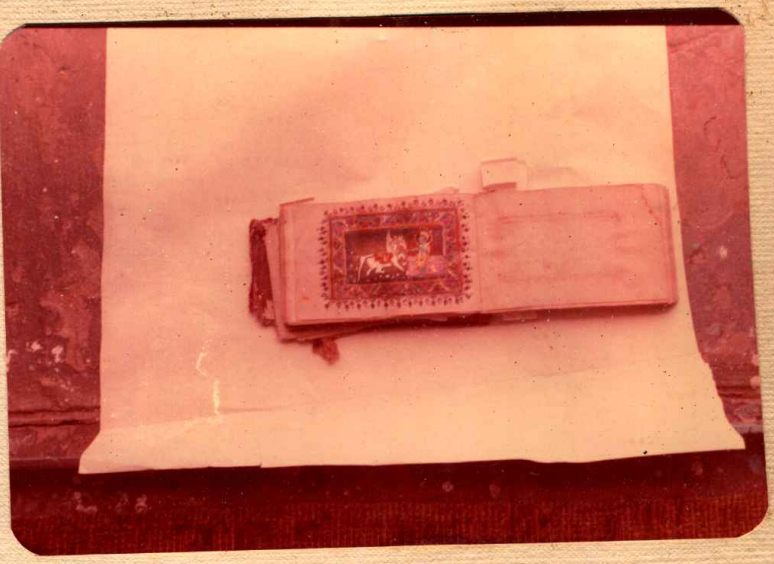

89

90

91

92

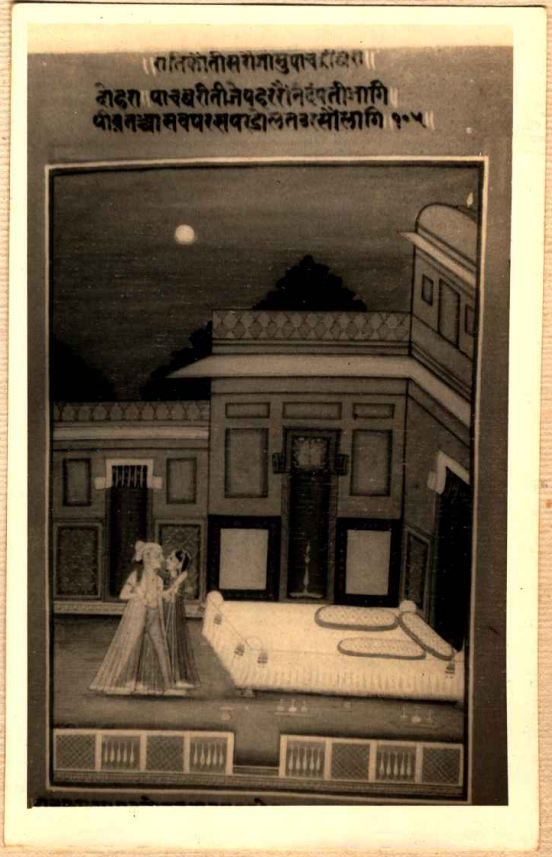

93

94

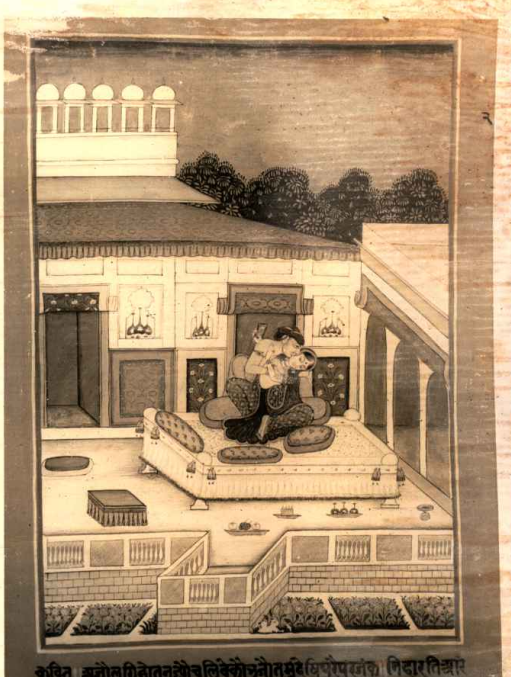

95

96

97

104

105